देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115
September 2023
Vol.-18, Issue-3(2)

Impact Factor
7.523

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

आज के दौर में विविध विमर्श विशेषांक

विशेषांक सम्पादक :
डॉ. चन्द्रेश कुमार छतलानी,
डॉ. सुलक्षणा अहलावत

विशेषांक सह-सम्पादक :
रजनी प्रभा

सम्पादक :
डॉ. नरेश सिहाग
एडवोकेट

Publisher :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित
JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Vol. 18 **ISSUE-3(2)** **(सितम्बर 2023)** **ISSN : 2395-7115**

प्रेरणा :
चौ. एम. सिहाग

विशेषांक संपादक :
डॉ. चन्द्रेश कुमार छतलानी, सहायक प्राध्यापक,
जनार्दन राय नागर राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर (राजस्थान)
डॉ. सुलक्षणा अहलावत, अंग्रेजी प्राध्यापिका,
शिक्षा विभाग, हरियाणा सरकार

सह सम्पादक :
रजनी प्रभा, शोधार्थी
बाबा साहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर (बिहार)

सम्पादक :
डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल', एडवोकेट
एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),
एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल-एल.बी. (ऑनर्स),
डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)
डी.लिट् (मानद उपाधि), काठमांडू, नेपाल
विभागाध्यक्ष हिन्दी एवं शोध निर्देशक
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर-335001 (राज.)

प्रकाशक :
गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
ISSN 2395-7115

सम्पादकीय सम्पर्क :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,
भिवानी-127021 (हरियाणा)
Email : nksihag202@gmail.com
मो. 09466532152

Published by :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
Website : www.bohalsm.blogspot.com
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

Disclaimer :
1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

बोहल शोध मंजूषा परिवार*

मानद संरक्षक

प्रो. राधेमोहन राय
पूर्व उप प्राचार्य,
राजकीय स्नातकोत्तर महा.,
अलवर, राजस्थान।

डॉ. राजेन्द्र गोदारा
परीक्षा नियंत्रक,
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. विनोद तनेजा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरूनानक वि.वि. अमृतसर
पंजाब।

सम्पादक मण्डल

सह सम्पादिका :
डॉ. रेखा सोनी
उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टाटिया वि.वि. श्रीगंगानगर।

सह सम्पादिका :
डॉ. सुशीला आर्या
हिन्दी विभाग, चौ. बंसीलाल
विश्वविद्यालय, भिवानी।

प्रबंध सम्पादक :
समुन्द्र सिंह
भिवानी, हरियाणा।

विधि विशेषज्ञ

डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
जिला न्यायालय
भिवानी, हरियाणा।

अजीत सिहाग, एडवोकेट
पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चंडीगढ़।

चरणवीर सिंह, एडवोकेट
जिला न्यायालय
पटियाला, पंजाब।

विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति

माई मनीषा महंत
किन्नर अधिकार ट्रस्ट
भूना, जिला कैथल, हरियाणा

डॉ. विश्वबंधु शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि. रोहतक

डॉ. संजय एल. मादार
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद।

डॉ. गीता दहिया, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

डॉ. विनोद कुमार
हिन्दी विभाग, लवली प्रोफेशनल
यूनिवर्सिटी, पंजाब

डॉ. मो. रियाज़ खान
बीएमएस वूमैन कॉलेज आटोनोमेस
बेगलूरू

डॉ. वनिता कुमारी
च. दादरी (हरियाणा)

श्री सहदेव समर्पित
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

डॉ. अंजली उपाध्याय
उत्तर प्रदेश

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़, कर्नाटक

प्रो. अमनप्रीत कौर
गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

डॉ. वर्षा रानी
संस्कृत विभाग, डॉ. भीमराम
अम्बेडकर, वि.वि., आगरा

प्रो. कमलेश चौधरी
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

डॉ. किरण गिल
दीनदयाल टी.टी. महाविद्यालय
बारी, जिला सीकर, राज.

डॉ. सविता घुड़केवार
पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. परमजीत कौर
बरेली कॉलेज बरेली,
उत्तर प्रदेश।

डॉ. राजकुमारी शर्मा
नेपाल

डॉ. श्रीविद्या एन.टी.
श्री शंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल।

डॉ. बी. संतोषी कुमारी
पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास

श्री राकेश ग्रेवाल
सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

डॉ. पंडित बन्ने
भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

डॉ. पायल लिल्हारे
अमरशहीद चंद्रेशेखर आजाद
शा.स्ना.महा. निवाड़ी, मध्यप्रदेश

श्री राकेश शंकर भारती
यूक्रेन।

डॉ. उमा सैनी
आई.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय
सरदारशहर, राजस्थान

डॉ. मनमीत कौर
राधा गोविन्द वि.वि.,
रामगढ़, झारखण्ड।

डॉ. रीना उन्नीयाल तिवारी
शिक्षा संकाय, डी.ए.वी. पीजी
कालेज, देहरादून

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
डीन फिजिकल एजुकेशन
टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर,

डॉ. शबाना हबीब
त्रिवन्तपुरम, केरल

डॉ. शिवकरण निमल
राजस्थान

डॉ. राधाकृष्णन गणेशन
वाराणसी

डॉ. मानसिंह दहिया
हरियाणा

डॉ. नीलम आर्या
उत्तर प्रदेश

डॉ. रवि सुण्डयाल
जम्मू कश्मीर

प्रो. नरेन्द्र सोनी
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. रोहतास
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. सत्यबीर कालोहिया
पूर्व प्राचार्य, कैलिफोर्निया।

डॉ. इस्पाक अली
प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री
शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलूरू

प्रो. रेखा रानी
गवर्नमेंट कॉलेज
संगरूर, पंजाब

डॉ. के.के. मल्हौत्रा
पूर्व विभागाध्यक्ष
गवर्नमेंट कॉलेज, गुरदासपुर

डॉ. संजीव कुमार विश्वकर्मा
शासकीय महाविद्यालय,
लवकुश नगर, मध्य प्रदेश

डॉ. परमानन्द त्रिपाठी
एचओडी एजुकेशन, एल.एन.डी.
कालेज, मोतिहारी, बिहार

डॉ. करमजीत कौर
प्राचार्या, दशमेश गर्ल्स कॉलेज
चक आला, मुकेरिया, पंजाब

*सम्पूर्ण बोहल शोध मञ्जूषा परिवार/सम्पादक मण्डल अवैतनिक है।

शोध–पत्र प्रकाशन के लिए निर्देश मंजूषा

गुगनराम सोसायटी (पंजीकृत) द्वारा शोधार्थियों व अध्येताओं के शोध/अनुसंधान की गतिविधियों को प्रोत्साहित करने हेतू बोहल शोध मंजूषा ISSN 2395-7115 नामक बहुभाषिक अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। कला, संस्कृति, विज्ञान, वाणिज्य, मानविकी, प्रबंध, प्रौद्योगिकी, विधि, भूगोल, शिक्षा, पत्रकारिता पर केन्द्रीत इस शोध पत्रिका को विषय विशेषज्ञों तथा मनीषी विद्वानों की सक्रिय सहभागिता प्राप्त है। पत्रिका का वार्षिक शुल्क 1100 रु. है।

आप अपना शोध पत्र कम्प्यूटर से मुद्रित फोन्ट साईज 14, कृतिदेव-10, कृतिदेव-21 में व अंग्रेजी के **Arial, Times New Roman** में पेज मेकर या माइक्रोसोफ्ट वर्ल्ड में हमारी **Email ID : grsbohal@gmail.com** पर भेजें। शोध पत्र प्रेषित करने से पूर्व दिये गये सन्दर्भ, मात्रा आदि की पूर्णतया जाँच कर लें।

नोट :- उर्दू, पंजाबी आदि भाषा के शोध पत्र पेपर साईज **7x9.5** पर टाईप कराकर **JPG** या **PDF** फाईल हमारी ईमेल आई.डी. पर भेज सकते हैं।

हमारी पत्रिका में शोध पत्र लेखक के फोटो सहित प्रकाशित किये जाते हैं। इसलिए आप अपने शोध पत्र के साथ पासपोर्ट साईज फोटोग्राफ, सम्पर्क सूत्र : टेलीफोन, मोबाईल नं., ई-मेल तथा पिनकोड सहित पत्र व्यवहार का पूरा पता (हिन्दी व अंग्रेजी) कम्प्यूटर द्वारा टाईप करवाकर भेजें।

★ शोध पत्र 2000-2500 शब्दों (4-6 पेज) से अधिक नहीं होनी चाहिए, यदि शब्द सीमा अधिक होती है तो सम्पादक को अधिकार होगा यथा स्थान संक्षिप्तीकरण कर दें। अस्वीकृत शोध पत्र की वापसी संभव नहीं है।

★ पत्रिका में प्रकाशित श्रेष्ठ शोध पत्र को हमारी सोसायटी/पत्रिका की ओर से बहुउपयोगी श्रीमती गिना देवी शोधश्री सम्मान प्रदान किया जायेगा।

★ शोध पत्र में व्यक्त विचार लेखकों के स्वयं के विचार हैं। उनसे सम्पादक, प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं है। शोध पत्र में प्रयुक्त किए गए तथ्यों के प्रति संबंधित लेखक उत्तरदायी होगा। पत्रिका में शोध आलेख प्रकाशन के लिए भेजने से पहले सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करना लेखक का दायित्व है। प्रत्येक विवाद का न्यायक्षेत्र भिवानी (हरियाणा) होगा।

★ सम्पादकीय पद अव्यावसायिक और अवैतनिक हैं। पत्रिका में केवल शोध पत्र ही प्रकाशनार्थ भेजें। शोध पत्र का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय व प्रकाशित समस्त शोध पत्रों का सर्वाधिकार समिति/सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।

नोट :

सहयोग/सदस्यता राशि 1100/- रू. का ड्राफ्ट/चैक/आई.पी.ओ. 'गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी' के नाम भेजें तथा ऑनलाईन बैंक में सहयोग जमा राशि की रसीद की फोटोप्रति अपने आलेख के साथ हमें मेल कर सूचित करने का कष्ट करें ताकि समय पर रसीद भेजी जा सके। ऑनलाईन सहयोग राशि के साथ 50/- रू. अतिरिक्त अवश्य जमा करवायें। प्रकाशन सहयोग शुल्क वापिस देय नहीं।

बैंक का नाम	:	पंजाब नैशनल बैंक, हालु बाजार, भिवानी (हरियाणा)
खाता धारक का नाम	:	गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी
बैंक खाता संख्या	:	1182000109078119
IFSC Code	:	PUNB0118200
MICR CODE	:	127024003

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc,.)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	**Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals**	08 per paper	10 per paper
2.	**Publications (other than Research papers)**		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	**Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula**		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course

सितम्बर 2023

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. चन्द्रेश कुमार छतलानी, डॉ. सुलक्षणा अहलावत, रजनी प्रभा	11–11
2.	समकालीन भारत में राजनीतिक परामर्श का गहन विश्लेषण	डॉ. अजयपाल सिंह	12–17
3.	हिंदी साहित्य में वृद्ध विमर्श का स्वरूप	अजीत कुमार	18–21
4.	सिनेमा में पर्यावरण	डॉ. अमिता	22–25
5.	साहित्य में नारी विमर्श	डॉ. अनीता शर्मा	26–30
6.	मन्नू भण्डारी की आत्मकथा–में वेदना और स्त्री की संघर्ष गाथा	अंजू पटेल	31–35
7.	Role Conflict in Working Women - A Sociological Analysis	Anuradha Soni, Dr. Rani Prabha Solanki	36-45
8.	समकालीन हिन्दी कविता में दलित स्त्री की आवाज	अनुषा टी	46–50
9.	रजनी तिलक की कहानियों में 'दलित विमर्श' चुनिंदा कहानियों के संदर्भ में	बिंदु आर	51–54
10.	विश्वविद्यालय में लागू नई शिक्षा नीति के महत्व का विश्लेषणात्मक अध्ययन	डॉ. चन्द्रशेखर सिंह	55–62
11.	किन्नर विमर्श और मानवाधिकार	दिवेश कुमार चंद्रा	63–66
12.	गन्धदूतम् में पर्यावरण संबंधी अवधारणा	डॉ. दिलारा रिज़वी	67–70
13.	An Analytical Study of Women Education in India	Dr. Bhavna Devi	71–78
14.	साहित्य और किन्नर जीवन की अभिव्यक्ति	डॉ. दुर्गेश कुमार शर्मा	79–83
15.	स्वामी विवेकानंद का शैक्षिक विमर्श	डॉ० गीता कुमारी	84–87
16.	वंदना टेटे के साहित्य में झारखंड के आदिवासी साहित्यकार	सुश्री ज्ञान्ती	88–93
17.	दलित साहित्य में सौन्दर्य शास्त्र	हेमलता	94–99

18.	दलित विमर्श की छलनी में 'रंग कितने संग मेरे'	डॉ इन्दू के. वी.	100–104
19.	मालती जोशी की कहानियों के संदर्भ में पुरूष विमर्श : एक विवेचन	E. JACQUELINE, ANURADHA PAKALAPATI	105-109
20.	नारी विमर्श तथा इसकी महत्ता	डॉ. जगदीप दुबे	110–112
21.	समकालीन महिला लेखिकाओं की रचनाओं में नारी विमर्श	काकर मुत्यालराव	113–116
22.	किन्नर समाज की मुख्य समस्याऐं	कमलजीत कौर	117–120
23.	हिंदी उपन्यासों में किन्नर विमर्श	डॉ० कुमुद कला मेहता	121–126
24.	सामाजिक विमर्श (सोशल मीडिया युग : सोशल मीडिया का प्रभाव)	लिच्छाराम	127–130
25.	मानव तस्करी : एक जघन्य अपराध	प्रोफेसर मंजु नावरिया	131–138
26.	दीनदयाल उपाध्याय का आर्थिक चिन्तन	डॉ. (श्रीमती) मंजुलता कश्यप	139–145
27.	गांधी जी का शैक्षिक विमर्श : नागरिक उत्थान व राष्ट्र निर्माण के संबंध में	मनोज भाकुनी	146–150
28.	महिला पुलिस कर्मियों में भूमिका संघर्ष – एक समाजशास्त्रीय अध्ययन	Meenu Dalal, Dr. Manju Singh	151-156
29.	अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यासों में समाज दर्शन	नसिमा गुलामरसूल तांबोली, प्रा. डॉ. विनायक खरटमल	157–160
30.	ਰਾਜਸਥਾਨ ਦੀ ਪੰਜਾਬੀ ਕਹਾਣੀ ਵਿੱਚ ਨਾਰੀ ਮਨ ਦੀ ਬਹੁਪਰਤੀ ਪੇਸ਼ਕਾਰੀ	ਨਵਰਾਜ ਸਿੰਘ	161–163
31.	श्यौराज सिंह 'बेचैन' की कहानियों का दलित चेतना में योगदान	नीलम	164–169
32.	दलित साहित्य में चित्रित नारी संघर्ष	नीलू सिंह, डॉ. सेन्थिल कुमार	170–174
33.	भगवती चरण वर्मा के उपन्यासों में नारी विमर्श वर्तमान संदर्भ में	निर्मला पुरसवानी	175–180

34.	विश्वकल्याणाय सनातन संस्कृतेः प्रासङ्गिकता	डॉ. पङ्कज कुमार शर्मा	181–185
35.	वर्तमान परिप्रेक्ष्य में कवि मंगलेश डबराल की कविताओं का मूल्यांकन	पायल पानेरी	186–188
36.	किन्नर विमर्श – किन्नर समाज का जीवन	डॉ. पूजा चौहान	189–193
37.	वैदिक साहित्य और स्त्री अधिकारी	डॉ. पूजा शर्मा	194–200
38.	**Review and Development of a Novel Framework for Ethical Considerations in AI-Driven Education**	**Vikas Dangi, Dr. Chandresh Kumar Chhatlani**	**201-209**

सम्पादक की कलम से.....

नमस्कार मित्रों,

सर्वप्रथम गुरु विद्यापीठ, रोहतक और जनार्दन राय नागर राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर के तत्वावधान में आयोजित "आज के दौर में विविध विमर्श" विषयक दो दिवसीय (09/10) सेमिनार के सफल आयोजन में सहभागिता हेतु आप सभी महानुभावों का हार्दिक आभार व्यक्त करता हूं।

'बोहल शोध मंजूषा' के इस नवीन अंक में भिन्न–भिन्न विचारधाराओं के आलेखों को सम्मिलित किया गया है। जिसमें मुख्यतः समाज के उन विषयों को प्रमुखता दी गई हैं जो आज भी प्रासंगिक हैं और जिन पर विमर्श की परम आवश्यकता है। यथा, नारी विमर्श, किन्नर विमर्श, वृद्ध विमर्श और वर्तमान में हिंदी के प्रयोग के संदर्भ में विमर्श आदि। इस प्रकार यह अंक हर वर्ग के पाठकों को आकर्षित कर सकने में सक्षम है साथ ही शोधार्थियों के लिय इसमें वृहत सामग्री उपलब्ध है।

'बोहल शोध मंजूषा' पत्रिका कला, साहित्य तथा समाज सेवा के लिय संपूर्ण समर्पित पियर रिव्यू पत्रिका है। देश के साहित्यिक, सांस्कृतिक विकास के लिये समर्पित यह पत्रिका देश–विदेश के साहित्यिक प्रेमियों के लिय एक अनुपम धरोहर है। पत्रिका ने अभी अपने पांव वैश्विक स्तर पर फैलाने प्रारंभ कर दिए हैं। 'गुरु विद्यापीठ रोहतक, ने इन सम्मेलनों के माध्यम से देश के अलग–अलग प्रांतों से साहित्यकारों को साहित्य लेखन के लिये बढ़ावा भी दिया है, जिससे उन्हें बड़े मंच उपलब्ध हुए हैं। हिंदी प्रेमियों को नित नए–नए अवसर प्रदान करने हेतु हम निरंतर प्रयासरत हैं। कोई भी मनुष्य अकेले किसी संस्था को कामयाबी की ऊंचाइयों तक नहीं पहुंचा सकता। इसे उन्नति के शिखर पर पहुंचने और यश प्राप्ति के फलक पर बिठाने में आप सभी साहित्यकारों के सहयोग की अपेक्षा की जाती रही है। 'गुरु विद्यापीठ' रोहतक, एक परिवार है, जिसमें आर्थिक, मानसिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक रूप से पिछड़े लोगों की सहायता सभी अपनी–अपनी क्षमतानुसार करते हैं। आज के समाज की जो वर्तमान में भयावह स्थिति हैं कोशिश करें अपनी लेखनी में सामाजिक बदलाव के स्वर को पुष्ट करें। चूंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है इसीलिए समाज के प्रति अपने कर्तव्यों का निर्वाह जिस भी रूप में हो अवश्य करें। और सामाजिक परिवर्तन एक लेखक से बेहतर कौन कर सकता है। जल्दी ही और भी कई योजनाओं को 'गुरु विद्यापीठ' रोहतक, के बैनर तले मूर्त रूप दिया जाएगा, जिसमें योग्यतानुसार सभी प्रकार के सम्मान पत्र भी प्रदान किए जाएंगे।

आप सब के साथ और सहयोग से सब कुछ संभव है। हम गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी की कार्यकारिणी के भी आभारी हैं जिन्होंने हम पर विश्वास जताते हुए सम्पादन का दायित्व सौंपा। 'सबका साथ और सबका विकास'। इसी नारें के साथ सभी को 'गुरु विद्यापीठ' रोहतक, की ओर से उज्ज्वल भविष्य की ढेरों शुभकामनाएं।

– डॉ. चन्द्रेश कुमार छतलानी

– डॉ. सुलक्षणा अहलावत,

– रजनी प्रभा

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 12-17

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

समकालीन भारत में राजनीतिक परामर्श का गहन विश्लेषण

डॉ. अजयपाल सिंह

भूगोल विभाग, किसान पी.जी. कॉलेज, सिंभावली, हापुड़।

अमूर्त :-

किसी भी देश में लोकतांत्रिक संस्थाओं और नीतियों के विकास के लिए राजनीतिक परामर्श आवश्यक है। आधुनिक भारत में राजनीतिक परामर्श का कार्य अत्यंत महत्वपूर्ण है, यह देश अपनी विविध आबादी और जटिल सामाजिक–राजनीतिक प्रणाली से प्रतिष्ठित है। इस शोध अध्ययन का लक्ष्य भारत की ऐतिहासिक नींव, वर्तमान प्रथाओं, कठिनाइयों और संभावित भविष्य की दिशाओं को ध्यान में रखते हुए आज भारत में राजनीतिक परामर्श का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करना है। यह शोध राजनीतिक परामर्श के विभिन्न पहलुओं को देखकर भारतीय लोकतांत्रिक प्रणाली में नागरिक भागीदारी के कार्य की गहरी समझ में योगदान देता है।

परिचय :-

समकालीन लोकतांत्रिक शासन का एक प्रमुख घटक, राजनीतिक परामर्श जनता और निर्णय निर्माताओं के बीच एक कड़ी के रूप में कार्य करता है। भारत जैसे विविध और प्रगतिशील देश में राजनीतिक संवाद एक महत्वपूर्ण प्रासंगिकता रखता है, जहां संविधान लोकतांत्रिक मानदंडों को कायम रखता है। ज्यादातर तकनीकी सुधारों और सामाजिक–राजनीतिक गतिशीलता में बदलाव के कारण, 21वीं सदी में नागरिकों द्वारा राजनीतिक प्रक्रिया के साथ बातचीत करने के तरीके में बुनियादी बदलाव देखा गया है। आधुनिक काल में राजनीतिक परामर्श की रूपरेखा को समझना समावेशी और उत्तरदायी शासन विकसित करने के लिए महत्वपूर्ण है क्योंकि भारत प्रगति और विकास की दिशा में आगे बढ़ रहा है।

इस अध्ययन का उद्देश्य आज भारत में राजनीतिक संवाद की जटिलताओं का पता लगाना है। यह राजनीतिक परामर्श की उत्पत्ति, समकालीन उपयोग, कठिनाइयों और संभावित भविष्य के विकास की गहन जांच की पेशकश करना चाहता है। इस अध्ययन का उद्देश्य इन पहलुओं को देखकर भारत की लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं को प्रभावित करने में नागरिकों की बदलती भूमिका पर प्रकाश डालना है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि जनता की आवाज़ सत्ता के गलियारों में सुनी जाए, राजनीतिक परामर्श की जटिलताओं को समझना आवश्यक है क्योंकि देश अधिक पारदर्शी और सहभागी शासन चाहता है।

भारत में राजनीतिक परामर्श का ऐतिहासिक संदर्भ :–

भारत में राजनीतिक परामर्श की उत्पत्ति अतीत में हुई है, जब विचार–विमर्श करके निर्णय लेना एक आम प्रथा थी। इन ऐतिहासिक घटनाओं ने आधुनिक परामर्श तकनीकों को आकार दिया और देश के लोकतांत्रिक मूल्यों को मजबूत किया।

1. **सभा और समितियाँ** – महाजन पदों जैसे प्राचीन भारतीय गणराज्यों में, 'सभा' और 'समिति' नामक सभाओं के माध्यम से राजनीतिक परामर्श का अभ्यास किया जाता था। इन सभाओं ने निवासियों को महत्वपूर्ण मुद्दों पर चर्चा करने और आम सहमति तक पहुंचने के लिए स्थान प्रदान किए।
2. **धर्मशास्त्र** – 'अर्थशास्त्र' और 'धर्मशास्त्र' जैसे प्राचीन ग्रंथों ने महत्वपूर्ण निर्णय लेने से पहले विभिन्न हितधारकों से परामर्श करने के महत्व पर जोर दिया। इन ग्रंथों ने सर्वसम्मति और परामर्श के मूल्य को पहचाना।
3. **ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रभाव** – ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन के तहत, स्थानीय परिषदों और विधायी निकायों जैसे प्रतिनिधि संस्थानों के विकास ने राजनीतिक जुड़ाव की औपचारिक प्रक्रियाओं को सामने लाया। हालाँकि, इन संस्थानों का प्रतिनिधित्व और शक्ति अक्सर बाधित होती थी।
4. **संसदीय लोकतंत्र** – भारतीय संविधान में संसदीय लोकतंत्र की स्थापना ने निर्वाचित अधिकारियों को राजनीतिक चर्चा के लिए एक मंच दिया। संसद और विधायी निकायों के सदस्य नागरिकों के अधिकारों की वकालत करने और कानून को प्रभावित करने के लिए जिम्मेदार थे।

राजनीतिक परामर्श प्रथाओं का विकास :–

भारत में राजनीतिक परामर्श प्रक्रियाएँ समकालीन युग में आम जनता और निर्णय निर्माताओं के बीच अंतर को कम करने के उद्देश्य से विभिन्न प्रकार के उपकरणों को शामिल करने के लिए विकसित हुई हैं। लोकतांत्रिक आदर्शों, समावेशिता और नागरिक भागीदारी के प्रति राष्ट्र का समर्पण इन तरीकों से परिलक्षित होता है।

1. **सांसद और विधायी निकाय** – लोगों और सरकार के बीच, निर्वाचित प्रतिनिधि एक माध्यम के रूप में कार्य करते हैं। वे ऐसे विषय उठाते हैं, चिंताएँ व्यक्त करते हैं और उन कानूनों के लिए लड़ते हैं जो उनके घटकों के दृष्टिकोण और हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं।
2. **सोशल मीडिया जुड़ाव** – सोशल मीडिया प्लेटफार्मों के आगमन ने राजनीतिक परामर्श की गतिशीलता को बदल दिया है। नागरिक राय व्यक्त कर सकते हैं, चर्चाओं में भाग ले सकते हैं और यहां तक कि डिजिटल चैनलों के माध्यम से निर्वाचित प्रतिनिधियों के साथ सीधे जुड़ सकते हैं।
3. **ऑनलाइन सर्वेक्षण और पोर्टल** – सरकारी पहल विशिष्ट नीतिगत मामलों पर जनता की राय जानने के लिए अक्सर ऑनलाइन सर्वेक्षण और समर्पित पोर्टल का उपयोग करती है, जिससे परामर्श अधिक सुलभ और समावेशी हो जाता है।

चुनौतियाँ और चिंताएँ :–

1. **विविधता** – भारत की विशाल सांस्कृतिक, भाषाई और सामाजिक–आर्थिक विविधता यह सुनिश्चित करना कठिन बना सकती है कि सभी सामाजिक समूहों को उचित प्रतिनिधित्व मिले और उन्हें परामर्श प्रक्रियाओं में भाग लेने का मौका दिया जाए।
2. **पारदर्शिता का अभाव –** नागरिक परामर्श प्रक्रियाओं की पारदर्शिता के बारे में चिंतित हो सकते हैं और

आश्चर्य चकित हो सकते हैं कि क्या नीतिगत निर्णय लेते समय उनकी राय को वास्तव में ध्यान में रखा जाता है या यदि परामर्श केवल औपचारिकता है।

3. **जटिल भाषा और शब्द जाल** – कानूनी और नीतिगत शर्तों के बारे में कम जानकारी या अनुभव रखने वाले लोगों को तकनीकी भाषा या नौकरशाही शब्द जाल के उपयोग से परामर्श में भाग लेने से हतोत्साहित किया जा सकता है।

इन मुद्दों के समाधान के लिए सरकारी एजेंसियों, नागरिक समाज और समग्र रूप से जनता को शामिल करते हुए एक बहुआयामी रणनीति की आवश्यकता है। उन पहलों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए जो समावेशिता, पारदर्शिता और ठोस भागीदारी को बढ़ाती हैं। परामर्श दस्तावेजों में उपयोग की जाने वाली भाषा को सरल बनाना, ऑफ़लाइन भागीदारी विकल्पों को सुनिश्चित करना, हाशिए के क्षेत्रों तक पहुंच का विस्तार करना और नीति परिणामों पर नागरिक इनपुट के प्रभाव की निगरानी के लिए ट्रैकिंग सिस्टम स्थापित करना सभी इसका हिस्सा हो सकते हैं।

समकालीन भारत में सफल राजनीतिक परामर्श पहल :–

लोकतांत्रिक शासन का एक प्रमुख घटक, राजनीतिक परामर्श यह सुनिश्चित करता है कि सार्वजनिक नीति के बारे में विकल्प चुनते समय जनता की आवाज़ सुनी जाए। आधुनिक भारत के विविध और जटिल वातावरण में उत्तरदायी सरकार के लिए, कुशल परामर्श विधियाँ महत्वपूर्ण हैं। यह लेख प्रभावी राजनीतिक परामर्श कार्यक्रमों के मामले के अध्ययन की जांच करता है, ऐसे उदाहरणों पर प्रकाश डालता है जिनमें नागरिक इनपुट के परिणाम स्वरूप ठोस नीति परिवर्तन हुए।

1. **स्वच्छ भारत अभियान : सामूहिक भागीदारी को शामिल करना** – स्वच्छ भारत अभियान (स्वच्छ भारत अभियान) एक सफल राजनीतिक परामर्श पहल का एक प्रमुख उदाहरण है जिसमें सामूहिक भागीदारी शामिल है। 2014 में शुरू किए गए इस अभियान का उद्देश्य स्वच्छ और खुले में शौच मुक्त भारत के दृष्टिकोण को प्राप्त करना था। इस पहल की सफलता का श्रेय इसके बहु–आयामी दृष्टिकोण को दिया जा सकता है, जिसमें राजनीतिक इच्छा शक्ति को नागरिक भागीदारी के साथ जोड़ा गया है। स्वच्छ भारत अभियान ने सफलता पूर्वक स्वच्छता और साफ–सफाई के बारे में जागरूकता बढ़ाई, जिससे खुले में शौच में उल्लेखनीय कमी आई। देशभर के समुदायों ने स्वच्छता अभियानों में सक्रिय रूप से भाग लिया, यह प्रदर्शित करते हुए कि राजनीतिक परामर्श एक सामान्य लक्ष्य की दिशा में सामूहिक कार्रवाई को प्रेरित कर सकता है।

2. **सूचना का अधिकार अधिनियम : नागरिकों को सशक्त बनाना** – 2005 में अधिनियमित सूचना का अधिकार (आरटीआई) अधिनियम एक विधायी पहल का उदाहरण है जो सरकारी कामकाज में पारदर्शिता और जवाबदेही सुनिश्चित करके नागरिकों को सशक्त बनाता है। यह अधिनियम व्यक्तियों के लिए जानकारी तक पहुंचने और लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए एक मंच के रूप में कार्य करता है। आरटीआई अधिनियम ने नागरिकों को सार्वजनिक अधिकारियों को जवाबदेह बनाने में सक्षम बनाया है और भ्रष्टाचार और सत्ता के दुरुपयोग के मामलों को उजागर किया है। नागरिकों को सूचना तक पहुँचने के लिए एक औपचारिक चैनल प्रदान करके, अधिनियम पारदर्शिता बढ़ाता है और यह सुनिश्चित करता है कि राजनीतिक परामर्श व्यक्तियों को सशक्त बनाने के लिए औपचारिकताओं से परे है।

3. **केरल में सहभागी बजटिंग : जमीनी स्तर पर लोकतंत्र** – सहभागी बजटिंग के साथ केरल का प्रयोग स्थानीय स्तर पर बजटीय निर्णयों में नागरिकों को सीधे शामिल करने की क्षमता को प्रदर्शित करता है। यह पहल जमीनी स्तर पर लोकतंत्र को बढ़ावा देती है और समुदायों को अपने स्वयं के विकास को आकार देने के लिए सशक्त बनाती है। सहभागी बजटिंग से उन परियोजनाओं के कार्यान्वयन को बढ़ावा मिला है जो सीधे स्थानीय आवश्यकताओं और आकांक्षाओं को संबोधित करती हैं। नागरिकों को संसाधन आबंटन को प्रभावित करने की अनुमति देकर, यह पहल राजनीतिक परामर्श और जीवन की गुणवत्ता में ठोस सुधार के बीच संबंध को मजबूत करती है।

राजनीतिक परामर्श पर प्रौद्योगिकी का प्रभाव :–

तकनीकी विकास में तेजी के दौर में, राजनीतिक परामर्श का क्षेत्र एक महत्वपूर्ण बदलाव से गुजर रहा है। एक उत्प्रेरक के रूप में, प्रौद्योगिकी ने लोगों के अपनी सरकार से जुड़ने और लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में भाग लेने के तरीके को बदल दिया है। राजनीतिक परामर्श पर प्रौद्योगिकी का प्रभाव आधुनिक भारत के संदर्भ में सार्वजनिक जुड़ाव को बदलने की भारी क्षमता रखता है, एक ऐसा देश जो अपनी विविध जनसांख्यिकी और गतिशील सामाजिक–राजनीतिक परिदृश्य के लिए जाना जाता है।

1. **डिजिटल प्रतिमान** – जिस तरह से लोग जानकारी प्राप्त करते हैं, अपने विचारों को व्यक्त करते हैं और राजनीतिक विचार–विमर्श में भाग लेते हैं, वह प्रौद्योगिकी के समावेश के परिणाम स्वरूप नाटकीय रूप से बदल गया है। इंटरनेट कनेक्टिविटी की व्यापक उपलब्धता और डिजिटल गैजेट्स के प्रसार के कारण सभी सामाजिक वर्गों के नागरिक प्रौद्योगिकी–संचालित जुड़ाव में भाग लेने में सक्षम हो रहे हैं।

2. **उत्प्रेरक के रूप में सोशल मीडिया** – फेसबुक, ट्विटर और इंस्टाग्राम जैसे सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म नागरिकों के लिए न केवल स्थानीय बल्कि वैश्विक स्तर पर राजनीतिक चर्चा में शामिल होने के लिए शक्तिशाली उपकरण के रूप में उभरे हैं। ये प्लेटफ़ॉर्म नागरिकों और नीति निर्माताओं के बीच वास्तविक समय पर बातचीत को सक्षम बनाते हैं, जिससे वर्तमान घटनाओं की जानकारी और प्रतिक्रियाओं के तेजी से प्रसार की अनुमति मिलती है।

भविष्य की संभावनाएँ और नवाचार :–

भारत इक्कीसवीं सदी में आत्मविश्वास से प्रवेश करते हुए राजनीतिक परामर्श के क्षेत्र में बदलाव के लिए तैयार है। सामाजिक विकास और प्रौद्योगिकी उन्नति के बीच गतिशील अंतःक्रिया के परिणाम स्वरूप लोकतांत्रिक शासन के आयाम बदल रहे हैं। राजनीतिक परामर्श की भविष्य की संभावनाओं में बढ़ती सार्वजनिक भागीदारी, उन्नत तकनीकी एकीकरण और समकालीन भारत के संदर्भ में भागीदारी पूर्ण निर्णय लेने के लिए रचनात्मक रास्ते के वादे शामिल हैं, जो अपनी विविधता, जटिलता और प्रगति की महत्वाकांक्षाओं से प्रतिष्ठित है।

1. **बेहतर सहभागिता के लिए प्रौद्योगिकी का लाभ उठाना** – डिजिटल युग गहरी नागरिक सहभागिता को बढ़ावा देने के लिए क्रांतिकारी उपकरण प्रदान करता है, जो राजनीतिक परामर्श के लिए पहले से अनसुनी संभावनाओं को खोलता है। वर्चुअल टाउन हॉल बैठकें आयोजित करके भौगोलिक बाधाओं को दूर किया जा सकता है, जिससे निवासियों को निर्वाचित अधिकारियों के साथ संवाद करने और वास्तविक समय पर नीतिगत निर्णय लेने की अनुमति मिलती है।

2. **युवा आवाज़ों को सशक्त बनाना** – भारत के युवा, एक बड़ी पीढ़ी, देश की नियति को प्रभावित करने की शक्ति रखते हैं। उनके साथ राजनीतिक संवाद में भाग लेने से नए विचार और दृष्टिकोण प्रेरित हो सकते हैं।

3. **पहुंच सुनिश्चित करना** – इंटरनेट पहुंच या डिजिटल साक्षरता से वंचित लोगों के लिए ऑफ़लाइन परामर्श विकल्प प्रदान करने से समाज के कुछ वर्गों को डिजिटल विभाजन से बाहर होने से रोका जा सकता है।

आधुनिक भारत में राजनीतिक परामर्श के अनगिनत संभावित परिणाम हैं। जैसे–जैसे प्रौद्योगिकी विकसित हो रही है, नागरिकों को अधिक शक्ति प्राप्त हो रही है, और शासन पद्धतियों में बदलाव आ रहा है, सार्थक भागीदारी की संभावना बढ़ रही है। भारत में एक सहभागी लोकतंत्र विकसित करने की क्षमता है जो प्रौद्योगिकी के उपयोग, युवा जुड़ाव को प्रोत्साहित करने, नीति प्रभाव का मूल्यांकन करने और समावेशन को अपनाने के माध्यम से अपने लोगों की विभिन्न आवश्यकताओं, आकांक्षाओं और ज्ञान को दर्शाता है। लेकिन जब ये अभूतपूर्व संभावनाएं साकार होती हैं, तो प्रौद्योगिकी विकास और लोकतंत्र के बुनियादी सिद्धांतों के बीच संतुलन बनाना महत्वपूर्ण है। खुलापन, जिम्मेदारी और न्याय संगत प्रतिनिधित्व बनाए रखना महत्वपूर्ण है।

लोकतांत्रिक शासन के लिए निहितार्थ :–

1. **समावेशी भागीदारी को बढ़ावा देना** – राजनीतिक परामर्श के केंद्र में समावेशिता का सिद्धांत निहित है, जहां जीवन के सभी क्षेत्रों के नागरिक उन नीतियों को आकार देने में संलग्न होते हैं जो उनके जीवन को प्रभावित करती हैं।

2. **विविध आवाज़ों का प्रतिनिधित्व** – राजनीतिक परामर्श यह सुनिश्चित करता है कि हाशिए पर रहने वाले समुदायों, महिलाओं, स्वदेशी समूहों और कमजोर आबादी की आवाज़ सुनी जाए और उन पर विचार किया जाए, जिससे समान प्रतिनिधित्व के लोकतांत्रिक आदर्श को कायम रखा जा सके।

3. **नीतिगत परिणाम नागरिक आकांक्षाओं को प्रतिबिंबित करते हैं** – परामर्श नीतिगत निर्णयों को सहयोगात्मक प्रयासों में बदल देता है, जिसके परिणाम स्वरूप ऐसी नीतियां बनती हैं जो अधिक प्रतिनिधिक होती हैं और नागरिक आवश्यकताओं के अनुरूप होती हैं।

4. **सार्वजनिक विश्वास को मजबूत करना** – परामर्श से प्रभावित नीतियों को अधिक सार्वजनिक समर्थन प्राप्त होता है, क्योंकि नागरिक अपने इनपुट को मूल्यवान मानते हैं, जिससे लोकतांत्रिक संस्थानों में उनका विश्वास मजबूत होता है।

आधुनिक भारत में लोकतांत्रिक प्रशासन पर राजनीतिक परामर्श का प्रभाव पड़ता है जो सिर्फ नीतियां बनाने से कहीं आगे तक जाता है। वे सहभागी लोकतंत्र के मूल को छूते हैं, जवाबदेही बढ़ाने, नागरिकों को सशक्त बनाने और सरकार के लिए एक ढांचा विकसित करने के मूल्य पर प्रकाश डालते हैं जो समग्र रूप से लोगों की इच्छा को दर्शाता है। राजनीतिक परामर्श के निहितार्थों को अपनाने से ऐसे शासन का निर्माण हो सकता है जो उत्तरदायी और जवाबदेह हो क्योंकि भारत आधुनिक दुनिया की जटिलताओं से निपट रहा है। भारत की लोकतांत्रिक संस्थाएं देश की उन्नति और विकास में सक्रिय रूप से योगदान देने वाले नागरिक वर्ग को बढ़ावा देते हुए समावेशी भागीदारी, जवाबदेही और पारदर्शिता की ताकत के आधार पर अन्य देशों के लिए एक मॉडल

के रूप में काम कर सकती हैं।

निष्कर्ष :-

आधुनिक भारत में राजनीतिक परामर्श एक जीवंत धागा है जो इसके निवासियों की महत्वाकांक्षाओं, आवाज़ों और कार्यों को जोड़ता है। यह लोकतांत्रिक प्रशासन केटेपेस्ट्री का एक हिस्सा है। इस शोध अध्ययन ने राजनीतिक परामर्श की विविध प्रकृति और देश की ऐतिहासिक नींव, विकसित प्रथाओं, कठिनाइयों और नई संभावनाओं की गहन जांच के माध्यम से देश के लोकतांत्रिक ढांचे पर इसके महत्वपूर्ण प्रभाव पर प्रकाश डाला है। हमारी जांच के दौरान राजनीतिक परामर्श से जुड़ी कठिनाईयाँ और मुद्दे सामने आए, जो हमें याद दिलाते हैं कि समावेशिता, खुलापन और सार्थक भागीदारी निरंतर लक्ष्य हैं। ये कठिनाईयाँ, जो स्वयं देश जितनी ही विविध हैं, ने निष्पक्ष प्रतिनिधित्व और जवाबदेही की गारंटी के लिए परामर्श प्रक्रियाओं को विकसित करने की आवश्यकता पर प्रकाश डाला। आगे देखते हुए, नवाचारों और भविष्य की संभावनाओं ने अधिक जवाबदेह, युवा–संचालित और समावेशी शासन की दिशा में रास्ता दिखाया। परामर्श के भविष्य को प्रौद्योगिकी के उपयोग, युवा आवाज़ों को बढ़ावा देने और नीति प्रभाव के मूल्यांकन के माध्यम से आकार दिया जा रहा है। लेकिन यह सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण है कि ये प्रगतिशील आंदोलन खुलेपन और न्याय संगत प्रतिनिधित्व को बनाए रखें जो लोकतंत्र की नींव में हैं।

सन्दर्भ :-

1. आचार्य, विश्वनाथ (2018), भारतीय गणराज्य की विकास कथा।
2. गांधी, मोहनदास करमचंद (2014), हिंदस्व राज्य।
3. मोहन, राहुल (2018), बदलते समय में राजनीतिक परामर्श, युवा राजनीति, 3(2), 12–18
4. सिंह, वीरेंद्र (2017), समकालीन भारत में नागरिक परामर्श का महत्व और चुनौतियाँ, नागरिक विज्ञान, 2(3), 89–98
5. मिश्रा, अरविन्द (2012), स्थानीय स्वशासन के प्राधिकृतीकरण में डिजिटल तकनीकी का योगदान, डिजिटल इंडिया, 2(4), 47–53

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 18-21

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी साहित्य में वृद्ध विमर्श का स्वरूप

अजीत कुमार

शोधार्थी, हिंदी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

आधुनिक हिन्दी साहित्य के उत्तर आधुनिक समय ने मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं के सूक्ष्म पक्षों को चर्चा का केन्द्र बनाया। इसने केन्द्र की परिधि से परे जाकर हाशिये के मुद्दों पर ध्यानाकर्षण किया है, जिससे हिन्दी साहित्य में विभिन्न विमर्शों का दौर प्रारंभ हुआ। आरंभ में दलित विमर्श, स्त्री विमर्श एवं आदिवासी विमर्श की ही अनुगूंज दिखाई दी, किन्तु समय के साथ यह दायरा बढ़ता गया। आधुनिक हिन्दी साहित्य में वृद्ध विमर्श, बाल विमर्श, पर्यावरण विमर्श, किन्नर विमर्श जैसे अनेक नये विमर्श सामने आये है।

वृद्ध विमर्श हिन्दी साहित्य जगत का एक प्रमुख विमर्श है। वृद्ध समाज का चित्रण हिन्दी साहित्य में सदैव से विद्यमान रहा है, परन्तु वृद्ध विमर्श के तौर पर उसे नही देखा गया, चूंकि विमर्श शब्द से पता चलता है कि किसी खास वर्ग का केन्द्र की परिधि इतना अधिक हाशिये पर चला जाना कि, समाज में उसका अस्तित्व ही खतरें में पड़ जाएं। इस अस्तित्व के खतरें से बाहर आने की प्रक्रिया ही विमर्श कहलाती है। विमर्श हाशिये पर खड़े किसी वर्ग के अस्तित्व की सशक्त पुकार है।

साहित्य जगत में वृद्ध विमर्श को सर्वप्रथम चर्चा का विषय बनाने का श्रेय 1970 ई. में प्रकाशित सिमोन द बुआ की शोधपूर्ण कृति 'ला विएलेस्से' (फ्रेंच) को दिया जा सकता है, जिसका अंग्रेजी अनुवाद 'ओल्ड एज' नाम से 1977 ई. में हुआ। "यह कृति वस्तुतः सिमोन द बुआ की भविष्योन्मुखी विश्व दृष्टि का प्रमाण है, और वृद्धावस्था विमर्श की गीता है। इसके प्रकाशित होते ही दार्शनिक और सामाजिक हलकों में 'वृद्धावस्था' पर सर्वथा नई दृष्टि से बहस छिड़ गई।"[1] वृद्धावस्था पर सिमोन की यह नई दृष्टि वास्तविक रूप वृद्ध विमर्श के आह्वान की दृष्टि है।

हिन्दी साहित्य जगत में वृद्ध जीवन का चित्रण हमेशा से अलग–अलग रूपों में चित्रित होता रहा है। यह अलग विषय हैं कि वह चित्रण वृद्ध विमर्श की वैचारिकी के रूप केंद्रित नहीं था, चूँकि तत्कालीन समय में वृद्धावस्था की अनेक शारीरिक, मानसिक इत्यादि समस्यायें थी, परन्तु वह आज के सूचना और प्रौद्योगिकी के युग की अस्मितामूलक समस्या के समान नहीं थी। तत्कालीन समय में वृद्ध व्यक्ति को समाज में बोझ न समझकर उन्हें अनुभव की खान के रुप देखा जाता था और समाज में उनका समुचित स्थान था। रामचरितमानस में दशरथ – कौशल्या, वशिष्ठ, विश्वामित्र, जामवंत, जटायु, शबरी जैसे अधिकांश पात्र वृद्ध ही है, किन्तु इन पात्रों की कहीं भी अवहेलना नहीं मिलती है बल्कि प्रभु श्रीराम उन्हें सम्पूर्ण सम्मान देते है– "प्रात काल उठि के रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहि माथा।"[2] वृद्धावस्था को इस मानव समाज के सम्पूर्ण अनुभव का सागर कहा जा सकता है, यहां

तक आते–आते एक ओर शारीरिक क्षमता का ह्रास होता है तो दूसरी ओर अनुभवरूपी बौद्धिक क्षमता अपने परिपक्व रूप में दिखाई देती है। इसी परिस्थिति का वर्णन करते हुए पद्मावत में मलिक मुहम्मद जायसी जी कहते है :–

"मुहम्मद बिरिधि बैस जो भई, जोबन हुत अवस्था गई।
बल जो गयऊ कै खीन सरीरु, दिस्टि गई नैनहि दुई नीरू।।
XXXX XXXX XXXX XXXX
बिरिधि जो सीस डोलावे, सी धुने तेहि रीस।
बूढ़ी आऊ होऊ तुम्ह, केई यह दीन्ह असीस।।"[3]

जायसी ने अपनी पंक्तियों में वृद्धावस्था की अनेक समस्याओं का वर्णन किया है, किन्तु सभी समस्याएं शारीरिक मात्र है, यहाँ वृद्ध जीवन के अस्तित्व के पहचान का संकट नही है। इस प्रकार मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में वृद्ध जीवन की वैचारिकी बड़े ही समृद्ध रूप में दिखाई देती है। वृद्धावस्था मानव जीवन की सांध्यकालीन बेला है, जहां पहुंचकर जीवन की अधिकांश सुख सम्पदा धूमिल नजर आने लगती है। ईश्वर के प्रति ध्यानाकर्षण ही प्रमुख ध्येय हो जाता है। भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य के कवियों ने वृद्ध जीवन की कठिनाईयों, पीड़ाओं इत्यादि के वर्णन में इश्वर के प्रति प्रेम को उजागर करने प्रयास किया है। महाकवि सूरदास भी वृद्धावस्था का बड़ा ही सटीक वर्णन करते हुए कहते हैं–

"अब मैं जानी देह बुढानी
सीस पाऊँ कर कहयौ न मानत, तन की दशा सिरानी
आन कहत आने कहि आवत, नैन नाक बहे पानी
मिटि गई चमक दमक अंग अंग की, मति और दिस्टि हिरानी
नहीं रहती कछुसुधि तन मन की, भई जु बात बिरानी
सूरदास अब होत बिगूचनि, भजि लै सारंग पानी।।"[4]

आधुनिक हिन्दी साहित्य में जो वृद्ध चिंतन देखने को मिलता है वह उत्तर आधुनिक दौर में वृद्धावस्था को एक नये विमर्श के रूप खड़ा करता है। हिंदी कथा साहित्य में वृद्ध समस्या का सशक्त रूप प्रेमचन्द की 'बूढी काकी' और 'माँ' जैसी कहानियों में देखने को मिलता है, जहां प्रेमचन्द ने वृद्धावस्था की समस्याओं के मूल में पहुँचने का प्रयास किया हैं। हम यह कह सकते है, उनका मानना था कि इस अवस्था पर आकर व्यक्ति के पास सहारों की कमी हो जाती है जबकि यही वह अवस्था है जब उसे किसी बच्चे के समान देखभाल की जरूरत होती है – "बुढ़ापा बहुधा बचपन का पुनरागमन हुआ करता है। बूढी बाकी में जिव्हा के सिवाय कोई चेष्टा शेष न थी न अपने कष्टों की ओर आकर्षित करने का रोने के अतिरिक्त दूसरा सहारा ही।"[5]

स्वतंत्र्योतर कथा साहित्य में वृद्ध विमर्श अपने प्रमुख रूप में नजर आने लगता है। उषा प्रियम्बदा ने अपनी कहानी 'वापसी' में बड़ी ही कुशलता से वृद्धवस्था के संकट को प्रस्तुत किया है कि किस प्रकार व्यक्ति वृद्धावस्था के आगमन पर अपने घर में ही वह पराया हो जाता है– "जैसे किसी मेहमान के लिए कुछ अस्थायी प्रबंध कर दिया जाता है उसी प्रकार, बैठक में कुर्सियों को दीवार से सटाकर बीच में गजाधर बाबू के लिए पतली सी चारपाई डाल दी गई थी।"[6] घर में अपने लिए ऐसा प्रबंध देखकर तथा परिवार के सदस्यों द्वारा किए गए

परिहास तथा अपनी आज्ञा की अवहेलना को देखते हुए वह घर वापसी का निर्णय लेते हैं। यहाँ रेलवे से सेवानिवृत्त हुए गजाधर बाबू की अपने परिवार, अपने घर से ही वापसी नहीं है, वापसी है मोहभंग से प्रभावित टूटते रिश्तों से, जहां गजाधर बाबू की जीवनसंगिनी भी उनके साथ चलने से साफ इनकार कर देती है–"तुम भी चलोगी", मैं? पत्नी ने सकपकाकर कहा, मैं चलूँगी तो यहाँ का क्या होगा इतनी बड़ी गृहस्थी फिर सयानी लड़की।"[7]

वापसी कहानी में जो वृद्ध समस्या दिखाई देती है, वह भीष्म साहनी की कहानी चीफ की दावत में और अधिक विस्तृत फलक का रूप लेकर सामने आती है, जहाँ बदलते पारिवारिक मूल्यों में वृद्ध माँ बेटे शामनाथ के लिए अमेरिकी बॉस चीफ के समक्ष शर्म का पर्याय बन जाती है। असहाय वृद्ध माँ स्वयं ही घर छोड़ने का निर्णय लेती है– "मैं अब यहाँ क्या करूँगी जो थोड़े दिन जिन्दगानी के बाकी है, भगवान का नाम लूंगी तुम मुझे हरिद्वार भेज दो।"[8]

वैश्वीकरण और भूमंडलीकरण के युग ने हिंदी कथा साहित्य के वृद्ध विमर्श को नया आकार दिया है तथा इसने विमर्श के मूल्यांकन को नए पैमाने पर स्थापित किया है। यहां मानवीय मूल्यों का बिखराव अत्यंत तेजी से दिखाई देता है। पूंजीवाद के चकाचौंध से प्रभावित आज के युवा कैरियर के लिए बड़े शहरों की ओर रुख कर रहे हैं और वृद्ध माँ बाप न चाहते हुए भी एकाकी जीवन जीने को बाध्य हैं– "माँ ने कहा", "इसको भी साथ ले जाओगे तो हम दोनों बिल्कुल अकेले रह जाएंगे। वैसे ही यह सीनियर सिटिजन कॉलोनी बनती जा रही है। सबके बच्चे पढ़–लिखकर बाहर चले जा रहे हैं हर घर में समझो एक बूढ़ा, एक बूढ़ी, एक कुत्ता और एक कार बस यह रह गया है।"[9]

इस आधुनिक युग ने एक ओर वृद्धों में एकाकीपन की समस्या को जन्म दिया है तो दूसरी ओर सूचना और प्रोद्योगिकी ने नई पीढ़ी और पुरानी पीढी के संबंधों के मध्य खाई का निर्माण किया है। बड़े बुजुर्गो का अनुभव सिंचित ज्ञान भी नई पीढ़ी के लिए निरर्थक लग रहा है। ऐसी स्थिति में वृद्ध स्वयं को पिछड़ा हुआ समझ रहे हैं। 'गिलीगडु' उपन्यास के बाबू जसवंत सिंह कहते हैं– "कंम्प्यूटर जो देता है – वह देने में अक्षम है। उनके अनुभव अप्रासंगिक हो उठे है। ज्ञान सीमित तार छुटपने से जुड़े तो जुड़े कैसे?"[10] समाज का आकार रहन–सहन आज जितनी तेजी से बदल रहा उतनी ही तेजी से मानवीय मूल्य और मनोवृतियाँ भी बदल रही। बाजारवाद प्लेग की तरह परिवार को तितर–बितर कर तेजी से निगल रहा है। संतानों के होते हुए भी माँ बाप निःसंतानता का अनुभव कर रहे है। काशीनाथ सिंह जी अपने उपन्यास 'रेहन पर रग्घू' में इसे पूरी सशक्तता के साथ प्रस्तुत करते हैं। रघुनाथ अपनी पत्नी से कहते है– "शीला हमारे तीन बच्चे है, लेकिन पता नहीं क्यों कभी–कभी मेरे भीतर ऐसी हूक उठती है जैसे लगता है– मेरी औरत बाँझ हैं और मैं निःसंतान पिता हूँ। माँ और पिता होने का सुख नही जाना, न बेटे की शादी देखी हमने न बेटी की, न बहू देखी न होने वाला दामाद देखा।"[11]

स्पष्ट है वृद्धावृद्धा जो प्रारम्भ में सम्मान, पथ प्रदर्शक तथा अनुभव सिंचित ज्ञान का पर्याय थी, वह कालांतर में निरंतर हाशिये का शिकार होती रही। कभी उसे शर्म की दृष्टि हो देखा गया, तो कभी वह स्वयं आधुनिकता की आँधी में बिखरे हुए नजर आये। समाज और परिवार से बेसहारा तथा वृद्धाश्रम में जीवन बिताने को मजबूर वृद्धों पर अस्तित्व का संकट साफ दिखाई दे रहा है। हिन्दी साहित्य में जो वृद्ध वैचारिकी का वर्णन हमेशा से दिखाई देता रहा है, वह आज इक्कीसवीं शताब्दी में पूर्व सशक्ता के साथ एक पृथक विमर्श का रूप

लेकर प्रस्तुत हुआ है। इसने वृद्ध वैचारिकी तथा उसके मूल्यांकन को एक नया आयाम दिया है।

संदर्भ सूची :-

1. 'प्रसाद', चंद्रमौलेश्वर, वृद्धावस्था विमर्श, नजीबाबाद, परिलेख प्रकाशन, 2016, पृष्ठ सं. 09
2. तुलसीदास, रामचरितमानस, बालकांड, गोरखपुर, गीता प्रेस, पृष्ठ सं. 204
3. 'शुक्ल', रामचंद्र, जायसी ग्रंथावली, उपसंहार खंड, नागरी प्रचारिणी सभा, संवत 1992, पृष्ठ सं. 342
4. 'वर्मा', धीरेंद्र, सूरसागर सटीक, इलाहाबाद, साहित्य भवन (प्रा.) लिमिटेड, 1986, पृष्ठ सं. 36
5. प्रियदर्शन, बड़े बुजुर्ग, नई दिल्ली, राजकमल पेपरबैक्स, 2014, पृष्ठ सं.15
6. 'श्रीवास्तव', डॉ. परमानंद एवं डॉ. गिरीश स्तोगी, कथांतर, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 1989, पृष्ठ सं. 151
7. वहीं, पृष्ठ सं.
8. 'साहनी', भीष्म, प्रतिनिधि कहानियां, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 2019, पृष्ठ सं. 22
9. 'कालिया', ममता, दौड़, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 2023, पृष्ठ सं. 40
10. 'मुद्गल', चित्रा, गिलीगडु, नई दिल्ली, सामयिक प्रकाशन, 2022, पृष्ठ सं. 47
11. 'सिंह', काशीनाथ, रेहन पर रग्घू, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 2022, पृष्ठ सं. 23

पता : कलेक्ट्रेट कंपाउंड कचेहरी लॉक अप के बगल मे कैसरबाग लखनऊ–226001

मो. न. 8840180822

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 22-25

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सिनेमा में पर्यावरण

डॉ. अमिता

दिल्ली कॉलेज ऑफ़ आर्ट्स एंड कॉमर्स, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली–११००६६

आज समाज को चेताने में अधिक सक्रिय सिनेमा और सोशल साइट्स हैं। हमारे जीवन, मन मस्तिष्क में इन दोनों की छाप अधिक देखी जा सकती है। भारत में सिनेमा ताकतवर है। इसका कारण है देशीय सिनेमा का बहुभाषिक होना। भिन्न–भिन्न भाषा संस्कृति से न जाने कितने अनेक विषयों से हम दिन–प्रतिदिन रूबरू होते हैं। अनेक विषयों में से एक पर्यावरण भी है। हम इस सत्य से अनभिज्ञ नहीं कि बिन पर्यावरण जीवन संभव नही। परन्तु हम जानते हुए भी इस सत्य से मुंह मोड़े हुए हैं। पर्यावरण जैसे गंभीर विषय पर आधारित फ़िल्में उँगलियों पर गिनी जा सकती हैं, शायद किसी को याद भी न हो।

आज फ़िल्मी जगत एक बाजार में तब्दील हो गया है। यहाँ कमर्शियल सिनेमा का बोलबाला अधिक दिखता है। यहाँ निर्देशक एक खास वर्ग को केंद्र में रख कर फ़िल्में बनाता है, जिससे आमदनी अच्छी हो। आमतौर पर लीक से हटकर कम फ़िल्में बनती है। कुछ फ़िल्में जल जंगल जमीनके संरक्षण की आवाज जरूर बनी हैं। राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर अपने सन्देश को पहुँचाने में सक्षम भी हुई हैं। इस कड़ी में अभी हाल ही में प्रदर्शित दक्षिण की फिल्म 'एलिफेंट व्हिस्पेर्स' ने छोटी अवधी में समाज को बड़ा सन्देश दिया है। कम बजट की इस फिल्म ने प्रसिद्धि अंतरराष्ट्रीय जगत की पायी है।

फिल्म में एक ऐसे कपल की कहानी है जो जानवरों को अपने बच्चों की तरह प्यार करते हैं। सत्य घटना पर आधारित इस फिल्म में मदुमलाई टाइगर्स रिजेर्वेर्स एरिया जो कि तमिलनाडु में है, इस जगह प्रकाडू नामक हाथियों का एक कैंप है जिसमें हाथियों का आश्रय है। यहाँ रहने वाले लोग जंगल को अपना घर और हाथियों को परिवार का हिस्सा मानते हैं। वे अपनी दैनिक जीवन की जरूरतें जंगल से ही पूरी करते हैं। इस फिल्म में दिखाया गया है, अगर इंसान अपने स्वार्थ को छोड़ जानवर और जंगल को प्यार देगा तो प्रकृति भी उन्हें दुगना प्यार देगी। इन्सान और जानवर के प्यार दुलार और संरक्षण के इस भाव ने करोड़ों लोगो का दिल जीता साथ ही भारत को एक बार फिर विश्व स्तरीय पुरुस्कार 'ऑस्कर' दिला दिया। दक्षिण की कान्तारा फिल्म ने भी लोगों में पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूक करती है। कान्तारा आदिवासियों की जीवन शैली पर प्रकाश डालती, जल जंगल जमीन के बिना आदिवासियों का जीवन मृतक सामान है। सामंती विचार के लोगो द्वारा आदिवासियों की जबरन जमीन छिनना उन पर जातिगत उत्पीड़न अत्याचार के सच को बखूबी दिखाती है। अपने दमदार कंटेंट

वनों की सुरक्षा के मुद्दे को अंतर राष्ट्रीय मंचों तक पहुँचाया।

दक्षिण का सिनेमा हिंदी सिनेमा की अपेक्षा अधिक मजबूत है अपनी बात ठोस ढंग से वह वहां के लोगों को पहुँचाने में समर्थ है। इसका बड़ा कारण है हिंदी सिनेमा के पास पर्याप्त मात्रा में दर्शकों का होना परन्तु ये दर्शक महज कंजूमर है मैच्योर क्रिटिक समझ वाले लोग नहीं। सिनेमा में डिजाइनिंग, होमवर्क, स्क्रिप्ट, पठकथा तकनीक पर सही दिशा में काम करने की जरूरत है। हम देखते हैं दक्षिण सिनेमा इन सभी पहलुओं पर बारीकी से काम करता है। इसकी वजह है फिल्म सोसाइटी मोमेंट का सही दिशा में काम करना। दक्षिण में फिल्म सोसाइटी १९६० में स्थापित हुई आज बड़ी संख्या में वहां फिल्म सोसाइटी है अकेले केरल में सौ से अधिक फिल्म सोसाइटी है कुछ तो २५ वर्ष से पुरानी है। ये सभी सोसाइटी एक गंभीर कला के रूप में फिल्मों के बारे में जागरूकता पैदा करने के लिए प्रयास कर रहे हैं।

अब बात करते है वर्ष २०१७ में रिलीज़ हुई हिंदी फिल्म 'शेरनी' की जिसने दर्शकों को अपनी ओर खिंचा। फिल्म वन्य जीव संरक्षण पर केन्द्रित है। फिल्म का एक संवाद सोचने पर मजबूर करता है :– क्या पर्यावरण और डेवलपमेंट में संतुलन जरूरी है। अगर विकास के साथ जाओ तो पर्यावरण को बचा नहीं सकते और अगर पर्यावरण को बचाने जाओ तो विकास बेचारा उदास हो जाता है "वाकई इस उधेड़बुन में सत्ता, कॉर्पोरेट्स करते अपनी मर्जी ही है। यह फिल्म वन्य का जीव संरक्षण अधिकारियों एवं राजनेताओं के अंतर्संबंधों को भी उघाड़ती है।

फिल्म में विद्या बालन एक वन विभाग महिला अधिकारी के पद पर है जो कि ईमानदार अधिकारी है अपने काम के प्रति पूरी तरह समर्पित। विद्या की पोस्टिंग जंगल किनारे बसे एक छोटे से गाँव में होती है। गाँव के लोगों की समस्या है कि वे अपने मवेशियों को जंगल चराने नहीं भेजे तो उनकी गुजर कैसे होगी क्योंकि जंगल में शेरनी का कहर है। जो आये दिन किसी न किसी मवेशी या ग्रामीण लोगों को अपना शिकार बना रही है। इस समस्या का फायदा स्वार्थी राजनेता उठाते है, जिसमें पूर्व विधायक और वर्तमान विधायक भोली–भाली जनता को शेरनी को जिन्दा या मारने का वायदा कर सत्ता हासिल करना चाहते है। जिन्दा शेरनी पकड़ने का काम वन अधिकारी बेहतर ढंग से कर सकते हैं परन्तु सत्ता के दबाव में आकर वरिष्ठ अधिकारी बाहरी शिकारी पिंटू से शेरनी का शिकार करा कर अपना पिंड छुड़ाने में अपनी भलाई समझते है। परन्तु महिला अधिकारी विद्या विपरीत परिस्थितियों में ग्रामीण लोगों के साथ मिलकर शेरनी के दो बच्चों को बचाने में सफल होती है। पूरी फिल्म प्रारंभ से लेकर अंत तक दर्शकों को बांधे रहती है। वन्य जीव, जंगल की समस्याएं,ग्रामीण जीवन की दुश्वारियों को साथ ही राजनैतिक प्रपंच की पोलपट्टी भी खोलती है। जेंडर विमर्श की दृष्टि से इस फिल्म के अंतर्गत सिस्टम में महिलाओं को अपनी काबिलियत सिद्ध करने के लिए कितने संघर्ष करने पड़ती है उन सच्चाई से भी अवगत कराती है। इस फिल्म कि खासियत है कि इससे समाज का प्रत्येक वर्ग जुड़ता है फिल्म की पटकथा निर्देशन अभिनय बेजोड़ है, जिसकी बदोलत पर्यावरण के अति संवेदनशील मुद्दे की तरफ समाज का ध्यान खींचने का प्रयास किया गया है।

जलवायु परिवर्तन को लेकर हिंदी सिनेमा में "कड़वी हवा" का भी निर्माण हुआ है। जिसमें उत्तर प्रदेश के एक गाँव में रहने वाले बूढ़े अंधे किसान और गाँव के अन्य बेबस लोगों की कहानी है। गाँव में रहने वाले सीधे साधे ग्रामीण लोगों को चार मौसम तो पता है लेकिन उनका सामना केवल दो ही मौसम से होता है एक सर्दी तो दूजा गर्मी। गर्मी इतनी लम्बी होती है कि उनके खाने के भी लाले पड़ जाते हैं। क्योंकि किसानों की खेती सूखे के कारण बर्बाद हो जाती है। ऐसे में गांव के लोग बैंक से कर्जा लेकर कुछ दिन गुजर करते हैं। धीरे–धीरे बैंक का कर्जा न चुकाने के कारण वे कर्ज तले दबते चले जाते है और अंत में आत्महत्या कर लेते है। बैंक से कर वसूली के लिए एक एजेंट को भेजा जाता है। जिसे वहां के लोग यमदूत कहते है। क्योंकि गावं के लोगों का मानना है जब जब एजेंट आया तब कोई न कोई आत्महत्या कर लेता। बूढ़ा अँधा किसान अपने बेटे को कर्ज के बोझ से मुक्त करने के लिए यमदूत से एक समझौता करता है। विकास की होड़ में इन्सान किस कदर अपने ही अस्तित्व को ख़त्म किए जा रहा है।

फिल्म एक गंभीर प्रश्न समाज के समक्ष खड़ा करती है। संजय मिश्रा और रणवीर शोरी बदलते दौर में बदलती परिस्थितियों से रुबरु कराती है कि सच में अब हवा सही मायनों में कडवी हो गयी है जहाँ इंसान का रहना भी दूभर होता जा रहा है। जलवायु परिवर्तन के कारण कहीं सुखा है तो कहीं बाढ़ का कहर। रणवीर शोरी बाढ़ से परेशान हो उड़ीसा से विस्थापित होकर उत्तर प्रदेश के एक छोटे गावं आते है दूसरी तरफ संजय मिश्रा अपने गाँव में पड़ रहे सूखे की मार झेलने को विवश। दर्शक जब फिल्म को देख रहे होते है तो उन समस्याओं से अपने आपको घिरा हुआ पाते है। यह फिल्म निर्देशक और अभिनेताओं का कमल है कि उन्होंने लोगों का ध्यान मौसम परिवर्तन से होने वाली दिक्कतों से अवगत कराया। "भूरक्षण, जलवायु परिवर्तन और सूखे की समस्या से देशवासी ही नहीं पूरी दुनिया के लोग जूझ रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ की साल २००० से लेकर २०१६ की रिपोर्ट उठाकर देखे तो तकरीबन एक अरब से ज्यादा लोग सूखे से प्रभावित है। आशंका है भविष्य में अमेरिकी महाद्वीप, आस्ट्रेलिया और भारत की स्थिति अधिक भयावय हो सकती है। विश्व बैंक का अनुमान है कि वर्ष २०५० तक सूखे के चलते २१.६ करोड़ लोगों को पलायन की स्थिति का सामना करना पड़ सकता है"। भविष्य में हमें किस प्रकार की दिक्कतों का सामना करना पड़ सकता है। फ़िल्में हमें उन स्थिति परिस्थिति से सामना कराती है परन्तु फिल्मों का उद्देश्य तभी सफल माना जायेगा जब सरकार और इंसान पर्यावरण के महत्त्व को समझें और उसे बचाने के लिए सही दिशा में कार्य करें। सूखे की समस्या पर अस्सी के दशक में 'सूखा' फिल्म राजनैतिक स्वार्थ को केंद्र में रखते हुए सूखाग्रस्त इलाकों की पीड़ा से अवगत कराती है।

कोरोना काल और कई प्राकृतिक आपदाओं को झेलने के बाद अब पर्यावरण फ़िल्में पर्यावरणीय मुद्दों के बारे में सार्वजनिक चर्चाओं को प्रोत्साहित करने में प्रभावित हो गई है। तकनीकी विकास के चलते पर्यावरण फिल्मों ने भिन्न शैली ईजाद की है। पर्यावरण और मानव दोनों ही एक दूसरे को प्रभावित करते है। कुछ महत्वपूर्ण बातें जिन पर अभी काम करना आवश्यक है।

सिनेमा में तकनीकी, कंटेंट सिनेमोटोग्राफी के साथ साथ हमें उन सभी साधनों पर भी काम करने की

आवश्यकता है जिससे पर्यावरण जैसे संवेदनशील मुद्दे को जन जन तक पहुँचाया जा सके।

आभासी मंच जैसे वजज प्लेटफार्म, शोर्ट मूवीज की पहुँच एक पढ़े लिखे खास वर्ग तक सीमित है। जबकि पर्यावरण जागरूकता सन्देश देश के प्रत्येक वर्ग तक पहुंचना आवश्यक है। किसी एक आध फिल्म के जादू से उन बाधाओं को तो दूर नहीं किया जा सकता जो पर्यावरण फिल्मों के मार्ग में आते हैं।

देशीय अंतरराष्ट्रीय मंचों पर फिल्म फेस्टिवल तो बहुत होते हैं परन्तु ये मंच केवल फेस्टिवल बन कर रह जाते हैं जमीनी धरातल पर कार्य करने की जरूरत है।

संदर्भ :–

1. सुखी धरती को सींचने का जतन, जनसत्ता १६ जून २०२३

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 26-30

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

साहित्य में नारी विमर्श

डॉ. अनीता शर्मा

सहायक आचार्य, रॉयल इंस्टिट्यूट ऑफ़ साइंस एंड मैनेजमेंट, गुरुग्राम, हरियाणा–122505

मानव सभ्यता की विकास–यात्रा के समानांतर स्त्री संघर्ष भी अपनी निरंतरता में आरम्भ से ही समाज में विद्यमान रहा है। देश–काल के साथ इस संघर्ष के सिर्फ स्वरूप बदलता रहा है। मूल स्वर में सामंती युग से लेकर आज के आधुनिक युग तक एकरूपता रहा है। हमारे समाज में स्त्री को कभी रीति–रिवाज के नाम पर तो कभी पितृसत्तात्मक अधिकार भावना के कारण, कभी पुरुष की अहम् भावना के कारण तो कभी शिक्षित होने एवं आत्मनिर्भर होने के कारण सदैव कदम–कदम पर शोषण का शिकार होना पड़ा है। इस शोषण और उसके विरुद्ध स्त्री के नितांत निजी संघर्षों की लंबी एवं करूण कहानी है। उसे न केवल बाह्य समाज बल्कि स्वयं अपने परिवार से और यहाँ तक कि खुद से भी निरंतर संघर्ष करना पड़ा है। इसी संघर्ष को सिमोन द बउआर ने कहा था कि "स्त्री पैदा नहीं होती, उसे बना दिया जाता है।"भारतीय समाज में तो स्त्री को हमेशा से एक वस्तु के रूप में देखा जाता रहा है। रेखा कास्तकार स्त्री विमर्श के सरोकार पर बात करते हुए कहती हैं कि "स्त्री विमर्श का सरोकार जीवन और साहित्य में स्त्री मुक्ति के प्रयासों से है। स्त्री की स्थिति की पड़ताल उसके संघर्ष एवं उसकी पीड़ा की अभिव्यक्ति के साथ–साथ बदलते सामजिक संदर्भों में उसकी भूमिका, तलाशे गये रास्तों के कारण जन्में नयें प्रश्नों के टकराने के साथ–साथ आज भी स्त्री की मुक्ति का मूल उसके मनुष्य के रूप में स्वीकारे जाने का प्रश्न है।"इसी स्वीकारोक्ति की तलाश करते हुए प्रभा खेतान ने जब सिमोन द बोउआर की पुस्तक 'द सेकंड सेक्स' का हिंदी में अनुवाद किया तब उन्होंने उसकी भूमिका में लिखा है कि– "हम भारतीय कई तहों में जीते हैं। यदि हम मन की सलवटों को समझते हैं, तो जरूर यह स्वीकारेंगे कि औरत का मानवीय रूप सहोदरा कही जाने के बावजूद स्वीकृत नहीं है। लोगों को उससे उम्मीदें बहुत होती हैं। वह अपनी सारी भूमिकाओं को बिना किसी शिकायत के निभाए...स्पष्टवादिता उसका गुनाह समझा जाता है।.."

नारी विमर्श एक ऐसा शब्द है जो नारी सम्बन्धी समस्त चर्चाओं को लेकर चलता है। पुरुष प्रधान समाज में नारी की हैसियत, अधिकार, अस्मिता, अस्तित्व को लेकर कुछ ऐसे प्रश्न है। जिनका उत्तदर नारी विमर्श में ढूंढने का प्रयास किया जा रहा है। नारी विमर्श का अर्थ है– मानव मुक्ति। मानव मुक्ति में लिंग और वर्ग का भेद नहीं रहता। वास्तव में जहाँ नारी में 'स्व' के प्रति सावधानी, 'में' के प्रति चिन्ताभाव और अपने अधिकार का अहसास है, समझना चाहिए वही से नारी विमर्श का सूत्रपात है। नारी विमर्श का प्रधान प्रयोजन जनतंत्र के साथ–साथ पारिवारिक प्रजातंत्र की स्थापना है।

नारी का व्यक्तित्व बहुआयामी है। वह व्यावसायिक ऊँचाइयों को छूने के साथ ही एक आदर्श पत्नी, पुत्री

और माता की भूमिका अदा करती है। समर्पण और प्रेम नारी के स्वाभाविक गुण हैं जो उसे सर्वोच्च स्थान प्रदान करते हैं। प्रत्येक महिला शक्ति सम्पन्न व जीवनदायिनी है। उसने पैगम्बरों, मसीहों, अवतारों, सूफियों और संतों को इस दुनिया में जन्म दिया है। नारी अपने शरीर से एक अन्य प्राणी को जन्म देती है। नारी की इस क्षमता की बराबरी नर कभी नहीं कर सकता। क्या यह बात सत्य नहीं है कि प्रत्येक महान् व्यक्ति को महिला ने ही जन्म दिया है?

आज जीवन और जगत् के विविध क्षेत्रों में स्त्री ने अपनी एक स्वतंत्र पहचान बनायी है, पर सच केवल इतना ही नहीं है। हम अगर अतीत में दृष्टि डालें तो ऋग्वैदिक काल एवं उत्तरवैदिक काल में घोषा, लोपामुद्रा, गार्गी, मैत्रेयी, अनुसूया, अरून्धती जैसी चिन्तनशील तेजस्विनी स्त्रियां भी थीं और समाज में उनका सम्मानजनक स्थान था। किन्तु धीरे–धीरे स्त्रियों के प्रति समाज की अवधारणा बदली और उसका स्वतंत्र अस्तित्व संकटग्रस्त हो गया। स्त्री के प्रति समाज की बदलती अवधारणा को हम मनुस्मृति के द्वारा जान सकते हैं, जिसमें कहा गया है कि–

"पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने
रक्षन्ति स्थविरे पुत्राः, न स्त्री स्वातन्त्रयमर्हति।"

स्मृतिकाल के उपरान्त मध्य युग में मीराबाई, रत्नावली, रानी दुर्गावती जैसी आत्मचिन्तनशील स्त्रियां भी थीं, जिन्होंने अपनी स्वतंत्र पहचान बनाई। स्त्री का इतिहास महिमामय है। उपनिषदों में स्त्री और पुरूष को एक ही तेज की दो ज्योतियाँ कहा गया है। इसी से उस काल में भेदभाव का अभाव है। स्त्री–पुरूष के अवलम्बन पर सारा संसार स्थिर है। पुरूष से पृथक् स्त्री की सत्ता नहीं है तो स्त्री से पृथक् पुरूष की भी कोई सत्ता नहीं है। किन्हीं लोगों ने स्त्री के लिए 'अबला' शब्द का प्रयोग किया है, परन्तु वेदों में इस प्रकार का कोई शब्द सुनाई नहीं देता, इसके विपरीत वहां वीरिणी–वीर पुत्रों को जन्म देने वाली अथवा वीरता के कार्य करने वाली इत्यादि रूप में स्त्रियों का वर्णन मिलता है।

यद्यपि ज्ञान की देवी सरस्वती, वैभव की देवी लक्ष्मी एवं शक्ति की अधिष्ठात्री देवी दुर्गा मानी जाती हैं। इनका धार्मिक अनुष्ठानों में आज भी महत्व बना हुआ है; किन्तु सामाजिक सन्दर्भों में उसकी स्थिति बिल्कुल विपरीत हो गयी है। स्त्री मोह रूपी माया है और पुरूष उसको साधन मार्ग में ले जाने वाला। सिद्धार्थ जैसे विवेकशील युवक अपनी पत्नी यशोधरा को रात्रि में सोता हुआ छोड़कर चुपचाप जंगल को निकल गये। पर पत्नी पति के मार्ग की बाधा नहीं है, यशोधरा के बहाने गुप्त जी ने कहा है–

"सखी वे मुझसे कहकर जाते,
कह, तो क्या मुझको वे अपनी पथ–बाधा ही पाते?"

वेद–वेदान्त से लेकर कहीं भी हम दृष्टि डाले तो स्त्री के प्रति हर कही दुराग्रह ही नजर आयेगा। लोगों को लगता है समाज में बदलाव हो रहा है। हम नये दौर से गुजर रहे हैं, लेकिन एक चीज जो शायद कभी नहीं बदलेगी। वह है स्त्री को सिर्फ एक देह मात्र समझने की मानसिकता। सदियों से स्त्री को दोयम दर्जे का समझा गया। इसी शोषण और दमन के प्रति स्त्री चेतना ने ही स्त्री–विमर्श को जन्म दिया।

नारी की अपनी सत्ता, महत्ता रही है। पाश्चात्य विचारक लामर्टिना के शब्दों में सभी महान् कार्यों के आरम्भ में नारी का हाथ रहा है। महादेवी वर्मा के शब्दों में– "नारी केवल मास पिंड की संज्ञा नहीं है। आदिमकाल

से आज तक विकास पथ पर पुरुष का साथ देकर, उसकी यात्रा को सरल बनाकर उसके अभिशापों को झेलकर और अपने वरदानों से जीवन में अक्षय शील भरकर मानवी ने जिस व्यक्तित्व, चेतना और हृदय का विकास किया है, उसी का पर्याय नारी है। स्त्री और पुरूष एक दूसरे के पूरक हैं, सही है किन्तु वे दो ऐसे छोर भी हैं, जो सृष्टि के क्रम को बनाए हुए हैं। शारीरिक दृष्टि से जिस तरह नारी अंगों का झुकाव कोमलता की ओर है, वहीं पुरूष अंगों का झुकाव कठोरता की ओर है। इसी प्रकार मानसिक दृष्टि से जहां पुरूष में विजय की भूख होती है, नारी में समर्पण की। पुरूष जहां लूटना चाहता है वहीं स्त्री लुट जाना चाहती है, क्योंकि वह स्नेह व सौजन्य की प्रतिमूर्ति होती है। वह वाणी से जीवन को अमृतमय कर देती है। उसका हृदय सन्तप्तों को शीतल छाया देता है और उसका हास्य निराश की कालिमा को पोंछ कर आश की किरणें बिखेरता है, यदि नारी वर्तमान के साथ भविष्य को भी हाथ में ले लेतो वह अपनी शक्ति से बिजली की तड़प को भी लज्जित कर सकती है। आदिकाल से ही नारी जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में पुरूषों के साथ चलती रही है। अधिकांश सभ्यताएं और संस्कृतियां अपने आदिम युग में मातृसत्ता प्रधान रही हैं।"

स्त्री–विमर्श परिचय एवं महत्व :–

वैसे तो स्त्री विमर्श स्वाधीनता की प्राप्ति के बाद की संकल्पना है, किन्तु बीसवीं शदी के अन्तिम दो दशक में इस विचारधारा को पनपने के लिए उपयुक्त परिवेश मिला। स्त्री–विमर्श सह अस्तित्व की भावना और स्त्री मुक्ति स्त्री को समानता और बराबरी का दर्जा दिया जाना है। स्त्री–विमर्श आत्मचेतना, आत्मसम्मान, आत्मगौरव के साथ समता और समानाधिकार की पहल का ही दूसरा नाम है।

अपने अस्तित्व के बोध ने ही स्त्री को विमर्श की प्रेरणा दी। पुरूष की एकाधिकारशाही के वातावरण से स्त्री को बाहर लाने का प्रयास ही स्त्री–विमर्श है। और स्त्री–विमर्श कुछ नहीं बल्कि, अपनी अस्मिता की पहचान, स्व की चिन्ता, अस्तित्व बोध और अधिकार को जतलाने, बतलाने का चिन्तनशील विचार है। यह सदियों से चली आ रही पुरूष मानसिकता का तर्पण है, भावुक स्त्री का समर्पण नहीं। जहां 'मैं' की चिन्ता का अहसास हो जाता है, वहीं से स्त्री–विमर्श की शुरूआत होती है। इस प्रकार अपने अस्तित्व का बोध ही स्त्री विमर्श है।

स्त्री–विमर्श को विद्वानों ने अपने–अपने ढंग से परिभाषित किया है। प्रभा खेतान हिन्दी की ऐसी सशक्त नारीवादी लेखिका हैं, जिन्होंने 'छिन्नमस्ता' में स्त्री–विमर्श के परिप्रेक्ष्य में लिखा है– "वस्तुतः स्त्री मुक्ति की अवधारणा से उत्पन्न स्त्री–विमर्श का यह एक प्रतिक्रियावादी दौर कहा जा सकता है। सामाजिक यथार्थ का इस विचारधारा में कितना अंश है। यह बहस का विषय हो सकता है। स्त्री का स्वयं का व्यक्तित्व और स्त्री होना क्या कम महत्वपूर्ण है, जिसमें पुरूष जैसा दिखने की आकांक्षा हुई, यह अतिवाद था। स्त्री होना कोई अपराध नहीं है पर नारीत्व की आँसू भरी नियति स्वीकार करना अपराध है।" स्त्रीवादी साहित्य चिंतन के क्षेत्र में पितृसत्तात्मक व्यवस्था की व्याख्या और पुनर्व्याख्या आवश्यक है। यह पितृसत्तात्मक व्यवस्था स्त्री के शोषण का केन्द्र बिन्दु है। इस व्यवस्था में स्त्री को घर सौंपा जाता है जहां उस पर अनेक शोषण होते हैं। पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री मात्र वस्तु है, साधन है, नौकर अथवा बच्चे पैदा करने की मशीन मात्र है। इस व्यवस्था ने स्त्री को दोयम दर्जे का नागरिक बना दिया।

फिर भी अगर कहीं स्त्री–विमर्श का स्वर आक्रामक हुआ है तो उसके पीछे प्राचीन काल से चली आ रही सामाजिक जकड़न से मुक्ति की तीखी छटपटाहट कारण रही है। स्त्रीमन की बेबसी का चित्रण बानीरा गिरी इन

पंक्तियों के माध्यम से करती हैं–

"मुझे रूलाई रोनी है, मुझे हंसी हँसनी है,
मुझे जीवन बांचना है
मुझे भी तोड़ना है शिव का धनुष।"

व्यापक अर्थ में कहें तो स्त्री–विमर्श स्त्री जीवन के अनछुए अनजाने पीड़ा को व्यक्त करने का अवसर देता है, किन्तु इसका उद्देश्य यथास्थिति को स्वीकार करना व उस पर आंसू बहाना बिल्कुल नहीं है, बल्कि इसके लिए जिम्मेदार तथ्यों की खोज करना है।

समकालीन साहित्य की प्रत्येक विधा स्त्री जीवन के सभी संघर्षों को स्वर प्रदान करती है। नारी का संघर्ष पुरुषों से बराबरी करने या उनसे आगे निकल जाने का नहीं बल्कि उसका संघर्ष समाज में, परिवार में, स्वयं को स्थापित करने तथा अपनी अस्मिता की तलाश के लिए है।

स्त्री विमर्श के माध्यम से प्रारंभ हुई इस स्त्री अस्मिता के संघर्ष ने बदलाव का कोई बहुत बड़ा चमत्कार तो नहीं उत्पन्न किया परन्तु समाज की मानसिकता में आंशिक बदलाव की स्थिति अवश्य बनाई है। स्त्री विमर्श स्त्री के जीवन के अनछुए, अनजाने पहलुओं, पीड़ा–जगत के उद्‌घाटन के अवसर उपलब्ध कराता है। वह स्त्री के प्रति हो रहे शोषण के खिलाफ एक सशक्त संघर्ष है।

सामान्य अर्थों में स्त्री विमर्श स्त्री की अस्मिता मूलक पहचान को दिलाने का कार्य करता है। यह स्त्री के प्रति हो रहे शोषण के विरूद्ध संघर्ष है। 'स्त्री विमर्श' भी स्त्री को मनुष्य रूप में स्थापित करने का प्रयास करता है। 'स्त्री विमर्श' स्त्री की देह के धरातल पर मुक्ति की पक्षधरता के साथ–साथ उसकी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, समानता की बात करता है। यह मात्र देह का विमर्श नहीं, बल्कि रूढ़ हो चुकी मान्यताओं, परम्पराओं के प्रति असंतोष तथा मुक्ति का स्वर है।

स्त्री विमर्श उत्तर–आधुनिकता की धुरी पर खड़ा एक सशक्त साहित्यिक विमर्श है। स्त्री विमर्श केवल स्त्री की मुक्ति या पुरुष की बराबरी का आख्यान नहीं है बल्कि अत्यंत गहन अर्थवाला यह शब्द नारी मुक्ति के साथ–साथ नारी की अस्मिता, चेतना, व स्वाभिमान को भी अपने में समेट लेता है।

डॉ. रस्तोगी का मानना है कि "साहित्य के विकास में नारी का योग उसके भावनात्मक जगत के अस्तित्व की कहानी है।" इसी भावनात्मकता को आगे के दशकों में आने वाली महिला रचनाकारों ने स्त्री चेतना के विभिन्न आयामों के रूप में उजागर किया। पहले वह मूक पशु की तरह सब कुछ सहन करती थी, परन्तु अब वह पुरुष के अत्याचारों का विरोध कर अपनी अलग पहचान बनाने में सक्षम होती नजर आती है। 'सुदर्शन' वर्तमान नारी की उपलब्धि बताते हुए कहते हैं कि "आज की शिक्षित नारी की प्रत्येक क्षेत्र में सक्रिय भूमिका है, शिक्षा, चिकित्सा, तकनीकी, कला, कविता, साहित्य–सृजन, पर्वतारोहण, कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जहाँ नारी ने प्रवेश न किया हो।"

कृष्णा सोबती, चित्रा मुद्‌गल, मंजुल भगत, उषा प्रियम्वदा, ममता कालिया आदि लेखिकाओं ने समाज में व्याप्त विभिन्न विद्रूपताओं, को अपने कथा साहित्य का प्रमुख विषय बनाया। तमाम दूसरे विषयों के बावजूद इनके साहित्य में स्त्री मुक्ति का प्रश्न ही केंद्र में है। मृदुला गर्ग भी उन महिला रचनाकारों में से एक हैं, जिन्होंने अपने साहित्य में स्त्री मुक्ति के प्रश्न को साहस के साथ उजागर किया। मृदुला जी नारीवाद की परिभाषा देते हुए कहती

हैं कि– "नारीवाद की परिभाषा बस इतनी है कि नारी को अधिकार है यह तय करने का कि वह क्या करना चाहती है? क्या नहीं? कोई मुखौटा नहीं की स्त्रियों पर चस्पा कर दिया जाए।"

नारीवाद तो आज एक जीवन मूल्य की तरह हो गया है। नारी आज समाज में अपने उचित स्थान की मांग करती हुई दिखाई दती है। इसमें हम देखते है कि पुरुष वर्चस्व के नीचे ठगी इस नारी को आवश्यकता महसुस हुई अपने 'स्व' की और उसे प्राप्त करने की। इसमें हमारे साहित्य का बहुत बड़ा योगदान हम देखते. है। उसमें उपन्यास विधा में नारी–जीवन से जुडी सभी समस्याओं को ईमानदारी से व्यक्त किया गया है। इसमें नारी जीवन के आंतरिक और भीतरी दोनों पक्षों को सामने रखा गया है। उसमें नारी की उत्कृष्ट, विभिन्न भावनाएँ, प्रेम, त्याग, महत्वाकांक्षा विभिन्न घटकों को दर्शाया गया है। नारी जीवन की समस्याओं की जड में कही न कहीं यह पुरुष सोच की जड़ता दिखाई देती है। यानी नारीवाद आधुनिक युग में एक विचार प्रवाह ही हैं। सदियों से अपनी परंपरा के बोझ से लदी हुई नारी आज अपने अस्तित्व के लिए लड़ती हुई दिखाई देती है।

संदर्भ ग्रन्थ :-

1. कॉंकरिया, मधु, सेज पर संस्कृत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008
2. कॉंकरिया, मधु, सलाम आखिरी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007
3. कस्तवार, रेखा, स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008
4. अग्रवाल, बिन्दु, हिन्दी उपन्यास में नारी चित्रण, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1968
5. खेमानी, कुसुम, लावण्यदेवी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015
6. कालिया, ममता, बेघर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018
7. खेतान, प्रभा, स्त्री उपेक्षिता, हिंदी पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली, 2008
8. खान, एम. फिरोज, नारी विमर्श दशा और दिशा, आकाश पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, गाजियाबाद, 2013
9. गर्ग, मृदुला, कठगुलाब उपन्यास, भारतीय ज्ञानपीठ, ३
10. गर्ग, मृदुला, चितकोबरा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2013

पता : सी–501 अंसल हाइट्स सेक्टर 92, गुरुग्राम, हरियाणा 122505

Email ID: anitasharma781979@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 31-35

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मन्नू भण्डारी की आत्मकथा– में वेदना और स्त्री की संघर्ष गाथा

अंजू पटेल

पी–एचडी शोधार्थी, (एम.ए.,एम फिल हिंदी), अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म. प्र.)

शोध सारांश :–

भारत का एक राज्य मध्य प्रदेश जो अपनी ऐतिहासिक विरासत, कला, साहित्य, संस्कृति एवं पर्यटन की दृष्टि से विश्व प्रसिद्ध रहा है। मालवा के पठार पर अवस्थित यह प्रदेश अफीम की खेती के लिए भारत से प्रसिद्ध है। मध्यप्रदेश का भानपुरा जिला मंदसौर में 30 अप्रैल 1931 को श्री सम्पतराय भण्डारी के घर पांचवी संतान के रूप में मन्नू भण्डारी जन्म लेती हैं। उनके बचपन का नाम महेन्द्र कुमारी था। पिता एक लेखक, अध्यापक, समाज सेवक, स्वतन्त्रता सेनानी थे। मन्नू भण्डारी की प्रारम्भिक शिक्षा अजमेर से एवं स्नातक कलकत्ता विश्वविद्यालय से हिन्दी विभाग में स्नातकोत्तर की उपाधि वाराणसी विश्वविद्यालय से प्राप्त करती हैं। मन्नू भण्डारी को बाल्यकाल से ही लेखन के प्रति रूचि उत्पन्न हो गई थी। लेखन का हुनर उन्हें अपने पूर्वजों से विरासत में ही प्राप्त हुआ था। लेखन के क्षेत्र में जब वह उतरी तो मन्नू भण्डारी के नाम से रचना लिखने लगी और वर्तमान में उनकी पहचान इसी नाम से जानी जाती है।

मूल शब्द – मन्नू भण्डारी, राजनीतिक, स्त्री–अस्मिता, स्त्री–आत्मसम्मान, स्त्री–स्वावलम्बन, स्त्री–सशक्तिकरण।

व्याख्या –

स्त्रीवादी लेखिकाओं में मन्नू भण्डारी का विशिष्ट स्थान है। उनके लेखन में नारी वेदना का सूक्ष्म चित्रण विशेष रहा है। नारी वेदना को चित्रित करती उनकी कृतियां यथा– 'अकेली', 'नयी नौकरी', 'रानी माँ का चबूतरा', 'यही सच है' इत्यादि प्रमुख हैं। महाभोज राजनीतिक चेतना से सम्पन्न उपन्यास है तो 'आपका बंटी' बाल मनोविज्ञान पर लिखा गया अनूठा उपन्यास है।

'एक कहानी यह भी' (2007 ई.) हिन्दी साहित्य की एक ऐसी स्त्री–आत्मकथात्मक कृति है, जिसमें स्त्री जीवन की घुटन, वेदना, पति की सामन्ती मानसिकता, वैवाहिक जीवन की घुटन को बयां करती हैं। इस आत्मकथा में मन्नू भण्डारी के भोगे हुए जीवन का सच यथार्थ के धरातल पर अभिव्यक्त हुआ है।

यह आत्मकथा एक स्त्री के निरन्तर संघर्ष करते हुए आत्मनिर्भर बनने के साथ–साथ स्त्री–अस्मिता, स्त्री–आत्मसम्मान, स्त्री–स्वावलम्बन, स्त्री–सशक्तिकरण को पिरोए स्त्री–विमर्श के अनेक आयामों को प्रस्तुत करती है।

'एक कहानी यह भी' मन्नू भण्डारी के रूप में एक ऐसी स्त्री की संघर्ष गाथा है. जो अपने अस्तित्व, अपनी अस्मिता की तलाश में अपना भाग्य खुद लिखने के लिए कटिबद्ध है। बालीगंज शिक्षा सदन कलकत्ता में नौ वर्ष अध्यापन कार्य करते हुए इसी विद्यालय के पुस्तकालय की व्यवस्था करने एवं पुस्तकों की सूची तैयार करने के दौरान मन्नू भण्डारी की पहचान राजेन्द्र यादव से होती है और दोनों पंचायती विवाह कर लेते हैं। एक कर्मठ एवं निष्ठावान लेखक की पत्नी होने का अहसास और एक बेहद कुण्ठित जिद्दी पति की संगिनी होने का अवसाद आजीवन भोगती हैं। अपने लेखन के लिए खुले राजमार्ग का स्वप्न देखने वाली मन्नू भण्डारी पारिवारिक उत्तरदायित्वों को पूरा करते–करते इस विवाह से घुटन महसूस करने लगती है। अपनी चाह और कुछ विशिष्ट बनने की ललक एवं महत्त्वाकांक्षाओं ने उन्हें जीवन के एक ऐसे अवसाद के मोड़ पर ला खड़ा किया जहाँ पर किसी का भी मानसिक संतुलन गड़बड़ाने लगता, किन्तु यह एक साहसिक और सहनशील स्त्री का दृढ़ संकल्प ही है जिसने उन्हें टूट कर बिखरने नहीं दिया। मन्नू भण्डारी ने अपने जीवनकाल में उतनी मात्रा में नहीं लिखा, किन्तु वे जितना भी लिख पाई वह उनके जीवन की उपलब्धियाँ है, जो बेहद निजी है उनकी सम्पत्ति हैं।

इसी संदर्भ में लेखिका लिखती है– "लेखन के कारण ही हमने विवाह किया था.....हम पति–पत्नी बने थे। उस समय मुझे लगता था कि राजेन्द्र से विवाह करते ही लेखन के लिए तो जैसे राजमार्ग खुल जाएगा और उस समय यही मेरा एकमात्र काम्य था। उस समय कैसे मैं यह भूल गई कि शादी करते ही मेरे व्यक्तित्व के दो हिस्से हो जायेंगे....लेखक और पत्नी। इसमें कोई संदेह नहीं कि मेरे लेखकीय व्यक्तित्व को राजेन्द्र ने ज़रुर प्रेरित और प्रोत्साहित किया....इनके साथ मिलने वाला साहित्यिक वातावरण, होने वाली गप्प– गोष्ठियाँ मेरे बहुत बड़े प्रेरणा–स्रोत भी रहे। लेकिन मेरे व्यक्तित्व का पत्नी–रूप? इस पर राजेन्द्र निरन्तर जो और जैसे प्रहार करते रहे उसका परिणाम तो मेरे लेखक ने ही भोगा। निरन्तर और खण्डित होते आत्म–विश्वास से लेखन में आए गतिरोध का जो सिलासिला शुरु हुआ अन्ततः वह उसके पूर्ण विराम पर ही समाप्त हुआ।"

'एक कहानी यह भी' में मन्नू भण्डारी अपनी संघर्षशीलता, कर्मठता, आत्मनिर्भरता और सफल लेखिका बनने की दास्तां को बयां करती हुई राजेन्द्र यादव द्वारा ईर्ष्याग्रस्त, कुंठित एवं असहज होने की घटना के माध्यम से पुरुष प्रधान, सामन्ती विचारधारा और मानसिकता पर प्रश्न चिन्ह उठाती हुई स्त्री अस्मिता के एक ज्वलंत पक्ष को इस प्रकार व्यक्त करती हैं। वह लिखती हैं कि "मुझे इनके नौकरी न करने से न कोई शिकायत थी.. न तकलीफ़। तकलीफ थी तो केवल इस बात की जब आप नौकरी कर ही नहीं सकते..... करना ही नहीं चाहते तो कम–से–कम फिर मेरे नौकरी करने और घर चलाने पर इतनी इतनी कुंठाएँ पालकर मेरा और अपना जीवन तो इतना असहज और तकलीफदेह मत बनाइए। पर अपने अहं और सामन्ती संस्कारों से लाचार राजेन्द्र करें भी तो क्या करें? बस मैं ही अपनी दुखती रगों और खाली कोनों को अपने लेखन से पूरा करने की कोशिश करती रहती थी।"[2]

'एक कहानी यह भी' में मन्नू भण्डारी स्त्री की नियति, सहते रहना, अन्याय के विरुद्ध कोई प्रतिक्रिया व्यक्त न करना गृहस्थी की शान्ति का प्रतीक मानती है किन्तु मन्नू भण्डारी एक आत्मनिर्भर, स्वावलम्बी, स्वतंत्र महिला हैं। हृदय की कोमलता एवं सहन करने की अपार क्षमता केवल स्त्री में ही होती है। पुरुष अपने स्वयं के अहम में इतना डूबा रहता हैं की दूसरे के दर्द, वेदनाएँ उसके हृदय तक नहीं पहुँच पाते। पुरुष के हृदय की कठोरता को व्यक्त करती हुई लेखिका लिखती हैं कि– "मैं तो भोगने के लिए अभिशप्त थी ही और अपनी

इसी तरह के कुकर्मों को राजेन्द्र विशिष्ट जीवन–पद्धति की आड़ में.....रचनात्मकता की आड़ में तर्कसंगत ही नहीं जायज भी ठहराते थे।"[3]

अपने लेखन के प्रति आरम्भ से ही लेखिका मन्नू भण्डारी गंभीर रही है उनकी कलम से व्यक्त उनके अनुभव, भाव, विचार मौलिक हैं। यह उनकी कलम का चमत्कार नहीं अपितु कलम की सफलता का प्रतीक भी है इसी संदर्भ में लेखिका लिखती हैं कि– "गनीमत यही है, बल्कि कहूँ कि संतोष की बात है कि मैं अपनी सीमा के प्रति हमेशा सचेत रही हूँ, कुछ ज्यादा ही सचेत, सो अपनी सीमा और सामर्थ्य के बाहर कभी भी कुछ अनर्गल रचने की हिम्मत नहीं की मैंने।"[4] बहुचर्चित कहानियों एवं उपन्यासों की लेखिका मन्नू भण्डारी ने अपने जीवन काल में लगभग पचास कहानियाँ लिखी हैं। 'यही सच है'कहानी पर 'रजनीगन्धा' नाम से 'सुखाने आकाश नाय'कहानी पर 'जीना यहाँ' नाम से फीचर फिल्म एवं चार कहानियाँ 'अकेली', 'त्रिशंकु', 'नशा' और 'रानी माँ का चबूतरा' पर टेलीफिल्म बनी है।

अपने लेखन काल के दौरान मन्नू भण्डारी (जर्मनी) कोलोन के साउथ–ईस्ट एशिया की लेखिकाओं के सम्मेलन में भाग लेने जाती है वहाँ उन्हें कई समस्याओं से जूझना पड़ता है। भाषा की समस्या, अपरिचित लोगों से सम्पर्क साधना, खाने–पीने की समस्या एक स्त्री के लिए लेखन की चुनौती भरी दुनिया से टकराना इत्यादि कोई आसान कार्य नहीं था किन्तु मन्नू भण्डारी अपनी लगन, मेहनत, दूरदर्शिता से इन सभी समस्याओं का सामना कर विजय श्री प्राप्त करती है। एक सफल भारतीय लेखिका के तौर पर पाश्चात्य देशों के मध्य भारत का प्रतिनिधित्व कर भारतीय साहित्य की विशालता एवं सौन्दर्य का परचम लहराती हैं।

मन्नू भण्डारी ने इस आत्मकथा में जीवन के एक खण्ड विशेष को कहानी रूप में रचा है। लेखिका मन्नू भण्डारी की लेखक यात्रा का इतिहास, मूल्यों की परायणता भी यहाँ व्यक्त होती है। वह लिखती हैं कि– "यहाँ मुझे केवल उन्हीं स्थितियों का ब्योरा प्रस्तुत करना था, वो भी जस का तस, जिनसे मैं गुज़री – दूसरे शब्दों में कहूँ तो जो कुछ मैंने देखा, जाना, अनुभव किया, शब्दशः उसी का लेखा–जोखा है यह कहानी। जहाँ मेरे लेखन के क्रमिक विकास, उससे जुड़ी घटनाओं को मुझे सहेजते–सँवारते जोड़ते–तोड़ते सम्पर्कों–संबंधों पर ही केन्द्रित रहना इसकी सीमा है, वही इसकी अनिवार्यता भी।"[5]

लेखिका पिता जी से विद्रोह करके राजेन्द्र यादव से विजातीय विवाह करके आकाश को छूने का स्वप्न देखती है। राजेन्द्र यादव की शारीरिक कमी (अपंगता) को भी नज़रअंदाज़ कर देती है। पहले से ही सफल लेखन के क्षेत्र में समृद्ध, सफल रहे लेखक की पत्नी होने के सुख से गौरान्वित होती है, किन्तु विवाह के पश्चात् राजेन्द्र यादव का उनके प्रति कठोर, निर्मम और अमानवीय पूर्ण व्यवहार सभी सीमाओं को पार कर क्रूरता की हद तक पहुँच जाता है। गर्भवती पत्नी को पीड़ा में छोड़कर उनका साहित्य संगोष्ठियों में शामिल होना, छोटी–सी बेटी को मीजल्स (खसरा) होने पर उसे पत्नी व अन्य लोगों की जिम्मेदारी पर छोड़कर अपने लेखकीय मित्र (उषा प्रियवंदा) से भेंट करना उनके बेहद स्वार्थी. संवेदना शून्य व्यक्तित्व को उजागर करता है।

अन्तरजातीय विवाह, राजेन्द्र यादव के विवाहेत्तर–संबंध, परिवार के प्रति उनकी बेरुखी, गृहस्थी बसाने के नाम पर समानान्तर जिन्दगी जीने की बात मन्नू को स्वतंत्रता देने के पक्ष में रखकर स्वयं के लिए स्वतंत्रता की बात बड़ी चतुराई से रखते हैं। इसी संदर्भ में लेखिक लिखती हैं कि– "जिंदगी शुरु करने के साथ ही लेखकीय अनिवार्यता के नाम पर राजेन्द्र ने 'समानान्तर जिंदगी का आधुनिकतम पैटर्न' थमाते हुए जब कहा कि 'देखो, छत

ज़रूर हमारी एक होगी लेकिन ज़िन्दगियाँ अपनी–अपनी होंगी। बिना एक–दूसरे की जिन्दगी में हस्तक्षेप किए बिल्कुल स्वतंत्र मुक्त और अलग तो मैं तो बिल्कुल अवाक। आधुनिकतम जीवन के इस पैटर्न से मेरा कोई परिचय नहीं था, परिचय तो क्या दूर–दूर तक इसकी कोई कल्पना तक मेरे मन में नहीं थी। राजेन्द्र ने भी मित्रता के दौरान तो ऐसी किसी बात का कभी कोई संकेत तक नहीं किया था। मैं तो साथ आई थी सब तरह से अलगाव को दूर करके एक हो जाने के लिए, पूरी तरह घुलमिल जाने के लिए। यह सब सुनकर तो मुझे लगा कि सिर पर छत का आश्वासन देकर जैसे पैर के नीचे की जमीन ही खींच ली हो। एक ही प्रश्न मेरे मन पर हथौड़े की तरह चोट करता रहा कि फिर इस छत की भी क्या जरूरत थी? क्या प्रयोजन था? छत तो राजेन्द्र के सिर पर भी थी और मेरे सिर पर भी सो इतना तो समझ में आ गया कि राजेन्द्र के दिमाग में एकाएक समानान्तर जिन्दगी की जो यह अवधारणा पैदा हुई है, निश्चित ही उसके सूत्र कहीं और ही हैं।"[6]

मन्नू भण्डारी की यह आत्मकथा उनके सक्रिय लेखन यात्रा के साथ–साथ करुणामय जीवन की त्रासदी की कहानी भी है। बेहद संवेदनशील भावों को कलम कागज़ों द्वारा मन्नू भण्डारी बयां करती हैं अपने जीवन की कसावटों को पाठकों के सम्मुख खोलकर रखती है। राजेन्द्र यादव द्वारा दिए गए सभी कष्ट, अपमान झेलती है शायद इसी का परिणाम है राजेन्द्र यादव का आत्मकथ्य 'मुड़–मुड़ के देखता हूँ' किसी के पूरे जीवन को कष्टमय बनाकर अन्त में अपने किए पर पछतावा करना कष्टप्रद व्यक्ति के साथ न्याय करना नहीं होता अपितु स्वयं अपराधी अपनी आत्मशान्ति, स्वहित के वशीभूत होकर यह कार्य करता है यहाँ भी वह स्वयं को महान बनाने की कला का प्रदर्शन बड़ी ही होशियारी एवं चालाकी से करता है। इसी संदर्भ में लेखिका लिखती हैं कि– "आत्मकथ्य की इसी किस्त में राजेन्द्र ने मुझमें भी न जाने कितनी विशेषताएँ गिना दी जैसे सहज, सरल, विश्वासी, उदार, मानवीय और फिर वही अपराध बोध से त्रस्त होने की बात। यानी कि मेरे प्रति भी थोड़ा–सा ऋण शोध (मेरा ऋण भी तो बहुत थोड़ा–सा ही था) यह क्या हो गया है राजेन्द्र को? उम्र के तकाजे ने क्या सबके कर्जे उतारकर ऋणमुक्त होने की ओर धकेल दिया है? क्या राजेन्द्र सचमुच यह समझते हैं कि आठ–दस पन्नों में लिखी अपराध–बोध की यह आत्म स्वीकृति (चाहे कितनी ही ईमानदार क्यों न हो) किसी की पूरी ज़िन्दगी की कीमत चुका सकती है? खैर, यहाँ तो मैं यह स्पष्ट कर देना चाहती हूँ कि राजेन्द्र के ऊपर कम से कम मेरा कोई ऋण नहीं हैं।"[7]

जिंदगी से जद्दोजहद करती आर्थिक संकटों को झेलते हुए लेखिका उम्र के इस पड़ाव पर रोगों और विश्वासघातों से गुजर चुकी हैं उनकी कलम की रफ्तार धीमी हुई किन्तु पूर्ण रूप से रुकी नहीं स्वयं लेखिका ने अपनी आत्मकथा श्एक कहानी यह भी में स्पष्ट लिखा है कि उन्होंने अपने जीवनकाल में बहुत कम लिखा किन्तु जो भी लिखा उससे वह पूर्णरूप से सन्तुष्ट है। 'आपका बंटी' और 'महाभोज' जैसे हिंदी को दो सशक्त उपन्यास दिए हैं। मन्नू भण्डारी के लेखन में आए अवरोध से पाठक भी चिन्तित है। इसी संदर्भ में महाश्वेता देवी कहती है कि– "ऐसे दो सशक्त उपन्यास देने के बाद मन्नू इस तरह खामोश क्यों हो गई? वह अपनी प्रतिभा के साथ न्याय नहीं कर रही।"[8]

निष्कर्ष –

निःसंदेह मन्नू भण्डारी अपनी कलम से जो भी लिख पाई वह पाठकों के लिए ही नहीं अपितु हिंदी साहित्य के लिए भी अमूल्य धरोहर है। इस आत्मकथा के अध्ययन के उपरान्त मेरी दृष्टि से कहा जा सकता

है कि मन्नू भण्डारी अपने लेखन की कुशलता के कारण रचनात्मकता के क्षेत्र में लगातार सफल हुई।

उनकी रचनाओं में सरलता, सहजता का भाव होने के साथ ही साथ सामाजिक जीवन की वास्तविक घटनाओं का चित्रण बड़ी ही ईमानदारी से उभर कर आता है उनकी कृतियाँ पाठकों में एक कौतूहल, आश्चर्य पैदा करती रहती है। आगे की घटनाओं को जानने के लिए पाठकों की बैचेनी का बढ़ना ही सिद्ध करता है कि वे एक बेहद सफल लेखिका ही नहीं अपितु एक अच्छी इंसान भी है। कई बार उनकी रचनाएँ साहित्यकार पति राजेन्द्र यादव को भी मात देती है।

इक्कीसवीं सदी में स्त्री–स्वावलम्बन, स्त्री–आत्मसम्मान, स्त्री–सशक्तिकरण से सरोकार करवाती कई आत्मकथाएँ लिखी जा रही हैं। मन्नू भण्डारी की यह आत्मकथा एक स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व की खोज के साथ–साथ पुरुष के साथ बराबरी करती साहसिक, संघर्षरत सफल रचनाकार के रूप में लिखी स्त्री जीवन की कहानी हैं।

सन्दर्भ सूची–

1. एक कहानी यह भी मन्नू भण्डारी, नयी दिल्ली, राधाकृष्णन प्रकाशन, 2007, पृ. 10
2. एक कहानी यह भी मन्नू भण्डारी, 2007, पृ. 67
3. एक कहानी यह भी मन्नू भण्डारी, 2007, पृ. 99
4. एक कहानी यह भी मन्नू भण्डारी, 2007, पृ. 130
5. एक कहानी यह भी मन्नू भण्डारी, 2007, पृ. 8
6. एक कहानी यह भी मन्नू भण्डारी, 2007, पृ. 56–57
7. एक कहानी यह भी मन्नू भण्डारी, 2007, पृ. 220–221
8. महाश्वेता देवी : मन्नू मेरे भीतर गर्व और दुःख जगाती है। (लेख), कथादेश, पूर्वोक्त, पृ. 20

दूरभाष : 7804047165

Email:panju207@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 36-45

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Role Conflict in Working Women - A Sociological Analysis

Anuradha Soni, Research Scholar,
Dr. Rani Prabha Solanki, Asst. Prof.,
Department of Sociology, Janardan Rai Nagar Rajasthan Vidyapeeth
(Deemed-to-be University), Udaipur

Abstract:

A working woman performs dual role in the society like as a mother, wife, daughter -in- law at home and an efficient worker at workplace. Women assuming multiple roles results in work family conflict because time and energy are shared, clubbed, and even extended across the two spheres of activity. When a housewife enters gainful employment outside home, she not only finds a change in her role and status within the family and outside it, but she also finds herself under increasing pressure to reconcile the dual burden of the two roles at her home and her workplace because of these dual roles she faced role conflict. Role Conflict in the context of the present study is conceptualized as a situation in which a woman is expected to play two incompatible roles at the same time. Due to role conflict working women face many problems. The aims of present study to assess the factors and their socio-economic status of working women and highlights on role conflict and its consequences. In the present study was carried out by interviewing working women both married and unmarried of 25-50 years age group in Udaipur city. The finding showed that the role conflict for working women between family and work is high in private sector rather than government sector and the role conflict major factors generate are failures in children care, lack of family harmony, occupational stress, lack of health awareness and customs. Measures should be taken at the family, social and government level to reduce the dual role conflict of working women.

Key words: Working women, Role conflict, Occupation, Family.

Introduction:

In the present scenario the working women are contributing economically to their families due to changing the traditional belief and values of society with the time of modernization, urbanization, and industrialization. According to 2011 census total number of female workers in India is 149.8 million and their work participation rate is 25.51%.[1]

The term working woman is often used to refer to working women, i.e., women who are regularly engaged in economic and business activities outside. The term working woman is used for women who are engaged in paid work. Working does not mean working on their own, taking work from other people and monitoring their work and directing etc. is also included.

A working woman performs dual role in the society like as a mother, wife, daughter -in- law at home and an efficient worker at workplace. Women assuming multiple roles results in work family conflict because time and energy are shared, clubbed, and even extended across the two spheres of activity. When a housewife enters gainful employment outside home, she not only finds a change in her role and status within the family and outside it, but she also finds herself under increasing pressure to reconcile the dual burden of the two roles at her home and her workplace because of these dual roles she faced role conflict. Role conflict happens when there are contradictions between different roles that a person takes on or plays in their everyday life.

Coping up with the situation requires not only additional physical strength, personal ability, and intelligence on the part of a working woman but also requires the members of her 'role set' to simultaneously make necessary modifications in their expectations. When conflict between the two life domains occurs, the consequences are reflected in both occupation and domestic life. Multiple roles of working women at home and at workplace results into role conflict. Role conflict is a form of conflict between roles where the role pressure from work and family cannot be contradicted or harmonized in certain aspects.[2]

The role conflict between family and occupation facets in working women reflect the stress with home and family issues as well as job stress daily.[3]

In India, the status of working women and role conflict is an important research topic for research work. Although literature related to this topic has been published from time to time over the years, but no systematic studies have been done on this topic so far.

The present study is carried out to assess the factors and their socio-economic status of working women and highlights on role conflict and its consequences.

Conceptual Aspects :

1. **Role :**

   A role is a set of connected behaviours, rights, obligations, beliefs, and norms as conceptualized by people in a social situation. According to Ralph Linton role is the dynamic aspect of status.[4] Sociologists use the term "role" (as do others outside of the field) to describe a set of expected behaviours and obligations a person has based on his or her position in life and relative to others.

2. **Role conflict :**

   The problems arising when a person must deal with competing demands on two or more roles that the person is expected to play. Role conflict is defined as the struggle in different roles. Conflicts in roles arises basically due to several reasons but in general, it is the desire to attain success in life and the challenges which acts as a pressure on one's dream and demand which conflict with each other. Personality and inter-personal relations acts as a major factor in determining the effects of role conflict. Role conflict can be something that can be for either a short period of time, or a long period of time, and it can also connect to situational experiences. An example of role conflict would be a working mother who also volunteers at a local nonprofit and is a member of a community choir. She faces role conflict as she tries to balance her responsibilities as an employee, a mother, a volunteer, and a choir member.

Review of Literature :

Myrdal Alva (1956)[5] concluded in her study that the roles of working women become conflict i.e., they are not able to fulfil their roles in the form in which they are expected by the family members.

Altekar (1956)[6] studied on "Position of Women in Hindu Civilization" and the condition of Indian women from prehistoric times to the present and has pointed out many such problems, for which a satisfactory solution can be obtained. They are - the problems of Indian women's childhood and education, many odd problems of women's married life, status of widows in society, religious status, property rights of women, place of Indian women in society, etc. and the suggestion has given.

Papola (1982)[7]Saradamini (1985)[8] Kapoor (1968)[9] and Desai (1975)[10] have given details in their study about the role conflict factors of working women.

Somjee (1989) made an important statement: "In the not very long history of women's research, many different approaches have been applied to understand women's problems and find solutions to them. Such approaches range from the way women are viewed in different cultures and

historical contexts, based on their biological function and what nature "intended" them to do, to the reduced their power and status over men in a complex process of social evolution, to a widely shared emphasis on the need to make women equal through economic measures of need. demands to make women equal through economic and legal means that treat them as individuals and not as family responsibilities.

Karat (1997)[11] has analysed the causes and find out some important conclusions that "The relationship between women and occupation can be considered as the relationship between women in all professional professions, medicine, law, academia, etc.

Bhandari (2004) [12] in her research revealed that due to dual responsibilities, working women suffer both physically and mentally. Gani and Ara (2010)[13] analysed the cause, consequences, and correlates of work-family conflicts among dual-career women and examined the constraints they faced and the family and organizational support they received in the process. The result shows that many factors contribute to make role conflict of working women a reality. The success of conflict is depended on the availability of various support systems within and outside the family as well as the organisation where she works.

Wentling (2003)[14] points out that women's dual roles cause stress and conflict due to their even more dominant social structure. In her research on working women in Delhi, she showed that "the traditional authoritarian structure of the Hindu social structure remains essentially the same and therefore women face the problem of conflict. The attitudes of men and women depending on the situation can help to overcome their problems.

Ahmad and Aminah (2007)[15] examined the work-family conflict encountered by 239 married female production executives in dual-career families, the social support they received and the strategies they faced. coping strategies used to manage conflict. "Women experience more work interference with their family than family interference with work. The intensity of family intervention work was significantly higher in the early stages of the life cycle than in the later stages. About two-thirds of women said they intend to quit their jobs after having more children, mainly due to rising childcare costs. They receive the least social support from their supervisor compared to other sources and tend to resolve conflicts using reactive role behavior and individual role redefining strategies.

G. Shiva (2013)[16] has studied of conflict between work and family of Indian women and attempts have been made to identify the most controversial areas and examine career differences in relation to role conflict. The study found that, although comparable, the predictive models for different areas of conflict were not the same. Spousal support was the strongest predictor. The

career versus parent category showed the highest but smallest level of friction. Role conflicts are not significantly affected by job type.

Jayasudha and Ramegowda (2016)[17] in their study investigated the degree of role conflict among women lawyers. They face high degree of role conflict due to which they suffer physically.

Pardeep (2018)[18] conducted a study and analyzed the extent of role conflict and its consequences as well as suggested measures for working women and data collected from 200 married women engaged in various government jobs in Haryana using a simple purposeful sampling method showed that many respondents faced with a high degree of role conflict. Due to role conflicts, working women face many problems at the family and workplace levels. Most respondents also suffer from body disorders, stress, etc. Some suggested measures such as parental support, husband support, mutual help, social interaction with other women, etc.

Nose et al. (2020)[19] has conducted a cross-sectional study of female BNI employees of Makassar branch and analyzed the influence of role conflict and job stress on the work performance.

Saini M.K. (2022)[20] discussed in his study that according to the modern processes of change in the contemporary Indian society, industrialization, westernization, urbanization, modernization, secularization, and materialistic thought stream brought women into the workplace but not so much in moral, social, cultural, ideals and values. Failure to change quickly can result in family dissonance and tension and role conflict. Whose bad effect was not only on family harmony but also affected their working relations.

Objectives:

1. To gain knowledge about the problems and challenges faced by working women.
2. To find out the extent of role conflict among working women.
3. To know the problems and harmony and disharmony faced by working women under dual role.

Need of Study:

This study focused on role conflicts in working women. Working women face more role conflict in the performance of their duties than non-working women. The problem of women's employment is directly related to the role of women in the family and the disproportionate burden of family responsibilities. The dual roles of working women contradict each other; for these

reasons, role conflicts arise. A detailed analysis of various aspects related to conflict and issues arising from dual performance is within the scope of this study.

Methodology:

This research study was conducted by interviewing of 50 working women of Udaipur city and primary and secondary data gathered. Both qualitative and quantitative methods have been taken into consideration for the study.

Result and Discussion:

Table – 1

Role conflict of working women based on age group.

S.No.	Variables (Age in Years)	No. of Respondents (Frequency)	Percent
1	< 25	-	10
2	25-35	10	20
3	35-45	25	50
4	>45	15	20
		50	**100**

Source – Primary data

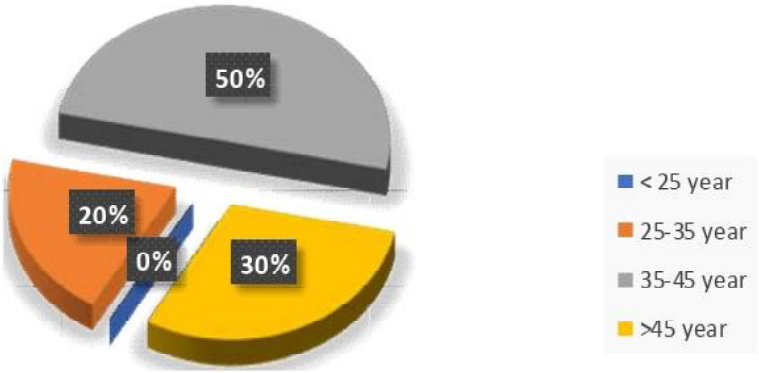

Figure 1: Percentage distribution of working women on age group

Analysis and Interpretation: The above information on present study shows in that the role conflict of working women 50% in age group of 35-45 year may be because working women in this age group have more responsibilities of children and family.

Table – 2

Role conflict of working women based on marital status.

S.No.	Variables (Marital Status)	No. of Respondents (Frequency)	Percent
1	Unmarried	07	14
2	Married	41	82
3	Widow	02	04
4	Divorced	-	-
		50	**100**

Figure 2: Percentage distribution of working women

Analysis and Interpretation: The above information on present study shows in that the role conflict in married working women is 82% because of family responsibilities are more for married women compared to unmarried and plays dual responsibility at family and workplace.

Table – 3

Role conflict of working women based on educational status.

S.No.	Variables (educational Status)	No. of Respondents (Frequency)	Percent
1	Primary & Upper Primary	02	04
2	Secondary/Higher Secondary	09	18
3	Graduate	10	20
4	Post Graduate	09	18
5	B.Ed., Ph.D., M.B.A., M.B.B.S., B.A.M.S. and Others	20	40
		50	**100**

Source – Primary data

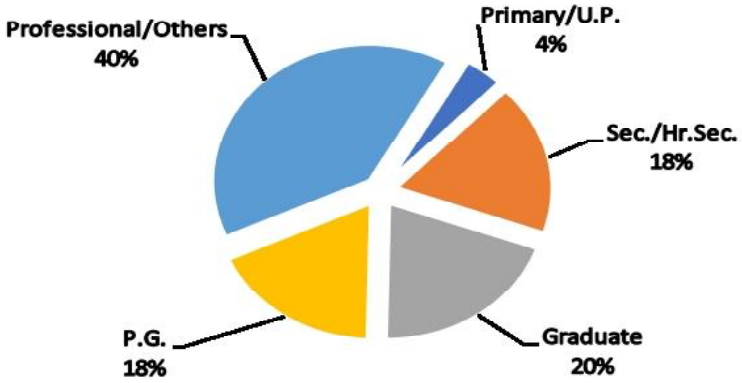

Figure 3: Percentage distribution of working women on Education status

Analysis and Interpretation: The above information on present study shows in that the 40% higher education or Professional degree holder working women faces role conflict or dual responsibilities it's may be because of married women plays dual responsibility at family and workplace. My research result is similar to the research study done by Domico and Dorothy (1975)[21] and pointed out that "the highly educated working women is extremely vulnerable to role conflict arising both from her participation in changing role in society and multiplicity of roles which she frequently occupies" which is statistically correct and verifies my research result.

Table – 4

Degree of Work-Family Conflict

S.No.	Work – Family Conflict	Frequency	Percent
1	High	28	56
2	Moderate	17	34
3	Low	05	10
		50	**100**

Source – Primary data

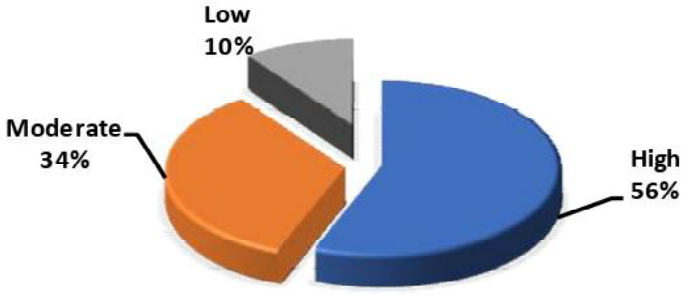

Figure 4: Degree of Role Conflict

Interpretation: finally, this study exists that most respondents (56%) indicated that there were a high degree of role conflict and 34% respondents have moderate degree of role conflict while only 10% of respondents felt a low degree of role conflict. These data claimed to support the research problem the prevalence of role conflict in working women are higher.

Conclusion and Rccommcndations:

This research study examined the role conflict in working women and challenges her profession and family life of working women by considering them as independent variables of analysis. In this study, the problematic situation of family and workplace, marital and family-social life has been specially included. According to the data gathered and analysed for the current study, 56% of the respondents were found to be dealing with significant work-family conflict.

Working women face a dual role worldwide. This dual role leads to conflict between work and family. There are many expectations of her both in her family and in her profession. Both expectations require two different women in one woman. In order to successfully pursue her role, she must work with a strict routine, have a higher physical and mental capacity to respond promptly to critical situations. In work-family conflict, the role of family prevails over that of work.

Some measures should be taken to reduce role conflict in working women such as family support and equal distribution of household responsibilities, friendly environment and support group at workplace, time management and prioritization of work, self-care and well-being initiatives, stress management and implementation of Government laws and policies.

References:

1. Pardeep. Role Conflict among Working Women – A Socio Logical Analysis. Pramana Research Journal. 2018; Vol. 8 (8): pp. 585-589.
2. Safrizal, II.B. A., Anis Eliyana and Kurnia Lail Febriyanti. The Effect of Double Role Conflict (Work Family Conflict) on Female Worker's Performance with Work Stress as the Intervening Variable. Sys Rev Pharm.2020;11(10):418-428.
3. Zarra-Nezhad,*et.al*.. Occupational stress and Family difficulties of Working Women. Current Research in Psychology. 2010; 1: 75-81.
4. Pierce, A. On the Concepts of Role and Status. Sociologus *JSTOR*. 1956; 6(1):29–34.
5. Myrdal Alva, Klein Viola. Women's two roles (Home and work) Great Britain Routledge and Kegan Paul Ltd.

6. Altekar. A.S. The position of Women in Hindu Civilization, Banaras Motilal Banarsidas Publishers. 1956.
7. Pappola T.S. (1982) : Woman works in an urban Labour Market : A study of Segeration and discrimation in employment Lucknow Publication P - 116.
8. Shardamani. K (1985) : Progressive Land Legislation and subordination of woman, Criterian Publication, New Delhi.P - 163.
9. Kapoor Pramila (1968) : The Study of Martial Adjustment of educated working women in India, Agra Publication.
10. Desai Neera (1975). Women in Morden India, Bora Publication Mumbai P - 253.
11. Karat, B. (1997). The Multiple Struggles of Women. Frontline, *14*(19).
12. Bhandari, M. Women in two work roles and the quality of their life. Sociological Bulletein. 2004;53(1): 94-104
13. Gani, A. and Ara, R. Conflicting Worlds of Working Women: Findings of an Exploratory Study. Indian Journal of Industrial Relations.2010;46(1):pp.61-73.
14. Wentling, R.M. The Career Development and Aspirations of Women Management. Women in Management Review. 2003; 18(6):311-324.
15. Ahmad, Aminah. Work-family conflict, life-cycle stage, social support, and coping strategies among women employees. The Journal of Human Resource and Adult Learning.2010; 3:70-79.
16. G, Shiva. A Study on Work Family Balance and Challenges Faced by Working Women. IOSR Journal of Business and Management.2013; 14(5): 1-6.
17. Jayasudha, N.S., and Ramegowda, A. Role conflict among women lawyers: A sociological study in Chithradurga and Davanagere district. International Research Journal of Management Sociology and Humanity. 2016;7(3):194-199.
18. Pardeep. Role Conflict among Working Women – A Socio Logical Analysis. Pramana Research Journal. 2018; 8(8):585-589.
19. Muis et al.. The effect of Multiple Role Conflicts and Work Stress on the Work Performance of Female Employees. Elsevier.2020; 35(S1): pp: S90-S93.
20. Saini, M.K. कामकाजी महिलाएं एवं सामाजिक यथार्थ. International Journal of Edu.Modern anagement, Applied Science and Social Science (IJEMMASSS). 2022; vol.04, No.1(1):213-218.
21. Damico, Sandra, and Dorothy Nevill. The Highly Educated Woman: A Study in Role Conflict. Council on Anthropology and Education. 1975; 6(3):16–19.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 46-50

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

समकालीन हिन्दी कविता में दलित स्त्री की आवाज

अनुषा टी

शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, कालीकट विश्वविद्यालय।

दलित साहित्य पीड़ितों की आवाज है। उसमें दलित समाज के समस्त शोषण का खुलासा है। साहित्यकार अपने भोगे हुए यथार्थ की अभिव्यक्ति करते है। सदियों से उत्पीड़ित दलित समाज की आवाज इन दलित साहित्यकारों की रचनाओं में प्रतिबिंबित होती है, फिर भी दलित स्त्री जीवन के भोगे हुए यथार्थ कई अरसों तक साहित्य की मुख्य धारा की आवाज नहीं बन पाई। मुख्यधारा का साहित्य ही नहीं बल्कि दलित साहित्य में भी इसे पर्याप्त स्थान नहीं मिला है। दलित लेखकों के साथ ही दलित लेखिकाएँ भी अपने भोगे हुए यथार्थ को पूरी ईमानदारी के साथ साहित्य रचनाओं के माध्यम से अभिव्यक्त करने लगी। लेकिन जिस प्रकार दलित स्त्री उपेक्षित रहा है, उसी प्रकार उनका साहित्य भी प्रारंभ में उपेक्षित रहा है। छपने–छपाने का बहुत कम अवसर इन्हें मिलते थे। दलित स्त्री लेखन दलित चिंतन का वाहक है। दलित स्त्री चिंतन के केंद्रे में ज्योतिबा फूले, सावित्री बाई फूले, अंबेडकर आदि के दर्शन है। दलित साहित्य ने ब्राह्मणवादी व्यवस्था का खोर विरोध किया है। लेकिन दलित स्त्री लेखक के सामने कई समस्याएँ है। एक तरफ अस्मिता विमर्श के स्तर पर पितृसत्तावादी मानसिकता के विरुद्ध अपने नारित्व का अनुभव है तो दूसरी तरफ उसी पितृसत्तावादी मानसिकता के ब्राह्मणवादी व्यवस्था का प्रतिरोध भी है।

दलित स्त्री की इस अलग आवाज के संबन्ध में शर्मिला रेगे लिखती हैं –"Resent feminist scholarship in adopting the Saidian framework not only falls in to the above mentioned traps, but also ends up with a frame that completely overlooks the contributions and interventions of women in the non-brahman movement. The invisibility of this lineage, has lead scholars to conceive the resent autonomous assertion by dalit women as a 'different voice'. "[1] अर्थात परंपरागत रूप से स्त्रीवादी चिंतन के केंद्र में सवर्ण मानसिकता रहा है। उस सवर्ण मानसिकता में सदियों से हाशिये में जीने के लिए अभिशप्त दलित स्त्री जीवन की आवाज प्रतिध्वनित नहीं हो रही है। इस अवसर पर दलित स्त्री समाज अपनी अलग पहचान रूपायित करने के लिए दलित स्त्री शब्द को एक अलग ढंग से प्रस्तुत करने के लिए मजबूर हुई है। रमणिका गुप्ता का कहना है–" इस समय देश में जो स्त्रीवाद चल रहा है, वह दलित स्त्री को भी जाति से ही देखता है। इसलिए स्त्रीवाद लिंग का सवाल दलित–गैरदलित स्त्री के लिए साझा होते हुए भी, जाति के सवाल पर वह चुप रहता है। या उसे नजरअन्दाज कर देता है। यह 'स्त्रीवाद' और 'दलित स्त्रीवाद' के अलगाव का बिन्दु है। यदि स्त्री–मुक्त आंदोलन या कहें 'स्त्रीवाद' भारतीय परिवेश में जाति के सवाल को अपने एजेंडा में शामिल कर लेता, तो अलग

से 'दलित–स्त्रीवाद' का सवाल ही नहीं उठता।"[2] स्त्री मुक्ति आंदोलन में तो लिंग नीति, अपनी अस्मिता और आत्मसम्मान की बात की है। दलित स्त्रीवाद में इन सबके साथ दलित स्त्री के जातीय भेद भाव को को भी जोड दिया है।

दलित स्त्रियाँ भी मुक्ति चाहती हैं। मुक्ति के लिए स्त्री संघर्ष करती रहती है। वे अपने वजूद की लड़ाई में प्रतिरोध की जमीन तैयार करती हैं। यह स्त्री लेखन साहित्य की सशक्त विधाएँ जैसे आत्मकथा, कविता, कहानी, नाटक आदि के जरिए अपने मुद्दे को साहित्य के केंद्र में ला रहे हैं। हिन्दी की पहली दलित आत्मकथा लेखिका कौसल्या बैसंत्री लिखती है– "मैं लेखिका नहीं हूँ, ना साहित्यिक लेकिन अस्पृश्य समाज में पैदा होने से जातीयता के नाम पर जो मानसिक यातनाएँ सहन करनी पड़ी। इसका मेरे संवेदनशील मन पर असर पड़ा। मैं अपने अनुभव खुले मन से लिखे हैं। पुरुष प्रधान समाज औरतों का खुलापन बरदाश्त नहीं करता।"[3]

दलित स्त्री की आवाज आज हिन्दी कविता में सशक्त रूप से उभर रही है। उपेक्षितों में उपेक्षितों की आवज है दलित स्त्री कविता। दलित स्त्री जीवन को उजागर करने में ये काफी सक्षम है। हिन्दी के प्रमुख दलित स्त्री कवयित्रियाँ है– रजनी तिलक, सुशीला टाकभौरे, अनीता भारती, रजनी अनुरागी, पूनम तुषामड़ आदि। दलित साहित्य में दलित स्त्री लेखन की विकास गति के सबंध में रजनी तिलक का कहना है कि –" मेरा पहला कविता संग्रह 'पदचाप' 2000 में तब आया, जब दलित साहित्य मुख्यधारा में अपनी जगह बना रहा था और साहित्य जगत में हिन्दी दलित साहित्य को लेकर काफी हलचल थी। संवाद और बहस की तीखी झड़पें चल रही थी। दलित साहित्य की इस बहस में पुरुष साहित्यकार ही सक्रिय थे। महिला दलित साहित्यकार पर्दे की पीछे थी। दूसरा कविता संग्रह 'हवा सी बेचैन युवतियाँ' (2014) तक आते–आते दलित साहित्य स्थापित हो चुका है। दलित महिला साहित्यकारों के अनेक काव्य–संग्रह भी बाजार में आ चुके हैं।"[4]

दलित साहित्यकार हमेशा दलित स्त्री की उपेक्षा की है। उनके मन में भी पितृसत्तात्मक सोच थी। रजनी तिलक 'आदिपुरुष' नामक अपनी कविता में इस बात पर सवाल उड़ाती है–

"कथित दलित साहित्यकारों
तुम्हारी ओच्छी नजर में
स्त्री का सुन्दर होना है
उसका 'मैरिट'
सुन्दर न होना उसका डेमैरिट!
सवर्णों की नजर में
वे ही है मैरिट वाले"।[5]

पहले दलित साहित्य में पुरुष साहित्यकार ही सक्रिय थे। दलित स्त्री साहित्यकार मुख्यधारा में नहीं थी। लेकिन आजकल स्थिति ऐसी नहीं है, वे भी मुख्यधारा में पहुँच चुकी हैं। ऐसी ख्याति प्राप्त लेखिका है सुशीला टाकभौरे। उनकी रचनाओं में दलित स्त्री जीवन ही नहीं सम्पूर्ण स्त्री समाज की विसंगतियँ नजर आती है। साहित्यिक क्षेत्र में दलित स्त्री साहित्यकार की उपेक्षा को लेकर सुशीला टाकभौरे लिखती है–

"करते हैं श्रम, संघर्ष
समाज में कई कलाकार

देते हैं सुख और सुविधा सबको
बिना भेद–भाव।
नहीं पहचानी इनकी महानता
किसी ने, नहीं किया सम्मान
वर्ण–जाति से तुच्छ मनाकर
करते हैं अपमान।"[6]

दलित स्त्री को जाति और पितृसत्तात्मकता दोनों का सम्मिलित अत्याचार सहना पड़ता है। शोषण के यह बहुआयामी स्तर दलित स्त्री जीवन को बदतर बनाता है। नरेश कुमारी इस बात को स्पष्ट करती है अपनी कविता 'दोहरा अभिशाप' में। वो कहती है –

"दलित महिला
झेलती है दोहरा अभिशाप
औरत होने का अभिशाप
दलित होने का अभिशाप
.....
इस पुरुषवादी, सवर्ण समाज में
औरत का जीवन है
अभिशाप।"[7]

दलित स्त्री अपनी अस्मिता को पहचानकर संघर्ष करती हैं। इन्हीं संघर्षों का स्तर बहुआयामी होता है, क्योंकि उन्हें पहले अपने आपसे संघर्ष करना पड़ता है। उसके बाद उन्हें अपने परिवारवालों से जिसमें पितृसत्तात्मक सोच भी जुडी है। समाज से भी उन्हें निरंतर संघर्ष करना पड़ता है। रजनी तिलक 'अनकही कहानियाँ' नामक कविता में इस बात को स्पष्ट करती है –

"सुनाना चाहती हूं
अनकही अनसमझी
ठुकराई गई
धारा से छिटकी
बेजार औरतों की कहानियाँ
लड़ रही है हमेश से
जाति के खिलाफ समाज से
राज्यसत्ता से
अपने पारिवारिक द्वंत और पितृसत्तात्मकता से।"[8]

रजनी तिलक 'फर्क' नामक कविता में दलित स्त्री और सवर्ण स्त्री की तुलना करके बताती है कि दलित स्त्री को जो दोहरा शोषण सहना पड़ता है वो कभी भी स्वर्ण स्त्री को नहीं सहना पड़ा। उन दोनों के बीच जमीन आसमान का अंतर है।

"तुम्हारे मेरे बीच
जमीन आसमान का फर्क हैं।
तुम लड़ती हो
अपनी पहचान के लिए
लड़ती हूँ मैं
स्वाभिमान के लिए
जब रात काली ढलती है
तुम आगोश में
उनके सिमट जाती हों
कसमसाती रहती हूँ मैं
मेरा तमाम दर्द पीठ को चीरकर
सिसकता है।"[9]

विश्व स्तर पर स्त्री बहुत आगे पहुँच चुकी है। वहाँ पर कवयित्री भारतीय दलित स्त्री की उपस्थिति को लेकर बहुत चिंतित है। वर्तमान सन्दर्भ में भी भारतीय दलित स्त्री बलात्कार, हिंसा और उत्पीड़न से पीड़ित है। इतने सालों बाद भी बलात्कार की घटनाएँ खत्म होती ही नहीं। आखिर कब दलित स्त्री की मुक्ति संभव है? इस बात को लेकर चिंतित है सुशीला टाकभौरे। अपनी कविता 'इतिहास के पन्नों पर उभरे काले धब्बे' में कवयित्री प्रश्न करती है –

"स्त्री– विश्व में,
कहाँ है मेरे देश की दलित स्त्री?
हिन्सा उत्पीड़न बलात्कार से पीड़ित
शोषित कमजोर, इन्साफ को तरसती!
.....
कब तक होते रहेंगे
अन्याय, अत्याचार, बलात्कार !
कब मिलेगा न्याय? कैसे मिटेंगें –
इतिहास के पन्नों पर लगे काले धब्बे?
इस स्वतंत्र प्रजातंत्र देश में
कहाँ है दलित–काल, दलित स्त्री काल! "[10]

दलित स्त्री कविता में केवल दलित स्त्री जीवन का दुःख, दर्द और उत्पीड़न की अभिव्यक्ति नहीं है। उसमें दलित स्त्री के विद्रोही और प्रतिरोधी स्वर भी गूँज पड़ती है। पूनम तुषामड़ की कविता 'माँ मुझे मत दो' में दलित स्त्री के विद्रोह देख सकते हैं। कवयित्री लिखती हैं –

"माँगने से हक नहीं
सबको मिला है

छीन गर ...
छीनने का हौंसला है।
ये गलत है मान लो तुम
ये बड़े कहलाएँ
तुम कहलाओ छोटी
इस तरह अपमान का विषय
माँ मुझे मत दो।"[11]

उसी प्रकार कवयित्री शिक्षित होकर आगे बढ़ने की और सबको जागृत करने का आह्वान भी देती है। शिक्षा के माध्यम से ही यह जागृति संभव है। दलित स्त्री समाज से विद्रोह कर शिक्षित होकर आगे बढ़ने का हौसला रखती है।

"मुझको पढ़ना आगे बढ़ना
खुद को नए सॉचे में गढ़ना
और सबको है जगाना
सबको उसका हक दिलाना।"[12]

इस प्रकार हम देख सकते हैं दलित स्त्री जीवन बाकी स्त्री जीवन से बिलकुल अलग तरह की है। उनकी समस्याएँ अलग तरह की है। उनकी जीवन स्थितियाँ अलग तरह की है। उनकी आभिव्यक्तियाँ भी अलग तरह की है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि स्त्रीवाद और दलित स्त्रीवाद दोनों अलग–अलग संकल्पनाएँ हैं। क्योंकि स्त्रीवाद पुरुष सत्ता के विरुद्ध स्त्री अस्मिता को स्थापित करने की कोशिशों में सामाजिक असमानता के बहुत से पक्षों को अभिव्यक्ति नहीं दे पाई। भारत के विशेष संदर्भ में दलित स्त्री की पहचान या अस्मिता को बुलंद करने में तथाकथित स्त्रीवाद सक्षम नहीं रहा है। इसीलिए ही साहित्य जगत में अनिवार्यतः दलित स्त्री की अलग आवाज उभर रही है।

सन्दर्भ सूची :-

1. Sharmila Rege, dalit women talk differently a critic of 'diffrence' towards a dalit feminist standpoint position, Economic and political weekly October 31, 1998
2. संजीव चंदन, दलित स्त्रीवाद, द मार्जिनलाइज्ड पब्लिकेशन, 2017, पृ. 328
3. कौसल्या बैसंत्री, दोहरा अभिशाप, परमेश्वरी प्रकाशन, द्वि.सं 2013
4. रजनी तिलक, हवा सी बेचैन युवतियां, स्वराज प्रकाशन, 2014, पृ. 9
5. रजनी तिलक, हवा सी बेचौन युवतियां, स्वराज प्रकाशन, 2014, पृ. 15
6. सुशीला टाकभौरे, काव्य रंग सुशीला टाकभौरे की सम्पूर्ण कविताएँ, प्रलेक प्रकाशन, 2022, पृ. 70
7. रजनी तिलक, समकालीन भारतीय दलित महिला लेखन–2 कविता खंड, स्वराज प्रकाशन, 2019, पृ. 194–195
8. रजनी तिलक, हवा सी बेचैन युवतियां, स्वराज प्रकाशन, 2014, पृ. 56
9. रजनी तिलक, हवा सी बेचैन युवतियां, स्वराज प्रकाशन, 2014, पृ. 24
10. सुशीला टाकभौरे, काव्य रंग सुशीला टाकभौरे की सम्पूर्ण कविताएँ, प्रलेक प्रकाशन, 2022, पृ. 198–199
11. रजनी तिलक, रजनी अनुरागी (सं), समकाली भारतीय दलित महिला लेखन खंड 1, स्वराज प्रकाशन, सं 2018, पृ. 49
12. वहीं

Mail id : anushat812@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 51-54

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

रजनी तिलक की कहानियों में 'दलित विमर्श' चुनिंदा कहानियों के संदर्भ में

बिंदु आर

शोधार्थी, हिंदी विभाग, कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कोच्ची–682022, केरल।

रजनी तिलक के कहानी संग्रह 'बेस्ट ऑफ करवाचौथ' का पहला प्रकाशन 2018 में अधिकरण प्रकाशन द्वारा हुई थी। 19 कहानियों के इस कहानी संग्रह में रजनी तिलक के व्यक्तित्व जीवन के संघर्षों के अलावा सामाजिक आंदोलन में उनके द्वारा नजदीकी से देखी गयी। घटनाओं का विश्लेषित विवरण है। ये दर्शाता है कि अंबेडकरवादी कहानियाँ अब केवल व्यक्तिगत संघर्षों का दस्तावेज ही नहीं रहेगा अपितु वहाँ से आगे बढ़ चुकी है और अब उन लोगों के जीवन संघर्ष भी इसमें शामिल हैं जो शायद स्वयं को अभिव्यक्त न कर पायें।

'दलित लेखक' कहानी के पात्र 'सुजात सिंह सागर' बदरपुर के एक जवान टीजीटी टीचर है। 20 वर्ष पहले ही बदरपुर में डॉ. अंबेडकर के विचार पहुँच चुके थे। तब यहाँ के लोग चंदा इकट्ठा करके एक छोटा–सा बुद्ध बिहार बनाया। सुजाता सिंह सागर ने बुद्ध पूर्णिमा के दिन एक पुस्तकालय खोलने और उसके लिए दलित साहित्य की पुस्तकें खरीदने की सुझाव दी। इस पर सभी हामी भर दिए और पुस्तकालय का उद्घाटन दलित लेखक से करने का निश्चय भी किया। उद्घाटन के समय आमंत्रित सभी मेहमान आ गये। समारोह में सुजात सिंह सागर ने आमंत्रित मेहमानों से बताया कि "हमें खुशी है कि आप लोग पुस्तकालय खुलवाने में हमारी मदद करेंगे। क्या कुछ दलित लेखक अपनी कुछ पुस्तकें यहाँ के लिए दान कर सकते हैं?"[1]

इसके बदले में एक अतिथि ने कहा – "भाई वो तो आपको ही खरीदनी पड़ेंगी! दरअसल प्रकाशक लेखकों को 5–10 कॉपी देता है। क्या तो वे अपने परिचितों को दे और क्या समीक्षा वगैरह के लिए पत्रकारों व अन्य लेखकों को?"[2]

दलित साहित्यकारों को कैसा न होना चाहिए कैसा होना है इसके बारे में रजनी तिलक जी ने अपना मत इस कहानी के द्वारा बताना चाहती है।

दलित साहित्य पर विश्वविद्यालय स्तर पर शोध हो रहे हैं। आत्मकथाएं, संस्मरण, कविताएं विद्यालय के स्लेबस में लगने लगे हैं। प्रकाशक लपककर दलित साहित्य छापते हैं। दलित साहित्यकारों को कॉलेजों में बुलाया जाता है, दलित साहित्यकार साहित्य अकादमी तक पहुंच चुकें हैं। तो यह जानकर सुजात सिंह सागर ने मन ही मन सोचा

"मेरे गांव में दलित साहित्य की खुशबू तक नहीं पहुंची, ऐसा क्यों? यह तो तब है जब हम राजधानी

दिल्ली में रहते हैं।"[3]

यहाँ रजनी तिलक जी ने यही बताना चाहती है कि पढ़े लिखे दलित लोगों को दलित साहित्य लिखने के साथ उस साहित्य से दलितों को अवगत कराने, परिचित कराने का काम भी करना है। इसे एक नौजवान के इन वाक्यों द्वारा यों व्यक्त किया है कि

"क्या आप लोग मिलकर कोई अपना प्रकाशन नहीं चला सकते? अपनी किताबें गांव–गांव तक पहुंचे तो लोग भी अपने साहित्य के बारे में जानें।"[4]

दलित लेखकों को अपने अनुभवों को साझा करने के साथ ही उसे दलित समूहों के लोगों के बीच पहुँचाने का जिम्मेदारी भी उठाना चाहिए। क्योंकि अनपढ़, अज्ञान, मुख्य धारा और शहर से दूर अलग बस्ती में रहने वाले दलितों की स्थितियों को सुधारने वाला और कोई नहीं है इसकी जिम्मेदारी खुद दलित लेखकों को ही उठाना चाहिए। दलित लेखकों को केवल पैसे की कमाई और प्रसिद्धि के लिए साहित्य नहीं लिखना चाहिए। उन लोगों की समाजसेवा सच्चे अर्थों में होना चाहिए।

गांवों में दलित लड़कियाँ पढ़ने के लिए थोड़े ही जाती है। कोई जाती है तो चार या पाँचवीं कक्षा तक। और वे पढ़ाई छोड़कर गोबर थापने या अन्य कोई काम करने जाती हैं। केवल लड़के ही स्कूल जाते हैं।

रजनी तिलक जी की कहानी 'रोशनी' में दलित लड़कियों की पढ़ाई की कठिनाई के बारे में बताती है। प्रस्तुत कहानी में शिक्षा यात्रा दल के 10 लड़कियाँ एक रात को हरियाणा के एक गांव में विश्राम लिया। वे वहाँ के लड़कियों और स्त्रियों से पूछताछ करता है कि कितनी लड़कियाँ स्कूल जाती हैं? और क्यों नहीं जाती? तो उन्हें पता चलता है कि – "गांव के कथित उच्च जाति के टीचर ने 8 वर्ष की दलित लड़की की कच्छी उतरवाकर उसके पेशाब की जगह उंगलियों से छुआ था। डर के मारे वह लड़की उस दिन के बाद कभी स्कूल नहीं गई। जब लड़की के स्कूल न जाने का रहस्य खुला तो अन्य कई लड़कियों की स्कूल न जाने की कहानियां खुलती गईं और उस टीचर की शिकायत की गई, लेकिन नीचे से ऊपर तक कोई कार्यवाही नहीं हुई।"[5]

इस शिक्षा यात्रा दल के लड़कियाँ अपनी शिक्षा यात्रा केवल मनोरंजन के लिए नहीं करती है। जिससे वे एक गांव की दलित लड़कियों के पढ़ाई की कठिनाई को दूर करके दलित लड़कियों की जिंदगी में रोशनी लाती है।

"वक्त गुजरता गया इसी दल ने सरपंच के साथ बैठक की और ज्ञापन बनाकर अधिकारियों को भेज दिया। टीचर का तबादला हो गया.. आज उस गांव की सरपंच एक दलित स्त्री है। बच्चियां फिर स्कूल जाने लगी हैं।"[6]

'रोशनी' कहानी के द्वारा रजनी तिलक जी ने यही व्यक्त करना चाहता है कि दलित लड़कियाँ स्कूल में भी सुरक्षित नहीं है। उच्च कुल के अध्यापकों द्वारा उन्हें यौन शोषण भी झेलना पड़ती है। प्रस्तुत कहानी में दलित लड़कियों को न्याय मिलती है और वे पुनः स्कूल जाती है। क्योंकि सरपंच एक दलित स्त्री है। इससे हमें ज्ञात होता है कि दलित स्त्री के अधिकार और हक के लिये दलित स्त्री को ही आगे आना और संघर्ष करना है।

मध्यांतर भोजन सरकार के एक ऐसा आयोजन है, वह स्कूलों में पढ़ते गांव के गरीब, दलित, आदिवासी बच्चों को बहुत बड़ा सहारा है।

रजनी तिलक जी की 'मध्यांतर भोजन' कहानी के पात्र है 'भगवती'। वह गाँधी भवन के 'संवादनी' संस्था

से खाद्य सुरक्षा में हिस्सा लेने जाती है। वह आशा वर्कर है। कम पढ़ी लिखी है। इसलिए उसे आशंका होती है कि वह खाद्य सुरक्षा पंचायत में क्या–क्या कहेगी, कैसे कहेगी।

सभागृह में पहुँचे तो वह देखा कि कई विषयों पर बातें चल रहे थे। जैसे राशन की दुकानों में राशन गायब था, रोजगार के नाम 100 दिन के काम सरकार ने कहा लेकिन मिलता ही नहीं, जनसुनवाई अत्याचार, उत्पीड़न, बेईमानी, भ्रष्टाचार से गुजरती हुई मध्यांतर भोजन पर आ टिकी। एक वक्ता ने कहा– "मध्यान्तर भोजन के बहाने सरकार हमारे बच्चे को भिखारी बना रही है... मध्यांतर भोजन बंद करना चाहिए।"[7]

दूसरे ने कहा– "मध्यांतर भोजन मेंकीड़े निकलते हैं... खिचड़ी पतली होती है... सड़ा खाने से बच्चे बीमार हो जाते हैं...।"[8]

ये सब सुनकर भगवती बोलने की इजाजत मांगी और बोलने लगी– "भइया आप लोग मध्यांतर भोजन को पढ़ाई न होने का कारण मानते हो? दूसरा मध्यांतर भोजन को भीख मानते हो? बच्चों के हाथ में कटोरा कहते हो? हम जानते हैं गांव–गांव गरीब, दलित और आदिवासियों के बच्चों को न ज्ञान मिलता है न खाना। हमें तो उसके लिये लड़ना चाहिए...जो मिला उसे छोड़ने की लड़ाई तो हमें नहीं लड़नी है न? अगर हममें कुब्बत है, तो जो पोषक आहार हम सरकार से कहकर बंद कराना चाहते हैं तो खुद ही अपने बच्चों के हाथों में कटोरा छीनकर घर में रख दें और अपने बच्चों को अच्छा खाना दें। परन्तु यहां हम कहने वाले और हैं और कटोरा लेकर खाने वाले लोग और हैं। हमारी लड़ाई हमारी चिंता बच्चों की अच्छी पढ़ाई की है न? तो हमें अपने बच्चों की पढ़ाई के लिये निगरानी करनी होगी... हमें अच्छी पढ़ाई चाहिये तो खाने में पोषक तत्व भी चाहिए। मध्यांतर भोजन भीख नहीं है... दया नहीं है... हमारे बच्चों का हक है... ये सरकार की जिम्मेदारी है।"[9]

भगवती के इन वाक्यों द्वारा रजनी तिलक जी ने यही बताना चाहती है कि ज्ञान, खाना से वंचित गरीब, दलित, आदिवासी बच्चों को पोषक खाना, गुणवत्ता की शिक्षा दिलाना सरकार की जिम्मेदारी है। यह उन बच्चों का हक है। दलित उद्धार के लिए सरकार की जो आयोजन है उसे भ्रष्टाचार रहित सुचारू ढंग से गुणवत्ता के साथ चलाना हम सबकी जिम्मेदारी है।

अंबेडकर ने संविधान में दलित लोगों को इसलिए आरक्षण दिलवाया कि वे भी समाज में माननीय जिंदगी जी सके और समाज के सभी सुविधाओं के हकदार बने।

स्कूल, कॉलेज, सरकारी कार्यालयों में आरक्षण से प्रवेश पा लिये छात्रों और उद्योगार्थियों को आरक्षण या जाति के नाम अपमान झेलना पड़ता है। रजनी तिलक जी की कहानी 'आरक्षण'में 'नीता' अंग्रेजी अध्यापिका है। वह अपनी स्कूल में नयी अध्यापिका है। स्टाफ रूम के सभी अध्यापिकाएँ अपना परिचय कराती है तो अपनी जाति बताना भी नहीं भूलती। नीता से भी पूछती है कि 'आप कौन हैं? मतलब उसकी जाति?

कुछ ही दिनों में नीता की बच्चों से दोस्ती हो गयी। मारपीट के लिये कुख्यात नीता के क्लास के बच्चे अनुशासन में आने लगे। दो महीनों में ही नीता स्कूल में मशहूर हो गयी। प्रिंसिपल साहब ने नीता की पढ़ाई क्षमता और स्कूल के अन्य कार्यक्रमों में सक्रियता दिखाने से बेहद खुश थे।

पहले तो दलितों के नाम गाली सुनकर नीता खून का घूंट पीकर रह जाती थी। अब वह अपने तर्कों की तीरों से सबको निरुत्तर किये रहती। कठिन परिश्रम और मृदु व्यवहार से अपनी जाति के मेहनतकश होने ईमानदार होने को सिद्ध करती।

आरक्षण पर विवादों की बहस में नीता कभी–कभी हंसते हुए मजाक में ही कह देती– "मेरी मैरिट मेरी कक्षा का रिजल्ट है। हमारी असली मैरिट हमारे काम की गुणवत्ता और परिणाम है।"[10]

इस कहानी के एक अन्य पात्र है'राजू' वह डॉक्टर है। वह नीता के घर में काम करने वाली नौकरानी का बेटा है। आरक्षण के विरोधी डॉक्टरों ने हड़ताल चलाया तो उसके विरोध में राजू आरक्षण समर्थन के लिए झंडा उठाया। इसके बारे में नीता राजू की माँ से कहती है– "ये हड़ताली कुलीन डॉक्टर तुम्हारे राजू से क्या अपनी तुलना कर सकते हैं? क्या वे अपने बदन के पहने कपड़े खुद धो सकते हैं ? क्या वे एक रात बिना बिजली के रह कर पढ़ सकते हैं? क्या वे खाली जेब की त्रास झेल सकते हैं? क्या उनके खुद से लड़ने की सहनशीलता हमारे राजू से ले सकते हैं?

क्या वे राजू सुनने की आत्महीनता से उबरने का आत्मसंघर्ष पा सकते हैं।"[11]

आरक्षण पर बहस करने वाले ये नहीं सोचते हैं कि आरक्षण के हकदार के आर्थिक, सामाजिक स्थिति सदियों से शोचनीय है। उनकी जिंदगी जितनी शोषित और उपेक्षित है। आरक्षण के बिना वे समाज में आगे आने में असमर्थ ही रहेगा। समाज के निम्नतम स्तर की ओर कुचला दिया जाएगा।

केवल आरक्षण से ही काम नहीं चलेगा। दलित और पिछड़े लोग अपने हक और अधिकार को जानना है। उसके लिए शिक्षित होना, अच्छे नौकरी पाना है। तभी उनके आर्थिक और सामाजिक स्थिति में सुधार आ जायेगी। दलितों को अपनी लड़ाई खुद लड़नी है। रजनी तिलक जी ने इसे नीता के शब्दों में यों व्यक्त किया है कि– "अगर अपने अधिकार और अपने वर्ग की लड़ाई नहीं लड़ेगा तो ऐसे छुई–मुई डाक्टर का क्या करोगी?"[12]

संदर्भ :–

1. बेस्ट ऑफ करवाचौथ– रजनी तिलक, अधिकरण प्रकाशन, दिल्ली–110094, प्रथम सं. 2018, पृष्ठ 16
2. वही, पृष्ठ 16
3. वही, पृष्ठ 16
4. वही, पृष्ठ 16
5. वही, पृष्ठ 19
6. वही, पृष्ठ 19
7. वही, पृष्ठ 21
8. वही, पृष्ठ 21
9. वही, पृष्ठ 21–22
10. वही, पृष्ठ 44
11. वही, पृष्ठ 45
12. वही, पृष्ठ 45

सहायक ग्रंथ –

1. बेस्ट ऑफ करवा चौथ– रजनी तिलक, अधिकरण प्रकाशन, दिल्ली–110094 प्रथम सं. 2018
2. https://hindi.sabrangindia.पद – पुस्तक समीक्षा : बेस्ट ऑफ करवाचौथ– विद्याभूषण रावत।

BINDU. R, Research Scholar, Dept. of Hindi,

Cochin university of science and technology, Kochi-682022, Kerala, Mob. 9747902254

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 55-62

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

विश्वविद्यालय में लागू नई शिक्षा नीति के महत्व का विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. चन्द्रशेखर सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर, समाज कार्य विभाग, म0 गां0 काशी विद्यापीठ, वाराणसी।

सारांश :-

प्राचीन काल से ही भारत शिक्षा के क्षेत्र में विश्वगुरू रहा है। अपने उच्चतम एवं उत्कृष्ट शिक्षण संस्थानों जैसे नालन्दा, तक्षशिला आदि के बल पर इसकी ख्याति पूरे विश्व में फैली हुयी है। देश विदेश के विद्यार्थी यहाँ शिक्षा ग्रहण करने को आते थे। शिक्षा स्थल ही वो केन्द्र बिंदु है जहाँ से राष्ट्र का निर्माण सम्भव हो सकते है इसी को देखते हुये नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को सहभागी बनाया गया है। इस नीति में न केवल वर्तमान युवा पीढ़ी को ध्यान में रखा गया है बल्कि आने वाली पीढ़ी की छात्र एवं छात्राओं की अपेक्षाओं, आकांक्षाओं व उनके समक्ष आने वाली चुनौतियों का भी ध्यान रखा गया है और महिलाओं की शिक्षा व्यवस्था पर भी विशेष ध्यान दिया गया है। उच्च शिक्षा में सामान्य नामांकन अनुपात को 2035 तक 26.3 प्रतिशत (वर्तमान में) से बढ़ाकर 50 प्रतिशत तक लाना है। उच्च शिक्षा में सर्टिफिकेट, डिप्लोमा एवं डिग्री पाठ्यक्रमों को शामिल किया जाएगा।

देश में 34 सालों बाद नई शिक्षा नीति आई है जो शोधपरक, नवाचार और अनुसंधान को बढ़ावा देती है। सरकार का यह प्रयास है कि 45 हजार से अधिक महाविद्यालयों और 15 लाख से अधिक स्कूलों में नई शिक्षा नीति के अनुरूप परिवर्तन किया जाए। सरकार का ऐसा प्रयास है कि तेजी से बदलते सामाजिक आर्थिक वैश्विक परिवेश में देश के युवाओं को सक्षम बनाया जाए। नई नीति का विजन ही ऐसी शिक्षा प्रणाली विकसित करना है जिसमें भारतीय परम्पराओं और मूल्यों को जगह मिले। शिक्षा प्रणाली में इण्डिया की जगह भारत की झलक मिले। उच्च शिक्षा में सरकार द्वारा जो खर्च किया जा रहा है उसे अधिक तार्किक एवं लक्ष्य केन्द्रित बनाने की जरूरत है। आज तकनीकी शिक्षा में विज्ञान और इंटरनेट सम्बन्धी विषय अंग्रेजी में ही होते है। जिनका हिंदीकरण किया जाना आसान कार्य नहीं है। ऐसी दशा में यदि हमारा पूरा फोकस हिन्दी, मातृभाषा और क्षेत्रीय भाषाओं पर रहेगा तो देश में रोजगार के अवसरों में कमी होगी और हम तकनीकी और आर्थिक विकास की दृष्टि से काफी पिछड़ जाएंगें।

कुट शब्द :- नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, समावेशी शिक्षा, महिला साक्षरता, व्यवसाय कौशल, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, कला और समाज विज्ञान।

प्रस्तावना :-

भारत के लिए प्रस्तुत नई शिक्षा नीति 2020 देश की एक ऐसी महत्वाकांक्षी पहल है जो शिक्षण प्रक्रिया

में आमूलचूल बदलाव लाने के लिए प्रतिश्रुत दिख रही है। इस तरह की जरूरत बहुत दिनों से अनुभव की जा रही थी परंतु जिस तरह से वर्तमान सरकार ने इसकी योजना बनाने में गम्भीरता दिखाई है और इसके कार्यान्वयन के प्रति रुचि व्यक्त की है वह उसकी प्रतिबद्धता और संकल्प की दृढ़ता को व्यक्त करती है। सरकार द्वारा यह संकेत दिया जा रहा है कि आत्मनिर्भर, उद्यमी और कुशलतायुक्त युवा शक्ति ही भारत की स्थानीय और वैश्विक समस्याओं के समाधान में सहायक हो सकेगी। ऐसा नहीं है कि संरचना, विषयवस्तु और शिक्षा की पद्धति को लेकर जो उच्च शिक्षा का ढांचा अब तक चलता चला आ रहा था उसको लेकर कोई असंतोष नहीं था और उसकी आलोचना नहीं हुई थी परंतु सरकार की ओर से छिटफुट बदलाव के अलावा कोई कारगर उपाय नहीं हो सका था और बातें ज्यों की त्यों बनी रहीं और समस्याएं बढ़ती गईं या फिर उनके रूप बदलते गए। धीरे–धीरे अधिकांश विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में प्रवेश, परीक्षा और डिग्री देने की यांत्रिक प्रक्रिया और उससे जुड़े अनुष्ठानों को खेती करते हुए फसल उगाने की तरह पूरा करना ही मुख्य कार्य बनता गया। शिक्षा की गुणवत्ता प्रश्नांकित होती गई और डिग्रीधारी बेरोजगारों की संख्या बढ़ती गई जो अपनीअकुशलता के कारण समाज पर भार बनते गए। यह भारतीय लोक जीवन का एक दुखदायी पक्ष है कि शिक्षा अपनी अपेक्षाओं की दृष्टि से कमजोर साबित हुई। नालंदा और तक्षशिला जैसे उन्नत विश्वविद्यालयों के अतीत वाले भारत के वर्तमान विश्वविद्यालय दुःस्वप्न सरीखे हो रहे हैं। इनकी समस्याओं के समाधान के लिये नई शिक्षा नीति में बहु आयामी प्रयास करने का वादा किया गया है।

नई शिक्षा नीति में विद्यार्थियों की अभिरुचि, योग्यता और तत्परता को देखते हुए अध्ययन विषय के चयन और शिक्षण–अवधि की दृष्टि से अनेक विकल्प दिये जाने का प्रावधान किया गया है। साथ ही सीखने की प्रक्रिया पर विशेष बल दिया गया है ताकि अध्ययन का कार्य छात्र–छात्राओं के निजी अनुभव का हिस्सा बन सके। अब तक अध्यापक पुस्तक और परीक्षा की वैतरणी के बीच एक सेतु का काम करते थे जिनकी सहायता से विद्यार्थी पार उतरता था। साथ ही पुस्तक और परीक्षा के बीच ऐकिक सम्बन्ध बना रहता था और पिछले कुछ वर्षों के प्रश्न पत्र हल करना सफलता की गारंटी होता था । रटन की प्रचलित परम्परा से अलग हट कर अनुभव, चिंतन और सृजन को महत्व देने की बात विद्यार्थियों को सशक्त और योग्य बनाने की दिशा में एक बड़ा कदम होगा। इसी तरह प्रस्तावित व्यवस्था में व्यावसायिक, मानविकी, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, कला और समाज विज्ञान आदि के विषयों में से चुनने की छूट एक क्रांतिकारी पहल है। इस तरह का लचीलापन विद्यार्थी में जिज्ञासा की भावना, प्रयोग धर्मिता, सृजनशीलता को बढ़ावा देने के साथ–साथ छात्र–छात्राओं की संख्या के दबाव को कम करने, विद्यार्थियों की रुचि की विविधता को सम्मान देने और शिक्षा प्रक्रिया की अतिरिक्त यांत्रिकता से उबरने में निश्चय ही सहायक सिद्ध होगी। इसके लिए संस्था के स्तर पर बहु अनुशासनात्मकता को प्रश्रय देना होगा। साथ ही पाठ्यक्रमों को समुचित आकार देना होगा ताकि उनमें संरचनात्मक दृष्टि से पूर्णता औरकौशलगत उपादेयता का समुचित सन्निवेश हो सके। उच्च शिक्षा की ओर उन्मुख और अग्रसर होने वाले छात्र–छात्राओंके लिए चार वर्ष का स्नातक पाठ्यक्रम निश्चय ही उपयुक्त होगा। कहना न होगा कि इसके लिए पाठ्यक्रम को अद्यतन करने के साथ अध्यापकों के लिए प्रशिक्षण भी आवश्यक होगा जिसमें शिक्षण विधि के साथ ही मूल्यांकन की व्यवस्था विकसित की जाय। नई व्यवस्था की प्रामाणिकता और उपयोगिता की स्वीकार्यता के लिए प्राध्यापकों के लिए गहन प्रशिक्षण की आवश्यकता पड़ेगी। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में अध्यापक प्रशिक्षण का प्रश्न पेचीदा है क्योंकि इसमें

शिक्षण विधि, शिक्षण की टेक्नोलॉजी के साथ ही विषयगत अनुसंधान में भी अद्यतन होते रहने की जरूरत होती है। इनके बीच सामंजस्य और संतुलन बैठाना बड़ा आवश्यक है और गुणवत्ता बनाए रखने के लिए इसे अनिवार्यतः सतत होते रहना चाहिए। नई शिक्षा नीति कई तरह की उच्च शिक्षा संस्थाओं की संकल्पना के साथ प्रत्येक जिले तक उनकी स्थापना की बात करती है। यह सब पर्याप्त आर्थिक संसाधनों की अपेक्षा करता है। यह शुभ लक्षण है कि इसके लिए सरकार जी. डी. पी. का 6 प्रतिशत खर्च करने के लिए तत्पर है।

वस्तुतः उच्च शिक्षा में सुधार पिछले कई वर्शो से प्रतीक्षित है। कहां तो यह जाता है कि 'सा विद्या या विमुक्तये' अर्थात् शिक्षा को मनुष्य की मुक्ति प्रमुख साधन स्वीकार किया गया था और कहां हम आज शिक्षा को अंदर से जर्जर व्यवस्था में कैद पा रहे हैं। आज की स्थिति बहुत बदल चुकी है और मात्र खानापूर्ति ही हो पा रही है। यदि निकट से देखा जाय तो प्रचलित व्यवस्था शनैः–शनैः ज्ञान–निर्माण, कुशलता–प्रशिक्षण, सामाजिक दायित्व–बोध के विकास और मानवीय मूल्यों को आत्मसात करने की दृष्टि से खोखली होती जा रही है। यद्यपि हर बात के लिए शिक्षा पर दोष मढ़ना ठीक नहीं है और न शिक्षा को हर रोग की दवा मानना ही उचित होगा परंतु इस बात के पर्याप्त प्रत्यक्ष और परोक्ष संकेत हैं कि शिक्षित वर्ग अपनी भूमिका में खरा नहीं उतर पाया और समझौते करता गया। इसकी परिणति देश के गिरते सामाजिक, नैतिक, राजनैतिक और आर्थिक स्वास्थ्य में देखी जा सकती है। आशा और अपेक्षा तो यह थी कि उच्च शिक्षा के परिसरों में सृजनशीलता, मौलिकता, उत्कृष्टता, प्रासंगिकता, सांस्कृतिक चौतन्य और मूल्यवत्ता का जीवंत रूप मिलेगा और स्वतंत्र चिंतन तथा स्वायत्तता की प्रतिष्ठा होगी पर ऐसा हो न सका। स्वतंत्र भारत में शिक्षा के लोकतंत्रीकरण के तहत उच्च शिक्षा की संस्थाओं का बड़ी तेजी से और अनियंत्रित सा प्रसार हुआ (हालांकि भारत की कुल जनसंख्या की दृष्टि से वह अभी भी अपर्याप्त ही कहा जायेगा) और शिक्षा के स्तर का जो क्षरण शुरू हुआ तो सारे मानक टूटने लगे। उच्च शिक्षा की संस्थाओं को अंग्रेजों के जमाने में जो स्वायत्तता प्राप्त थी वह स्वाधीन भारत में लुप्त होती गई। सामाजिक–राजनैतिक समीकरणों के भंवरजाल में फंस कर उच्च शिक्षा का आत्म नियंत्रण जाता रहा और अब वह लगभग पूरी तरह से सरकारी नियंत्रण में है जो अंततः राजनैतिक प्रकृति का होता है। साथ ही शिक्षा संस्थाओं के बढ़ते निजीकरण से कई नए आर्थिक और नैतिक आयाम भी जुड़ गए हैं जो गुणवत्ता और साख के सवाल खड़े करते रहे हैं। यह प्रसन्नता की बात है कि नई शिक्षा नीति में संस्थाओं को अधिक स्वायत्तता मुहैया करने का प्रस्ताव किया गया है परंतु इसकी प्रकृति और प्रक्रिया को लेकर बहुत स्पष्टता नहीं है। संस्थाओं पर भरोसा करते हुए इस पर मुक्त मन से विचार की अपेक्षा है ताकि शिक्षा जगत में फैले संशय दूर हो सकें। देश की नई शिक्षा नीति के संकल्प के अनुकूल भारत सरकार का मानव संसाधन विकास मंत्रालय अब शिक्षा मंत्रालय' के नाम से जाना जायेगा। इस त्वरित कार्यवाही के लिये सरकार निश्चित ही बधाई की पात्र है।

साहित्य की समीक्षा :–

सिंह दुर्गेश ने 2020 में अपने लेख पत्र में लिखा है कि भारत की वर्तमान शिक्षा व्यवस्था त्रिस्तरीय है जिसमें प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च शिक्षा शामिल है। यह शिक्षा व्यवस्था शिक्षित लेकिन रोजगार विहिन युवाओं को तैयार करती है। जिससे स्पष्ट होता है कि भारतीय शिक्षा व्यवस्था विश्व स्तर के कुशल एवं दक्ष युवा तैयार करने में सक्षम नहीं है। सरकार को इसके लिए शिक्षा में निवेश करना होगा। यद्यपि सरकार ऐसा कर भी रही है। देश में 34 सालों बाद नई शिक्षा नीति आई है जो शोधपरक, नवाचार और अनुसंधान को बढ़ावा देती है।

सरकार का यह प्रयास है कि 45 हजार से अधिक महाविद्यालयों और 15 लाख से अधिक स्कूलों में नई शिक्षा नीति के अनुरूप परिवर्तन किया जाए। सरकार का ऐसा प्रयास है कि तेजी से बदलते सामाजिक आर्थिक वैश्विक परिवेश में देश के युवाओं को सक्षम बनाया जाए।

गंगवाल सुभाष ने 2020 में लिखा है कि 21वीं सदी ज्ञान प्रधान सदी है जिसमें विज्ञान एवं तकनीकी विकास परिवर्तन के प्रमुख आधार है। किसी भी देश, समाज और परिवार को विकसित, समृद्ध एवं प्रतिस्पर्धात्मक बनाने के लिए शिक्षा को महत्व देना होगा। भारत में शिक्षा केन्द्र एवं राज्यों का विषय है। केन्द्र सरकार राष्ट्रीय हित में शिक्षा का मसौदा तैयार करती है, जिसका अनुमोदन संसद द्वारा लिया जाता है लेकिन राज्यों की विधान सभाओं को भी विचार विमर्श, बहस के माध्यम से अनुमति प्रदान करनी होती है। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को सहभागी बनाया गया है। जिसमें 2 लाख सुझावों का सहारा लिया गया है। नीति का मसौदा निर्माण डॉ. कस्तुरीरंगन की अध्यक्षता में बनी समिति द्वारा किया गया है ताकि पक्षपात का आरोप नहीं लगाया जा सके। देश में एक सी शिक्षा नीति के लक्ष्य को भी ध्यान में रखा गया है। इस नीति में न केवल वर्तमान युवा पीढ़ी को ध्यान में रखा गया है बल्कि आने वाली पीढ़ी की अपेक्षाओं, आकांक्षाओं व चुनौतियों का भी ध्यान रखा गया है। उच्च शिक्षा में सामान्य नामांकन अनुपात को 2035 तक 26.3 प्रतिशत (वर्तमान में) से बढ़ाकर 50 प्रतिशत तक लाना है। उच्च शिक्षा में सर्टिफिकेट, डिप्लोमा एवं डिग्री पाठ्यक्रमों को शामिल किया जाएगा। वर्तमान समय में देश में बेरोजगारी एवं गरीबी बढ़ती जा रही है। शिक्षा महंगी हो रही है। सरकारी शिक्षा में बजट कम हो रहा है, ऐसे में नई नीति किस तरह से देश एवं युवाछात्र–छात्राओं के लिए मददगार होगी यह अभी भविष्य के गर्त में है।

शर्मा प्रो.के. एल. ने 2020 में अपने लेखपत्र में लिखा है कि शिक्षा से सशक्त और सविमर्शी समाज बनाया जा सकता है लेकिन शिक्षा इतनी गुणवत्तापरक हो कि मनूष्य खुद को स्वतंत्र, रचनात्मक और नैतिक दृष्टि से दृढ़ समझ सके। शिक्षा परिवर्तन और सशक्तिकरण का साधन है। एस. राधाकृष्णन आयोग 1948, डी. एस. कोठारी आयोग 1964, प्रथम राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968, द्वितीय राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986, अध्यापक राष्ट्रीय आयोग 1983, राष्ट्रीय ज्ञान आयोग 1999 और अनेक शिक्षा नीतियों के विचारों से बढ़कर क्या यह शिक्षा नीति है ? अब तक कोठारी आयोग द्वारा शिक्षा की दशा एवं दिशा की व्याख्या समावेशी मानी गई है। क्या वर्तमान शिक्षा नीति इससे भी व्यापक और गहन है? नीति आयोग के अनुसार नई नीति द्वारा प्रस्तावित शिक्षा प्रणाली द्वारा नए भारत का निर्माण संभव होगा। नई नीति में प्रारम्भिक स्तर से उच्च स्तर तक संतुलित शिक्षा से सबको विकास का अवसर मिलेगा। परन्तु नई शिक्षा नीति में शिक्षक और विद्यार्थी की दूषित स्थिति से निपटने पर यह नीति मौन है, इस पर किसी प्रकार की विवेचना का अभाव है।

नई शिक्षा नीति के महत्व का विश्लेषण :–

नई शिक्षा नीति का विजन ही ऐसी शिक्षा प्रणाली विकसित करना है जिसमें भारतीय परम्पराओं और मूल्यों को जगह मिले। शिक्षा प्रणाली में इण्डिया की जगह भारत की झलक मिले। इसका उद्देश्य ऐसी समतावादी और उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा प्रणाली बनाना है जिससे एक ज्ञान आधारित समाज का निर्माण हो। इसमें प्राचीन ज्ञान

से लेकर आधुनिक ज्ञान को शामिल किया गया है। इसमें स्वास्थ्य, शिक्षा और पर्यावरण आदि सब को शामिल किया गया है। इस नीति में सभी विद्यार्थियों को चाहे उनका निवास स्थान कहीं भी हो उन्हें गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करनी होगी। हाशिए पर रह रहे समुदायों, वंचित महिलाओं और अल्प प्रतिनिधित्व वाले समूहों पर अधिक विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। इस नीति के प्रमुख सिद्वान्त इस प्रकार है :–

1. हर बालक एवं बालिकाओं की विशिष्ट क्षमताओं की स्वीकृति, पहचान और उनके विकास हेतु प्रयास करना।
2. बुनियादी साक्षरता और संख्या ज्ञान को सर्वाधिक प्राथमिकता देना।
3. शिक्षा में लचीलापन लाना ताकि शिक्षार्थियों में उनके सीखने के अनुसार पाठ्यक्रम चुनने की आजादी हों।
4. कला एवं विज्ञान, पाठ्यक्रम और पाठ्येत्तर गतिविधियों में, व्यावसायिक एवं शैक्षणिक गतिविधियों में विरोध एवं अलगाव की भावना नहीं हो।
5. एक बहु विषयक और समग्र शिक्षा का विकास करना।
6. अवधारणात्मक सोच का विकास करना न कि रटंत एवं परीक्षा की पढ़ाई पर जोर।
7. रचनात्मक एवं तार्किक सोच का विकास करना ताकि नवाचारों को प्रोत्साहन मिले।
8. नैतिकता, मानवीय और संवैधानिक मूल्यों का विकास करना।
9. बहुभाषा शिक्षा प्रणाली अपनाना ताकि अध्ययन–अध्यापन कार्य में भाषा की शक्ति को पहचान मिल सके।
10. सीखनें के लिए सतत् मूल्यांकन पर जोर देना न कि परीक्षा को महत्व देना ताकि कोचिंग संस्कृति का विनाश हो सकें।
11. शिक्षा को सरल एवं सुलभ बनाने के लिए तकनीक पर जोर देना।
12. विविधता और स्थानीय परिवेश को ध्यान में रखते हुए शिक्षा देना।
13. सभी शैक्षणिक निर्णयों में पूर्ण क्षमता और समावेशन को ध्यान में रखना।
14. विद्यालय से महाविद्यालय शिक्षा तक सभी स्तरों केपाठ्यक्रमों में तालमेल एवं सामंजस्य बिठाना।
15. शिक्षकों एवं संकाय को सीखने का केंद्र मानते हुए इनकी भर्ती आदि हेतु उन्नत सुविधाओं का विकास करना।
16. गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और विकास के लिए उत्कृष्ट स्तर के शोध का विकास करना।
17. भारतीय परम्पराओं एवं गौरव का विकास करना। देश की प्राचीन एवं आधुनिक संस्कृति, ज्ञान एवं परम्पराओं का समावेश करना।
18. शिक्षा को सार्वजनिक सेवा मानते हुए इसे प्रत्येक बच्चे का मौलिक अधिकार माना जाए। इस हेतु आवश्यक प्रयास करना।
19. मजबूत और जीवंत शिक्षा प्रणाली हेतु शिक्षा में पर्याप्त निवेश को बढ़ावा देने के लिए निजी एवं सामुदायिक भागीदारी को बढ़ावा देना।

सभी पाठ्यक्रमों में सुधार प्रारम्भ से ही किया जाएगा। शिक्षा के व्यावसायीकरण पर रोक लगेगी। अगर कोई संस्थान अतिरिक्त कमाई करता है तो उसे शिक्षा के विकास में खर्च करना होगा। भारत के नियंत्रक और महालेखा परीक्षक ने निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा के अधिकार से सम्बन्धित ऑडिट रिपोर्ट 21 जुलाई 2017 को जारी की गई जिसमें यह बताया गया था कि राज्य सरकारें काफी फण्ड रिटेन करके रखा हुआ है अर्थात व्यय किया ही नहीं है जो कि शिक्षा पर खर्च होना चाहिए था, जो कि एक कमजोर वित्तीय नियंत्रण को बताता है। रिपोर्ट में बताया गया है कि 35 राज्य और केन्द्र शासित प्रदेश 6 वर्षों में 12,259 से 17,282 करोड़ रूपये खर्च ही नहीं कर पाए। स्कूल शिक्षा का बजट कम होता जा रहा है। 2014–15 में यह बजट 55,115 करोड़ रूपए था। वर्ष 2016–17 में यह 43,554 करोड़ रूपए हो गया। परन्तु 2019–20 में यह राशि 56,536 करोड़ रूपए हो गया। उच्च शिक्षा में सरकार द्वारा जो खर्च किया जा रहा है उसे अधिक तार्किक एवं लक्ष्य केन्द्रित बनाने की जरूरत है। शिक्षा में सुधार के लिए यह भी जरूरी है कि शिक्षकों को पर्याप्त प्रशिक्षण दिया जाए। शिक्षा का अधिक निजीकरण नहीं करना चाहिए अन्यथा वह एक व्यवसाय बन जाती है जिसका समाज सेवा से कोई सरोकार नहीं होता। शिक्षा में तकनीक अधिक भूमिका निभा रहा है। उपस्थिति से लेकर पढ़ाने एवं सिखाने का काम भी अब तकनीक के माध्यम से किया जाने लगा है। शिक्षा का क्षेत्र ही ऐसा है जहाँ पर किया गया विनियोग कभी भी बेकार नहीं जाता। शिक्षा में बार–बार नवीन परिवर्तन करने की बजाए मौजूदा योजनाओं को ही सही व्यवस्था एवं तरीकों से लागू करना चाहिए। गरीब और वंचित वर्गों का भी ध्यान रखा जाना चाहिए।

आज भी देश में बिना मान्यता प्राप्त किए विद्यालयों का संचालन किया जा रहा है। शिक्षकों और छात्रों का अनुपात बराबर नहीं है। शिक्षकों को गैर शैक्षणिक कार्यों में लगाया जाता है। ये वे आवश्यक विषय है जिन पर केन्द्र एवं राज्य सरकारों को ध्यान देना चाहिए। आज तकनीकी शिक्षा में विज्ञान और इंटरनेट सम्बन्धी विषय अंग्रेजी में ही होते है। जिनका हिंदीकरण किया जाना आसान कार्य नहीं है। ऐसी दशा में यदि हमारा पूरा फोकस हिन्दी, मातृभाषा और क्षेत्रीय भाषाओं पर रहेगा तो देश में रोजगार के अवसरों में कमी होगी और हम तकनीकी और आर्थिक विकास की दृष्टि से काफी पिछड़ जाएंगें। एक कल्याणकारी देश की उन्नति एवं उन्नत भविष्य के लिए युवाओं को ऐसी शिक्षा देने की नीति होनी चाहिए कि वे भावी परिर्वतनों में अपने आप को समायोजित करके अपना विकास कर सके। इसके लिए सभी राज्य सरकारों एवं केन्द्र सरकार को दलगत राजनीति से ऊपर उठकर सोचने की आवश्यकता है। नई शिक्षा नीति 2020 का इस प्रकार से क्रियान्वयन करना है कि सभी को विकास के उचित अवसर मिल सके।

निष्कर्ष एवं सुझाव :-

- अच्छी विचारशील, बहुआयामी और रचनात्मक दृष्टिकोण को विकसित करने के लिए गुणवत्ता पूर्ण उच्च शिक्षा का लक्ष्य होना चाहिए।
- एक व्यक्ति को एक या अधिक विशिष्ट क्षेत्रों का अध्ययन करने में सक्षम बनाना चाहिए गहन स्तर पर रुचि, और चारित्रिक, नैतिक और संवैधानिक मूल्यों, बौद्धिक जिज्ञासा, वैज्ञानिक स्वभाव, रचनात्मकता,

सेवा की भावना, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, कला, मानविकी, भाषा सहित पेशेवर तकनीकी और व्यावसायिक विषय को शामिल करते हुए 21वीं सदी की क्षमताओं को विकसित करना है।

– उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा के लिए व्यक्तिगत उपलब्धि और ज्ञान, रचनात्मक सार्वजनिक सहभागिता और समाजोपयोगी योगदान को सक्षम करना चाहिए।

– छात्रों को अधिक सार्थक और संतोषजनक जीवन और कार्य की भूमिकाओं के लिए तैयार करना चाहिए और आर्थिक स्वतंत्रता को सक्षम करना चाहिए।

– विकास सार्वजनिक और निजी दोनों संस्थानों में होगा, जिसमें बड़ी संख्या में उत्कृष्ट सार्वजनिक संस्थानों के विकास पर जोर होगा।

– एक विश्वविद्यालय का अर्थ उच्च शिक्षा का एक बहु–विषयक संस्थान होगा जो उच्च गुणवत्ता वाले शिक्षण, अनुसंधान और सामुदायिक सहभागिता के साथ स्नातक और स्नातक कार्यक्रम प्रदान करने में सक्षम हो सके।

विश्वविद्यालय की परिभाषा उन संस्थानों के एक स्पेक्ट्रम की अनुमति देगी जो शिक्षण और अनुसंधान यानी अनुसंधान–गहन विश्वविद्यालयों पर समान जोर देते हैं। जो शिक्षण पर अधिक जोर देते हैं, लेकिन फिर भी महत्वपूर्ण शोध अर्थात शिक्षण–गहन विश्वविद्यालयों का संचालन करते हैं।

स्वायत्त डिग्री – अनुदान देने वाला कॉलेज (एसी) एक बड़े बहु–विषयक को संदर्भित करेगा जो स्नातक की डिग्री प्रदान करता है और प्राथमिक रूप से स्नातक शिक्षण पर केंद्रित है, हालांकि यह उस तक सीमित नहीं होगा।

श्रेणीबद्ध मान्यता की एक पारदर्शी प्रणाली के माध्यम से, कॉलेजों को ग्रेडेड स्वायत्तता देने के लिए एक मंच –वार तंत्र स्थापित किया जाएगा। उच्च शैक्षणिक संस्थानों को अपनी योजनाओं, कार्यों और प्रभावशीलता के आधार पर धीरे–धीरे एक श्रेणी से दूसरी श्रेणी में ले जाने की स्वायत्तता और स्वतंत्रता होगी।

उच्च शैक्षणिक संस्थान उनके विकास, सामुदायिक सहभागिता और सेवा, अभ्यास के विभिन्न क्षेत्रों में योगदान, उच्च शिक्षा प्रणाली के लिए संकाय विकास और स्कूली शिक्षा के समर्थन में अन्य उच्च शैक्षणिक संस्थानों का समर्थन करेंगे।

संस्थानों के पास ओपन डिस्टेंस लर्निंग (ओडीएल) और ऑनलाइन कार्यक्रम चलाने का विकल्प होगा, बशर्ते उन्हें ऐसा करने के लिए मान्यता प्राप्त हो।

एकल धारा उच्च शैक्षणिक संस्थानों को समय के साथ चरणबद्ध किया जाएगा, और सभी जीवंत बहु–विषयक संस्थानों या जीवंत बहु–विषयी उच्च शैक्षणिक संस्थान समूहों के भाग बनने की ओर बढ़ेंगे।

सन्दर्भ सूची :-

1. शुक्ल प्रो. रजनीश कुमार, (2020) नई शिक्षा नीति 2020 : एक सिंहावलोकन महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र।

2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020) मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार।
3. प्रो. के. एल शर्मा, दैनिक भास्कर जयपुर संस्करण, 24 अगस्त 2020।
4. रागीट प्रो. चंद्रकांत एस. (2020) विश्वविद्यालय में व्यावसायिक शिक्षा का नवीन आकलन महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र।
5. गंगवाल सुभाष, नई शिक्षा नीति 21वीं सदी की चुनौतियों का करेंगी मुकाबला, दैनिक नवज्योति, पृष्ट संख्या 4, 22 अगस्त 2020।
6. राजस्थान पत्रिका नागौर, 28 जनवरी 2020, सम्पादकीय।
7. राजस्थान पत्रिका नागौर, 26 अगस्त 2020, सम्पादकीय।
8. सिंह दुर्गेश, क्रॉनिकल मासिक पत्रिका, मई 2020
9. दुबे, प्रो. अखिलेश कुमार (2020) नई शिक्षा नीति 2020 गुणवत्तापूर्ण उच्चतर शिक्षा का विकास महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र।
10. https://www.education.gov.in/sites/upload files/mhrd/files/NEP Final English 0.pdf
11. https://en.wikipedia.org/wiki/National Education Policy 2020
12. https://mgmu.ac.in/wp-content/uploads/NEP-Indias-New-Education-Policy2020-final.pdf
13. Kumar, K. (2005). Quality of Education at the Beginning of the 21st Century: Lessons from India. Indian Educational Review 2. Draft National Education Policy 2019
14. https://www.mhrd.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/nep/NEP_Final_English.pdf referred on

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 63-66

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

किन्नर विमर्श और मानवाधिकार

दिवेश कुमार चंद्रा

पीएच.डी, शोधार्थी, हिंदी विभाग, मिजोरम विश्वविद्यालय, आइजोल, मिजोरम, 796004

भारत के प्राचीन इतिहास में किन्नरों का समाज में एक सम्मानीय स्थान रहा है और इन्हें गायन विद्या का मर्मज्ञ माना जाता था। तुलसीदास जी ने सुर किन्नर नर नाग मुनीसा के माध्यम से किन्नरों के उच्च स्तरीय अस्तित्व को रेखांकित भी किया है। हालांकि सामाज का एक बड़ा वर्ग किन्नर और हिजड़ों को पृथक–पृथक मानता है। किन्तु जब किन्नर शब्द के अर्थ पर विचार किया जाता है तो किन्नर शब्द का अर्थ है विकृत पुरुष और यह विकृति लैंगिक भी हो सकती है। जबकि कुछ विद्वान इसका अर्थ अश्वमुखी पुरुष से करते हुए किन्नरों को पुरुष और ऐसी स्त्रियों को किन्नरी कहते हैं। वर्तमान समय में किन्नर का आशय हिजड़ों से ही लिया जाता है।

मुगल काल में भी किन्नरों को विशेष सम्मानित दृष्टि से देखा जाता रहा है। वह राज्य के सलाहकार, प्रशासक और हरम के रक्षक पद पर तैनात रहते थे। इनके पास अपनी जमीनें थीं और ये सम्मान के साथ समाज में रहकर अपना जीवन व्यतीत करते थे। लेकिन अंग्रेजी हुकूमत के आगमन के बाद इनकी दशा दुर्दशा को प्राप्त हो गई। शेष भारतीयों के साथ अंग्रेजी हुकूमत की अत्यचारपूर्ण नीतियाँ तो जग जाहिर हैं ही। किन्तु किन्नरों के साथ अंग्रेजों ने कुछ अधिक ही जुल्म ढाए। चूंकि इनका जैविक अधिकार इनके रक्त से सम्बन्धित नहीं था। अतः ब्रिटिश हुकूमत के सम्पत्ति अधिकार कानून के तहत इनकी जमीनें इनसे छीनकर इन्हें बदतर जीवन जीने के लिए छोड़ दिया गया। परिणामस्वरूप कुछ किन्नर जहाँ अपराध में लिप्त हो गए तो शेष भीख मांगकर जीवनयापन करने लगे। धीरे–धीरे देश के आमजन ने भी इन्हें हिकारत की दृष्टि से देखना प्रारम्भ कर दिया और यह समुदाय समाज की मुख्य धारा से पूरी तरह पृथक हो गया। यहाँ यह भी समझना वैचित्त्यपूर्ण है कि दुनिया के अन्य जितने भी समुदाय हैं उनमें कहीं न कहीं रक्तिम सम्बन्ध होता है। परन्तु किन्नर समुदाय के किसी भी सदस्य का आपस में किसी भी प्रकार का कोई रक्तिम सम्बन्ध नहीं होता है। उसके बाद भी ये लोग भावनात्मक रूप से एक दूसरे के साथ जुड़कर एक पृथक समाज की स्थापना करके अपना जीवन व्यतीत करते हैं। बच्चे के जन्म से लेकर विवाह समारोह तक में लोगों की मंगलकामना करके बख्शीश प्राप्त करना ही इनका मुख्य पेशा है।

किन्नरों के अधिकार के लिए सरकार द्वारा पहल :–

"अंतरराष्ट्रीय अस्तर पर किन्नरों का मानवाधिकार पर आधारित कानून यौनिकता और लिंग पहचान के रूप में 26 मार्च 2007 को घोषित हुआ। पच्चीस देशों के विशेषज्ञों द्वारा विश्व पटल पर प्रतिनिधित्व के माध्यम

से यौनिकता और किन्नर के सिद्धांत को एक नया रूप दिया गया।"[1]

"वर्तमान समय में सभी देशों का कर्तव्य है कि प्रयेक इंसान को उसकी यौनिकता या लिंग की पहचान के आधार पर भेदभाव किए बिना मानवाधिकार को लागूं करें, उनकी सुरक्षा का पूरी तरह व्यवस्था हो तथा उनको आदर और सम्मान दिया जाए।"[2] अप्रैल 2014 में भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने इन्हें थर्ड जेंडर अर्थात् तृतीय लिंग के रूप में परिभाषित किया था। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा सन् 1945 में मानव अधिकारों के सन्दर्भ में जारी घोषणा पत्र में कहा गया है कि रंग, लिंग, प्रजाति, भाषा, धर्म, राजनीति, पद, जन्म, सम्पत्ति या अन्य किसी भी आधार पर किसी के भी साथ किसी भी प्रकार का कोई भेदभाव नहीं किया जायेगा। भारतीय संविधान के भाग 3 के अनुच्छेद 14 से 18 तक सभी नागरिकों को समानता का अधिकार प्राप्त है। अर्थात् जाति, धर्म, जन्म–स्थान और लिंग के आधार पर किसी के भी साथ भेदभाव करना पूर्णतया गैरकानूनी है। इस तरह राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर लिंग भेद को पूर्णतया वर्जित माना गया है। इसके बावजूद भी किन्नरों के प्रति समाज का रवैया पूरी तरह से भेदभाव वाला ही है।

"अब तक अमेरिका, ब्रिटेन, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, इटली, सिंगापुर सहित करीब 26 देशों ने किन्नरों के अधिकारों से सम्बंधित कानून बनाएँ हैं। पारित बिल के दस अध्यायों में विभाजित 58 धाराएं किन्नरों के सामाजिक समावेशन अधिकार और सुविधा, आर्थिक एवं कानूनी सहायता शिक्षा, कौशल विकास तथा हिंसा व शोषण रोकने का प्रावधान करती है। बिल में उनके लैंगिक समानता के अधिकार के साथ शिक्षा तथा नौकरियों में आरक्षण की व्यवस्था है। ट्रांसजेंडर विधेयक (सुरक्षा और अधिकार) 2016 से ट्रांसजेंडर समुदाय को सबसे बड़ी दिक्कत इस बात से है, कि यह शिक्षा और रोजगार में किसी प्रकार का विशेष आरक्षण दिए बिना ही उनके भीख मांगने को रोक लगाते हुए उसे अपराधी की श्रेणी में डाल देता है।"[3] वहीं नए विधेयक के अनुसार ट्रांस व्यक्तियों को एक सर्टिफिकेट लेना पड़ेगा। ये सर्टिफिकेट डी. एम. को हर व्यक्ति के लिए रेकमेंडेशन जारी करेगी इसके इलावा नए विधेयक से जुड़ी एक दूसरी समस्या जुर्म होने पर सजा को लेकर है। तेलंगाना हिजड़ा समिति से जुड़ी मीरा के अनुसार अगर कोई इंसान किसी ट्रांस जेंडर से यौन दुष्कर्म करता है तो उसको इस जुर्म के लिए केवल दो साल की सजा का प्रावधान है। जबकि अगर वही इंसान किसी महिला से दुष्कर्म करे तो इसके लिए वह सात साल तक दोषी होता है। ध्यान से देखने पर यह विधेयक स्ष्ट तौर पर हम और वो की मानसिकता पर आधारित है।

मानवाधिकार से तात्पर्य किसी भी मनुष्य का जीवन, उसकी जनसंख्या, समानता तथा सम्मान का अधिकार मानवाधिकार है।" 'द ट्वेट्व आर्टिकल्स ऑफ दे ब्लैक फॉर टेरर' (1525) को यूरोप के मानवाधिकार का प्रथम दस्तावेज माना जाता है। वैसे 1215 ईसवी के मैग्नाकार्टा को यह सम्मान जाता है। जर्मनी के किसान द्वारा 'पिजेंटस वार' सोवियत संघ के समक्ष उठायी गयी मांगों का हिस्सा है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने 10 दिसम्बर, 1948 ईसवी के दिन 'मानवाधिकार की सार्वभौम' घोषणा की है।"[4] फलतः इसी दिन को 'मानवाधिकार दिवस' के रूप में में विश्व भर में मनाया जाता है। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा मानवाधिकार की घोषणा को भारतीय संविधान ने मूल अधिकार के रूप में स्वीकारा है।

किन्नरों की समस्याएं :–

किन्नर समाज लंबे समय से सामाजिक बहिष्कार को झेल रहे हैं। इसके कारण वे विभिन्न प्रकार के

शोषण के शिकार होते हैं, हिंसक बर्ताव का सामना करते हैं शिक्षा, स्वास्थ्य एवं चिकित्सा संबंधी मूलभूत सेवा से वंचित रहते हैं। आय का कोई स्थायी साधन न होने के कारण ये भीख मांगने या वेश्यावृत्ति जैसे कार्य में संलग्न होने को बाध्य होते हैं। सही चिकित्सा सेवा न मिलने के कारण ये कई गंभीर बीमारियों से पीड़ित हो जाते हैं। तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक व आन्ध्र प्रदेश में किन्नरों पर हुए एक अध्ययन रिपोर्ट से पता चलता है कि वहां एच०आई०वी० पीड़ित कुल जनसंख्या में 53 फीसदी किन्नर समुदाय के सदस्य हैं।"[5]

"किन्नर समुदाय समाज में घोर उपेक्षित हैं, शायद ही कोई समुदाय होगा जो किन्नरों के समान समाज की भेदभावसे पीडित होगा। श्रुति अय्यर ने अपने अध्ययन में पाया कि कई बार इनके प्रति भेदभाव की दर इतनी उच्च होती है कि ये आत्महत्या तक करने को विवश हो जाते हैं।"[6] "श्रीयोसी सिन्हा ने अपने अध्ययन में पाया कि कोलकाता में किन्नर समुदाय की स्थिति अत्यंत दयनीय है। उन्होंने पाया कि जेल से निकले कैदी को तो समाज की मुख्यधारा में शामिल होने के लिए सभी अधिकार दे दिये जाते हैं किंतु किन्नर समुदाय को कोई भी अधिकार प्राप्त नहीं होता। परिणामस्वरूप ये भिक्षाटन या वेश्यावृत्ति को बाध्य हो जाते हैं।"[7]

पटनायक एवं मोहंती ने भी अपने अध्ययन में पाया कि विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना कर रहे किन्नर समुदाय उपेक्षित समूहों की श्रेणी में सबसे निचले पायदान पर हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार या सामाजिक स्वीकृति जैसे किसी भी क्षेत्र की बात करें किन्नर समुदाय सर्वाधिक उपेक्षित व भेदभाव के शिकार हैं। अपने अध्ययन के निष्कर्ष में इस चात का उल्लेख करते हैं कि किन्नर चाहकर भी अकादमिक शिक्षा नहीं प्राप्त कर पाते। विद्यालय प्रबंधन इन्हें विद्यालय में नामांकन देने के प्रति भारी भेदभाव बरतते हैं।[8] जनगणना रिपार्ट 2011 के अनुसार किन्नरों की साक्षरता दर मात्र 46 फीसदी है। शिक्षण संस्थानों में नामांकन होने के बावजूद उनके प्रति वहां होने वाले उत्पीड़न व उपेक्षा के कारण विद्यालय परित्याग कर देते हैं।

सामाजिक–सांस्कृतिक, आर्थिक व शैक्षिक दृष्टिकोण से ही नहीं वरन ये राजनैतिक रूप से घोर उपेक्षित रहे हैं। "वोट देने के अधिकार प्राप्त करने के लिए इन्हें लंबी लड़ाई लड़नी पड़ी तब जाकर 1994 में इन्हें मताधिकार का अधिकार प्राप्त हुआ। भारत जैसे लोकतान्त्रिक देश जहाँ 18 वर्ष की उम्र पूरा कर लेने वाला प्रत्येक नागरिक मतदान के अधिकारी हो जाता है वहां किन्नरों के सरकार चुनने की प्रक्रिया से पूर्णतः दूर रखा जाना कहां तक न्यायोचित है? महाराष्ट्र में सर्वप्रथम इसे चुनौती दी गयी और किन्नरों के मतदान का अधिकार न देने को उनके मानवाधिकारों का उल्लंघन बताया गया।''[9]

1994 के बाद से किन्नर लगातार अपने इस अधिकार का प्रयोग कर राजनैतिक क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहे हैं। देश की राष्ट्रीय पार्टियों में किन्नरों को सम्मिलित करने की पहल किन्नर समुदाय के लिए सुखद व उज्ज्वल भविष्य के आरंभ के रूप में देखा जा सकता है। भ्रष्टाचारी नेताओं से त्रस्त जनता भी अब एक विकल्प के तौर पर किन्नरों को मौका देने लगे है। मध्य प्रदेश से पहली किन्नर विधायक शबनम मौसी ने किन्नरों की समस्याओं को मुखर होकर उठाया। सरकार के स्तर पर भी किन्नरों के हित में अनेक कानून बनाये गये। हालांकि इन कानून का असर अभी दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है, किन्तु इतना अवश्य विश्वास किया जाना चाहिए कि इन कानूनों का सकारात्मक असर अवश्य देखने को मिलेगा। इसी कड़ी में अगस्त 2019 में लोकसभा में किन्नर अधिकार संरक्षण विधेयक पारित कर शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य संबंधी और सार्वजनिक रूप से उपलब्ध अन्य सुविधाओं तथा अवसरों की दृष्टि से किन्नरों के साथ किसी भी प्रकार के भेदभाव पर रोक लगाने का प्रावधान

किया गया है। चर्चा के दौरान सभी ने एक स्वर में स्वीकार किया कि किन्नरों के प्रति समाज में मौजूद पूर्वाग्रह की भावना समाप्त होनी चाहिए।

अभी पिछले साल 16 अप्रैल को सुप्रीम कोर्ट में न्यायमूर्ति के. एस. राधाकृष्णन और न्यायमूर्ति ए. के. सीकरी की खंडपीठ ने केंद्र और राज्य सरकारों को ट्रांसजेंडरों (आम भाषा में जिन्हें हिजड़ा या 'किन्नर' कहते हैं) के साथ सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्ग के नागरिकों के तौर पर व्यवहार करने और उन्हें शैक्षणिक संस्थाओं में प्रवेश और सरकारी सेवाओं में 'ओबीसी' की तरह आरक्षण उपलब्धा कराने को कहा। एक मोटे अनुमान के अनुसार, देश में ट्रांसजेंडरों की संख्या लगभग बीस लाख है। एक ही महीने के अंदर एनसीबीसी ने इसके लिए सिफारिश भी कर दी। शिक्षा के अधिकार कानून के अंतर्गत यह सुविधा ऐसे बच्चों को दिल्ली के स्कूलों में अक्टूबर में दे दी गई। मध्य प्रदेश सरकार ने अगस्त में केंद्रीय सामाजिक न्याय मंत्रालय को सुझाव दिया कि 'श्रीमती कुमारी' या 'श्री' की तरह ऐसे लोगों को अंग्रेजी में 'टीजीआर और हिंदी में 'कि' लिखा– कहा जाना चाहिए। ये प्रयास तो हो रहे हैं लेकिन इस बारे में कोर्ट ने भी कोई सुझाव या निर्देश नहीं दिया है कि सरकार उन्हें धर्म या जाति से बाहर किस श्रेणी में रखकर आरक्षण दे। चूंकि यह मसला सामान्य जातिगत आरक्षण से अलग है और आने वाले दिनों में इस तरह के और मामले आ सकते हैं, इसलिए एक वृहत्तर गाइडलाइन बनाने की जरूरत होगी। लेकिन यह आसान नहीं लगता।

किन्नर समुदाय विभिन्न कलात्मक प्रतिभाओं के साथ ही साथ शैक्षिक गुणों से भी संपन्न है, इसके बावजूद ये अपनी पहचान और समाज की मुख्यधारा में शामिल होने के लिए तरस रहा है। अगर हम इनके संसार में जाकर कुछ खोजबीन करने का प्रयास करें तो मालूम पड़ेगा कि ये हर प्रकार की प्रतिभाओं से कितने संपन्न हैं। निश्चित रूप से इनकी प्रतिभाओं का उपयोग समाज और देश हित में लिया जाना चाहिए।

संदर्भ :–

1. किन्नर–विमर्श : दशा एवं दिशा, विनय कुमार पाठक, पृ. 40
2. किन्नर–विमर्श : दशा एवं दिशा, विनय कुमार पाठक, पृ. 40
3. किन्नर–विमर्श : दशा एवं दिशा, विनय कुमार पाठक, पृ. 41
4. किन्नर–विमर्श : दशा एवं दिशा, विनय कुमार पाठक, पृ. 41
5. Chakrapani. Dr. Venkatesan (2010) Hijras transgender Women in India : HIV, Human Rights and Social Exclusion
6. Iyer, Shruti (2013) The third Gender and the Indian Law-A Brief History, https:// blogs.ipleader.in-criminallaw
7. Sinha, Sreoshi (2016) Social Exclusion of Transgender in the Civil Society: A case study of the status of the Transgender in Kolkata. International Journal of Humanities & Social Science Studies, Vol-3, Issues-2. Page No. 178-190
8. Patnaik, 1. Mohanty, Dr. Aliva (2014) Social Exclusion: A Challenge for status of third gender people of.
9. Orissa, International Journal of Scientific Research, Vol-03, Issue 11, Page No. 477-479

दूरभाष– 9506764716

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 67-70

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

गन्धदूतम् में पर्यावरण संबंधी अवधारणा

डॉ. दिलारा रिज़वी

असिस्टेंट प्रोफेसर, (वोमेन्स कॉलेज), ए0एम0यू, अलीगढ़।

सारांश :-

डॉ. परमानन्द शास्त्री का अर्वाचीन संस्कृत साहित्य में महान योगदान है। इन्होंने एक नवीन दिशा प्रदान करके संस्कृत–साहित्य को समृद्ध बनाया है। संस्कृत साहित्य की अनेक विधाओं पर इन्होंने रचनाएँ लिखी हैं। यह काव्य प्रतिभा के धनी थे। अतिसूक्ष्म विशय भी इनसे अछूता नहीं रहा। इन्होंने पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक आदि पक्षों पर चिंतन किया है। वर्तमान समय में ग्लोबल वार्मिंग एवं पर्यावरण प्रदूषण जैसी ज्वलन्त समस्याएँ हैं जिससे न केवल भारतवर्ष अपितु सम्पूर्ण विश्व में ही चिन्ता व्याप्त है। शास्त्रीजी ने अपनी रचना के माध्यम से पर्यावरण–प्रदूशण सम्बन्धी समस्या के प्रति के जन चेतना को जाग्रत करने का प्रयास किया है।

मुख्य शब्द – पर्यावरण, हतोत्साहित, हृदयग्राही, भौतिक, दुष्परिणाम।

संस्कृत–साहित्य भारत का राष्ट्रीय गौरव है। इसका इतिहास बहुत समृद्धशाली है जिसने न केवल भारत वर्श अपितु विश्व के अनेकों देशों को किसी न किसी प्रकार से प्रभावित किया ही है। भारतीय आचार–विचार धार्मिक भावनाओं विश्वासों एवं मान्यताओं का यह दर्पण ही है। इसमें भौतिकता से लेकर आध्यात्म सम्बन्धी समस्त विषयों पर व्यापक रूप से विवेचन हुआ है तथा मानव सम्बन्धी प्रत्येक समस्या का समाधान चाहे तार्किक हो अथवा वैज्ञानिक, संस्कृत साहित्य में उपलब्ध है।

वर्तमान समय में पर्यावरण प्रदूषण एक ज्वलन्त समस्या है जिसके लिए मनुष्य स्वयं ही उत्तरदायी है। वैसे तो वह सौ वर्षों तक जीवित रहना चाहता है जब पर्यावरण शुद्ध रहे, और उसके समस्त शारीरिक अंग स्वस्थ हों–

वाङ्म असन् नसोः प्राणः चक्षुरक्ष्णोः श्रोत्रंकर्णयोः।
अपलिता केशा अशोणा दन्ता बहु बाहवोर्बलम्।।[1]

अर्थात् मुख में वाणी, नासिका में प्राण, नेत्रों में दर्शन शक्ति, कर्णेन्द्रिय में सुनने की क्षमता हो, केश न झड़े न ही श्वेत हों, दन्त स्वच्छ तथा भुजाओं में बल हो।

आज के भौतिक युग में मनुष्य में वृक्षों की अंधाधुन्ध कटाई, पृथ्वी की खुदाई, फैक्ट्रियों के धुएँ, वाहन तथा जलस्रोतों को पाटकर असंतुलन सा कर दिया है। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में पर्यावरण को शुद्ध रखने का प्रावधान था। पर्यावरण प्रदूषण को रोकने के लिए अग्निहोत्र क्रिया की जाती थी। ऋतुओं की संधियों में यज्ञ करने का प्रावधान था जिससे ऋतु परिवर्तन के समय कीटाणुओं को नष्ट किया जा सके–

भैषज्य यज्ञा वा एते, तस्मादृतु सन्धिषु प्रयुज्यन्ते।
ऋतुसन्धिषु व्याधिर्जायते।।[2]

वृक्षों के महत्व को दर्शाते हुए कहा गया है कि वनस्पति को समूल नष्ट नहीं करना चाहिए–

पुष्पं पुष्पं विचिन्वीत मूलच्छेदं न कारयेत्।[3]

मनुष्य का कल्याण वृक्षों के कल्याण में है। इसलिए उनको केवल ऊपर से ही काटना चाहिए। वृक्ष लगाने भी चाहिए तथा उनकी रक्षा भी करनी चाहिए सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य इस प्रकार के उद्धरणों से भरा पड़ा है। महाकवि कालिदास तो पर्यावरण प्रेमी ही कहे जाते हैं। शकुन्तला तो वृक्षों को सगा भाई एवं लताओं को भगिनी समान समझती थी। उनको जल दिये बिना वह जल तक नहीं पीती थी–

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्।।[4]

भारवि भी इसके समर्थक हैं। उनके अनुसार प्रजा का कल्याण तभी सम्भव है जब सिंचाई के साधन, कुएँ, नहरें, तालाब आदि की सुव्यवस्था हो। परिणामस्वरूप प्रकृति पुष्पित एवं पल्लवित होगी–

सुखेन लभ्या दधतः कृशीवलैरकृश्टपच्या इव सस्यसमपदः।
वितन्वति क्षेममदेवमातृकाश्चिराय तस्मिन्कुरव चकासति।।[5]

इनके अतिरिक्त भी अनेकों उद्धरण संस्कृत–साहित्य में प्राचीनकाल से आज तक उपलब्ध होते हैं। पर्यावरण संरक्षण के समर्थक आधुनिककाल के कवि डॉ. परमानन्द शास्त्री भी हैं। इनका जन्म 1926 ई0 को मेरठ (यू.पी.) के अनवरपुर ग्राम में हुआ था।[6] आप अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के संस्कृत विभागाध्यक्ष पद को सुशोभित कर चुके हैं।[7] संस्कृत–साहित्य की अनेकों विधाओं पर आपने रचनाओं का सृजन किया। आपकी उत्कृष्ट प्रतिभा के लिए आपको 1985 में कालिदास पुरुस्कार से भी सम्मानित किया गया था।[8]

आपने अपनी रचनाओं में मानव जीवन से सम्बन्धित अनेकों समस्याओं का विश्लेषण किया और अपने विचार रखे। शास्त्री जी ने दूतकाव्य की परम्परा का निर्वाह करते हुए गन्धदूतम् लिखा जिसका प्रकाशन 1977 ई. में प्रज्ञा प्रकाशन अलीगढ़ द्वारा किया गया। यह दो भागों पूर्वमेघ तथा उत्तरमेघ में विभक्त है। इसमें अनेकों समस्याओं जैसे भ्रष्ट राजनीति, नशा जुआ, गरीबी, जलवायु, प्रदूषण, लोभ आदि का वर्णन किया है। आप वर्तमान समस्याओं के आलोचक कवि हैं आपके काव्य का विशय आधुनिक परिस्थितियों का अध्ययन करके उन्हें समाज के सामने उजागर करना है। प्रस्तुत शोध पत्र में परमानंद शास्त्री जी के द्वारा प्रदूषित वातावरण हेतु चिन्तन को दर्शाने प्रयास किया गया है।

गन्धदूतम् के आरमभ में ही कवि ने दुःखी प्रियतम के मन को सांत्वना देने के लिए कमलपुष्प का उल्लेख किया है जो अपनी सुगन्ध से किसी के भी मन को प्रसन्न कर सकता था–

खिन्नः स्वस्मिन् भृशमसदृशं कर्तु कामो ददर्श
यातस्तीरे कमलममलं पुष्करिण्याः स एकम्।
मन्दं मन्दं मधुरसभरं तृप्यदन्तः सुगन्धम्

मोदेनान्धीकृतमधुकरं दिक्षु वर्षत्परागम्।।[9]

जीवन से निराश एवं हतोत्साहित मनुष्य जो आत्महत्या को उतारू था, शास्त्रीजी ने प्राकृतिक सौन्दर्य के माध्यम से उसे पुनः जीवन की ओर प्रेरित किया–

कान्तामोदं ललितविशदं सोऽनवद्य विकासं
दृष्ट्वा सद्यो वितरितमुदः पङ्कजातस्य तस्य।
चक्र कान्तः पुनरपि शुचौ जीविते जीवितेच्छाम्
श्रेयः सूते सपदि घटना कापि कस्याप्यकस्मात्।।[10]

विधाता के उत्पत्ति स्थान, फूलों के राजा कमल एवं लक्ष्मी के प्रसिद्ध धाम कमल की गंध द्वारा प्रिया को संदेश भिजवाने का अनूठा प्रयास शास्त्री जी ने किया है जो बड़ा ही हृदयग्राही है–

धातुर्योने! विदितकमलासद्म! पुष्पेश! पद्म!
स्वातन्त्र्यस्य प्रथमसमरे क्रान्तिकान्त प्रतीक।।
आयुष्मन्तं विपदि पतितः सौरभं त्वां प्रयाचे
विश्वामित्रो दशरथनृपं रामसौमित्रियुग्मम्।।[11]

सागर, मेघ, सरोवर स्वयं उपभोग नहीं करते। इनमें परोपकार की भावना निहित है–

सिन्धुमेघ सर इव सखे ! नात्मभूतिं प्रभुङ क्षे
पारायँकव्रतिनमिह तेऽवैमि वंशं प्रसिद्धम्।
मन्येऽनुज्ञां तव वितरितां धीरघूतेन मूर्ध्ना
सन्देशं तत्परिमलमहं वच्मि वाचामतीतम्।।[12]

समस्त प्राकृतिक सम्पदा मनुष्य के उपयोग हेतु प्रकृति द्वारा निःशुल्क दी गयी है। नदियाँ, पर्वत, औषधियाँ, वृक्ष फल मानव के हितार्थ हैं, परन्तु मनुष्य ने भौतिकता से प्रभावित होकर इनको असंतुलित कर दिया है। परिणामस्वरूप मौसम परिवर्तित हो रहा है जिसका प्रभाव हर ओर दिखायी देता है। व्यक्ति स्वार्थी भी हो गया है। जिसका भयावह परिणाम मनुश्य को ही सहन करना है। इसलिए शास्त्री जी पर्यावरण प्रदूषण के प्रति सजग रहने को कहते हैं। उनके अनुसार फरीदाबाद के औद्योगिक कारखानों से निकलते हुए धुएँ ने स्थिति को और भयावह बना दिया है–

गव्यूतीनां प्रथमदशकं वर्त्म तीर्त्वा सुकर्मन्!
आवादाख्यं व्रजसि नगरं त्वं फरीदेतिपूर्वम्।
प्रोद्योगीया विविधविषया यत्र संयन्त्रशालाः
नित्योद्गीवा अजगरनिभं धूमजालं वमन्ति।।[13]

इसलिए वह गन्धक और, कार्बन से युक्त वायु को छोड़कर आगे निकल जाने का परामर्श देते हैं–

उत्प्रेक्षे त्वां पवनवहन! प्रायशो धूम्रदेशान्
हित्वा यान्तं कथमपि पथा स्वास्थ्यहेतोस्तथापि।
न त्वां धत्ते गगनपतितं गन्धकं कार्बनं च
यावत्तावत् श्रमिकजनतादत्ततृप्तिः प्रयाहि।।[14]

उद्योगों से व्यक्ति को भौतिक वस्तुएँ तो प्राप्त होती है परन्तु इसके धुएँ से ऑक्सीजन की कमी का सामना भी करना पड़ता है। इसके प्रति शास्त्री जी सचेत हैं। ध्वनि प्रदूषण के विषय में कवि कहते हैं कि कोलाहल युक्त कानपुर नगर वृद्धों के लिए असहनीय है।[15] उत्तर प्रदेश में उद्योगों की बढ़ती हुई सम्पत्ति वाली महिमाशाली नगरी लक्ष्मी और अलक्ष्मी का वितरण कर रही है–

घ्द्योउद्योनां महितनगरी योत्तरीयप्रदेशे
उद्यत्संपद् वितरतितरां सौम्य! लक्ष्मीमलक्ष्मीम्।
यत्संगीतस्वरमुखरिता एकतो हर्म्यमाला
जीर्णाः क्षुद्राः शिशुविरुदिताश्चान्यतः पर्णशालाः।।[16]

शास्त्री जी कानपुर नगरी के बढ़ते प्रदूषण के कारण चिंतित प्रतीत होते हैं। वहाँ गंगा के निर्मल एवं पवित्र जल को भी कीचड़युक्त तथा दुर्गन्धपूर्ण बना दिया गया है।[17] उनके अनुसार उपवन की वायु भी शीतल स्पर्श प्रदान करने वाली होती है। अतः उन्होंने गन्ध को पुष्पवाटिका में विहार के करने के पश्चात् यमुना से सिंचित प्रदेश का विचरण करने को कहा है। उनके अनुसार गंगा नदी का जल संतापों को दूर करने वाला होता है।

निष्कर्ष :–

भारतीय संस्कृति 'वसुधैव कुटुम्बकम्' से प्रेरित है। इसीलिए यहाँ परोपकार सदैव सर्वोपरि रहा है। सम्भवतः यही कारण है कि शास्त्री जी भी अपनी रचना के माध्यम से जनमानस को सावधान करने का प्रयास करते हैं। एक ओर उन्होंने प्राकृतिक सौन्दर्य को दर्शाया तो दूसरी ओर भौतिकता का दुष्परिणाम भी उजागर कर दिया। अतः निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि अभी तक इस ब्रह्माण्ड में पृथ्वी के अतिरिक्त जीवन की सम्भावना नहीं है। विधाता द्वारा निर्मित प्रकृति का ऐसा रूप अन्यत्र कहीं सम्भव ही नहीं। अतः अपनी गौरवमयी संस्कृति से प्रेरणा लेकर इसके संरक्षण एवं संवर्धन की ओर प्रत्येक व्यक्ति को सजग होकर प्रयास करने की आवश्यकता है। गन्धदूतम् के माध्यम से शास्त्री जी ने जन–मानस को सक्रिय होकर जागृत करने का प्रयास किया है।

संदर्भ :–

1. अथर्ववेद, 1, 89.8
2. शुक्ल यजुर्वेद, 22.22
3. विदुरनीति, 2.18
4. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 4.9
5. किरातार्जुनीयम्, 1.17
6. संस्कृत वाङ्मय का वृहद इतिहास, खण्ड–8, पृ0 514
7. परमानन्दशास्त्रिरचनावलिः, परिचय
8. संस्कृत वाङ्मय का वृहद इतिहास, खण्ड–8, पृ0 66
9. गन्धदूतम्, पूर्वगंध, पृ0 5
10. वही, 6
11. वही, 8
12. वही, 9
13. वही, 12
14. वही, 14
15. वही, 46
16. वही, 56
17. वही, 64

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 71-78

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

An Analytical Study of Women Education in India

Dr. Bhavna Devi

Assistant Professor, Janardan Rai Nagar Vidyapeeth Deemed to be University, Udaipur (Raj)

Abstract :-

Women education in India has also been a major concern of both the government and civil society as educated women can play a very important role in the development of the country. The present study has examined the current educational status and discusses some issues and challenges of women in India. Education is target of women empowerment because it enables them to responds to the challenges, to face their traditional role and change their life. Education is essential for every human being. When girls are not educated, everyone suffers its results. Female education is as important as food, cloth and shelter. The study concludes that there is very low enrollment ratio of women education. Some suggestions are offered towards improving women's access to education.

Keywords :- Women education, Development, Challenges and Empowerment.

Introduction :-

Women are the main bearers and carriers of the progress of the nation. Advances around the world including in India, depend on women's education. Their social, political and economic status is less than that of men. The Indian Constitution speaks of equal rights but mentions some special principles for women. Since independence, various health and educational programs for women have been taken up in various five year plans. Article 86 of the Constitution provides free and compulsory education for children between the ages of 6 and 14. Attempts have been made to improve the illiteracy level of the Indian population in the post -independence period. Education is a milestone of women empowerment because it enables them to respond to challenges, to confront their traditional role and change their life. Education is a fundamental right of citizens and nations of any country. Special step has been taken to remove constraints and new opportunities becoming available for them. Inspite all these development measures, girls are still backward in many cases. In this context, a study is undertaken entitled as the "A study on Relevance of Women's Education".

Review of Literature :-

A review of literature surveys books, scholarly articles, and any other sources relevant to a

particular issue, area of research, or theory, and by so doing, provides a description, summary, and critical evaluation of these works in relation to the research problem being investigated. Literature reviews are designed to provide an overview of sources you have explored while researching a particular topic and to demonstrate to your readers how your research fits within a larger field of study.

Allender et. al.,(2021) in their paper studied idea of 'feminity' as a social, racial and class of construct .This study explores how notions of 'feminity' change across time, place and within individual lives.

Srivatsan (2020) in his study discussed on women's education. This study revealed that a child widow refused remarriage, fought for an education and became an educationist.

Jha et. al. (2019) in their paper studied the impact of women's empowerment in rural area. The study is based on social changes in Bihar. It was found that community can explain more variation in the empowerment of individual women.

Ghara (2016) studied on "Status of Indian Women in Higher Education". The study was taken a look on women participation through women higher education institutes, women enrolment as compared with population. The participation in terms of distribution of institutes and enrolment has been studied for the years 2011-2016. The trend has been found as increasing but slow. The investigator has used different type articles, reports, research papers, books, official websites, and online materials to conduct this study. The paper concludes that girls' education is very poor condition in elementary and secondary stage than the higher education. At elementary and secondary level girls' enrolment rate has been decreased from 2012 to 2015, but girls' gross enrolment ratio has been increased at higher education level from 2012 to 2015. Parental attitude, lack of infrastructure, lack of security, superstations related to girls, socio-economic condition of parents are the major challenges for promoting girls' education in India. This paper suggests that higher authorities, community members, NGOs and all citizens of India must have to take responsibility to eradicate different barriers related to girls' education from our society.

Bhat (2015) studied on "Role of Education in the Empowerment of Women in India". The study was discussed that, Women education in India has a major preoccupation of both the government and civil society as educated women can play a very important role in the development of the country. Education is milestone of women empowerment because it enables them to responds to the challenges, to confront their traditional role and change their life. So that we can't neglect the importance of

education in reference to women empowerment and India poised to becoming superpower in recent years. Education of women is the most powerful tool to change the position in society. Women education in India has been a need of the hour, as education is a foundation stone for the empowerment of woman. Education also brings a reduction in inequalities and functions as a means of improving their status within the family and develops the concept of participation.

Gul & Dr. Khan (2015), which has tried to elicit stockholders perception regarding girls' education, its factors and challenges in South Kashmir. In the present research study, obtained findings revealed the fact that situation of girls' education in South Kashmir is inadequate. The result clearly indicated irregular attendance, inappropriate curriculum, boring teaching methods, additional burden of work at home, poorly developed or maintained buildings or inadequate basic facilities at school, shortage of teachers, and lack of motivated teachers were the causes of girl illiteracy. Girl's education can be improved by raising additional resources and directing them to where the need is greatest. It requires adequate funding, well trained teachers, a school environment that promotes girls' learning, and a social environment that values educated girls and women, removal of school fees, free textbooks and school uniforms, construction of schools closer to communities to lower transport costs and travel time.

Ansari & Nasreen (2014) conducted a study on "Status of Female Literacy in Various Districts of Uttar Pradesh". The present study was conducted to explore the status of female literacy in various districts of Uttar Pradesh. The female literacy rate of all the districts have been categorized under five heads: 1. Very high, 2. High, 3. Average, 4.Low and 5. Very low. Female literacy rates were plotted on graph through monochromatic colour scheme to give a clear picture and understanding of female literacy. A very high regional variation with a declining trend regarding the female literacy was observed throughout the study area.

Choudhary (2011) conducted a study on women administration in higher education system of India. It was a case study of eleven women Vice chancellors of Indian universities.

Peacock (2009) was published an essay on "The "Education" of the Indian Woman against the Backdrop of the Education of the European Woman in the Nineteenth-Century" by the Forum on Public Policy. The essay was discussed the role and education of the women of India, with special reference to the women of Bengal during the nineteenth-century and a comparison is made between the education of the Indian woman and the education of the European woman during this era. The

education of the Indian woman is also referenced against the backdrop of the nationalist movement in India against imperialist rule and its effects on the women of the country.

Singh (2008) was published a paper on "Higher Education for Women in India—Choices and Challenges" by the Forum on Public Policy. The paper was analysed gender disparity in education evident across the socio-economic spectrum in India. Concern for girls? education in last few years has lead to a considerable expansion of access at the primary level. But a great number of girls especially in the rural areas drop out before they reach secondary or higher stages of education. Many enter in to matrimony and become young mothers before having the opportunity to realize their full potential. Removed from formal schools at the onset of puberty, those who are not married, take on household responsibilities. The ones who are able to resist social and pedagogic pressures to drop out and reach the level of college or university, take studies seriously as they know this privilege will vanish after matrimony. Many are not even able to peruse their goals of further education or choice of vocation. There is a need to develop gender –specific pedagogy and provide flexibility in the system of education, in which women could fulfill their aspirations, overcoming their domestic obligations. Higher education should prepare them to face a world of opportunities and challenges.

Objectives :

The present study was undertaken to achieve the following objectives :

Objectives :

(1) To study the current status of female literacy India.

(2) To analyze education quality in India.

(3) To find out diverse challenges that stand against the development of women education.

Research Questions :

Following research questions were made for this study.

1. What is the current status of women education in India?
2. How is the women education quality in India?
3. Which are the challenges of women education?

Key Definitions :

Women Education

Women education is the branch of education. Positive efforts can be made by government to increase literacy rate in women. In this research work researcher tries to know the ratio of primary

education of women.

Development :

Development is a process that creates growth, progress, positive change or the addition of physical, economic, environmental, social and demographic components.

Challenges :

Challenges are something that serving to obstruct, or preventing, access, or progress. Something that limits a quality or accomplishment or the act of restraining or the condition of being limited or cause delay.

Empowerment :

The empowerment of a individual or group of people is the process of giving them power and status in a particular situation.

Methodology :

This study is basically descriptive and analytical in nature. In this research an attempt has been made to know the present position of Women Education and also point out various issues and challenges for Women Education. It has been done on the basis of the secondary sources of data like various census survey of India and online data base of India census statistics, books, research journal, articles and different websites etc. Collected data was analyzed qualitatively.

SIGNIFICANCE OF WOMEN EDUCATION IN INDIA

Gender orientation discrepancy in education is extraordinary. In India young girls were less inclined to get to school, to stay in school or to complete in education. Be that as it might; now the situation is changing and families understand the importance of education. Women education in India assumes an essential part in the general development of the nation. It not just makes a difference in the advancement of half of the human capital, however in enhancing the standard of living. Trained women not just have a affinity to advance training of their young women children; yet furthermore can give better direction to every one of their youngsters and their future. Also trained women can likewise help in the lessening of neediness and unemployment by supporting their families' entirely.

FINDINGS OF THE STUDY :

1. There are an estimated 33.3 million Indians enrolled in higher education courses in India, according to the Human resource development of ministry's All India Survey on Higher education report for 2015. On these, 17.9 million are boys and 15.4 million are girls as of 2014-2015. In the

British period till independence only 2-6 percent of females' populations were literate and the percentages were proceeding up to 15.3 percent in 1961 and 28.5% in 1981. The 2001 census report indicates the women literacy rates were crossed 50 percent and by 2011 it stood at 65.46 percent. The growth of female's literacy rate in rural area is very slow. According to the report of national statistical office (NSO) conducted by a nationwide study on 'Household Social Consumption: Education in India from July 2017 to June 2018 and it gives an inclusive analysis of female literacy rate for every state of India, as per the report, in India's the women literacy rate is 70.3 percent, while the male literacy rate is estimated at 84.7 percent.

2. In this area women's equality has shown a significant improvement as a result of ALP (Adult Literacy Programs) is the area of enrollment of males and females in the schools. As a result of participation of females in literacy campaigns, the gender gap in education levels is gradually getting reduced. According to the National Family Health Survey (NFHS-5) and National Statistical Office: NSO (2021 and 2022). The literacy rate is 77.70 percent, with literate males at 84.70% and literate females at 70.30 percent. Women appear to have a low literacy rate regardless of the high percentage of men's that are literate.

3. There are various challenges that stand against the development of women education. Geographical, socio-cultural, health, economic, religious, legal, political/administrative, and educational factors, and initiatives by governments, non-governmental organizations, and other agencies to address the educational disadvantage of females. Gender discrimination still persists in India and lot more needs to be done in the field of women's education in India. The gap in the male-female literacy rate is just a simple indicator, while the male literary rate is more than the female. The women were considering only house wife and better to be live in the house (Bhat, 2015 some of the barriers to women's education are sociological, rooted in gender stereotyping and gender inequality and others are driven by economic concerns and constraints. A consequence of gender profiling and stereotyping is that women tend to participate more in programmes that relate to their domestic role.

Need and Importance of Women's Education :

The require and significance of women's education in India based on the views of the Indian educationist, philosophers and political leaders :

1. The cooperation of women is necessary for the progress and prosperity of the country.
2. An educated woman produces an educated family and an educated society.

3. An educated woman makes the home happy and healthy.
4. An educated woman can mitigate the economic difficulties of the family.
5. An educated woman can help in removing social evils, and save the society from old beliefs and customs which adversely affect the progress of society.

SUGGESTIONS OF THE STUDY

1. The most prominently need ought to be given to the women's education, which is the grassroots problem consequently, training for women must be given careful consideration.
2. Mindfulness programs should be sorted out for making mindfulness among women predominantly having a place with weaker segments about their rights.
3. Women ought to be permitted to work and ought to be sufficiently given security and support to work. They ought to be given legitimate wages and work at standard with men so that their status can be hoisted in the general public.
4. Strict implementation of Programs and Acts ought to be there to control the mal-hones common in the general public.
5. Non-formal and informal education system should be increased for females.
6. Encourage to take up employment and income generative activities.

Conclusion :

Researcher attempts to find out the current position of women education in India. Researcher found that there is very low enrollment ratio of women education. Consequently government and society should make proper plan and policy for up liftmen of this situation. Researcher hopes that this study will helpful to government, Society and Teachers. It is critical to note that the attitude of people towards women's education will go a long way in explaining the extent to which the people want their nation to develop. Like the saying goes that to educate a female is to educate the community as total. Education is considered as a key instrument for the women empowerment. It changes their lifestyle, improves their chances of employment, facilitates their participation in public life and also increased their status in the society. Even though considerable progress has been made with regard to literacy and education, in general structure still remains unfavorable to female.

References :-

1. Upadhyaya., & Heena,R.(2010).Financing of higher education a case study of the M.S. University of Baroda.

2. Choudhary,R.(2011).Case Studies of Women administrators: in Higher Education System of India.
3. Jha,J.,Ghatak,N.,Menon,N.,Dutta,P.,& Mahendiram,S.(2019).Women's Education and Empowerment in Rural India.
4. Srivatsan,A.,& Srivatsan ,A.(2020).Shining Light in Women's education.
5. Tim,A.,& Stephanie,S.(2021).Femininity and the History of Women's Education.
6. JETlR1711151.pdf.
7. Ansari, S.N., & Nasreen, N. (2014). Status of Female Literacy in Various Districts of Uttar Pradesh. International Journal of Education & Literacy Studies, 2(2), 24-30, ISSN 2202-9478 Retrieved from https://files.eric.ed.gov/fulltext/EJ1149648.pdf
8. Ghara, T.K. (2016). Status of Indian Women in Higher Education. Journal of Education and Practice, 7 (34), 58-64, ISSN 2222-288X (Online). Retrieved from https://files.eric.ed.gov/fulltext/EJ1126680.pdf
9. Bhat, R.A. (2015). Role of Education in the Empowement of Women in India. Journal of Education and Practice, 6(10), 188-191, ISSN 2222-288X (Online). Retrieved from https://files.eric.ed.gov/fulltext/EJ1081705.pdf
10. Gul, S.B.A., & Dr. Khan, Z.N. (2015). A Perceptual Study of Girls Education, its Factors and Challenges in South Kashmir. Asian Journal of Multidisciplinary Studies, 3(1), 106-110, ISSN: 2321-8819 (Online). Retrieved from https://files.eric.ed.gov/fulltext/ED553577.pdf
11. Peacock, S. (2009). The "Education" of the Indian Woman against the Backdrop of the Education of the European Woman in the Nineteenth-Century. The Forum on Public Policy. Retrieved from https://files.eric.ed.gov/fulltext/EJ870098.pdf
12 Singh, N. (2008). Higher Education for Women in India—Choices and Challenges. The Forum on Public Policy. Retrieved from https://files.eric.ed.gov/fulltext/EJ1099426.pd
13. Nisha Nair. (2010). Women's education in India: A situational analysis. IMJ, 1(4), 100-114.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 79-83

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

साहित्य और किन्नर जीवन की अभिव्यक्ति

डॉ. दुर्गेश कुमार शर्मा
सुरक्षा विहार, जी.टी. रोड़, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में हमारा सम्पूर्ण समाज दो स्तम्भों पर टिका हुआ है, वह है 'पुरूष और स्त्री'। सामान्यतः दोनों का कार्य आपसी सहयोग से वंश परम्परा एवं मानव जाति को आगे बढ़ाना है। हमारे समाज में इन दो लिंगों के अतिरिक्त एक अन्य लिंग का भी अस्तित्व है, जो न तो स्त्री वर्ग में आता है, और न ही पुरूष वर्ग में और न तो यह सम्बन्ध बना सकता है, न ही गर्भ धारण कर सकता है। इसी वर्ग में उन व्यक्तियों को भी समाहित किया जा सकता है, जिनका जन्म तो पुरूष जननांग के साथ हुआ है, किन्तु वह स्वयं को पुरूषों की श्रेणी में असहज पाता है और स्त्री प्रवृत्तियों का भी अनुपालन करता है। सभ्य समाज में जहां इनके लिए 'किन्नर' शब्द प्रयुक्त होता है, वहीं जनसामान्य में इन्हें 'हिजड़ा', 'नपुंसक', 'खोजा', 'छक्का' इत्यादि से सम्बोधित किया जाता है।

सर्वविदित है कि साहित्य किसी भी समस्या को उजागर करने का सबसे सशक्त माध्यम है। साहित्य के माध्यम से ही वर्तमान में इतने विमर्शों तथा 'दलित विमर्श', 'आदिवासी विमर्श', 'स्त्री विमर्श' इत्यादि को बल मिला है। इन विमर्शों के माध्यम से ही उन पक्षों पर विस्तार से चर्चा सम्भव हो पायी है, जो कभी मुख्य विषय नहीं बन पाते, किन्तु समाज में अभी भी एक वर्ग शेष है, जो समाज की मुख्यधारा से विलग हाशिए पर है, वह है 'किन्नर समाज'। अब हमें साहित्य में एक नये विमर्श के रूप में 'किन्नर विमर्श' की आवश्यकता है।

किन्नरों की स्थिति अत्यंत दयनीय है। समाज में किन्नरों को अत्यन्त नकारात्मक एवं हेय दृष्टि से देखा जाता है। लोग इन्हें देखकर इनसे घृणा करते हैं। जन सामान्य वर्ग इनसे सामाजिक सम्पर्क रखना पसन्द नहीं करता है। उच्चतम न्यायालय द्वारा भी इन्हें तीसरे लिंग के रूप में मान्यता प्रदान कर दी गयी है, साथ ही सभी आवेदनों में तीसरे लिंग के रूप में प्रतिभाग की अनिवार्यता तथा सामान्य मनुष्य की भांति अन्य अधिकार भी प्रदान किये गये हैं। इसके पश्चात भी वर्तमान समय में इन्हें पूर्णरूप से सामाजिक स्वीकृति नहीं मिल पायी है। समाज द्वारा किये गये इस प्रकार के दुर्व्यवहार से व्यथित होकर 'किन्नर कथा' उपन्यास की मुख्य पात्र 'तारा' अपनी पीड़ा की अभिव्यक्ति करते हुए कहती है–'भगवान ने मेरे साथ ऐसा अन्याय क्यों किया? मैं हिजड़ा हूं तो इसमें मेरा क्या कसूर? मुझ निर्दोष को किस बात की सजा मिल रही है? मेरा अपना कौन है? घर–बार, मां–बाप, भाई–बहन, बच्चे कोई नहीं है मेरा, जिसे मैं अपना कह सकूं, सब कुछ होते हुए भी कोई मुझसे रिश्ता नहीं रखना चाहता, कोई मुझे अपनाने को तैयार नहीं है। बचपन से आज तक बस अपने आपमें ही दर्द पीते हैं। दूसरों को हंसाते आये हैं, उनकी खुशियों में शरीक होते आए हैं, आशीष के सिवा कभी किसी को कुछ नहीं दिया, ईश्वर

से बस एक शिकायत है। आखिर क्यूं उसने हमें ऐसा बनाया? क्यों हिजड़ा होने का दंड दिया? काश! हम भी औरों की तरह स्त्री या पुरूष होते, हिजड़ा होना कितनी बड़ी सजा है, यह कोई हिजड़ा ही समझ सकता है, दूसरा कोई नहीं, कभी नहीं।' इन पंक्तियों में किन्नर होने की असीम पीड़ा परिलक्षित होती है। एक किन्नर होना अर्थात् समस्त रिश्तों का समाप्त हो जाना।

भारत का संविधान सभी मनुश्यों को समानता से जीने का अधिकारी देता है, परंतु वास्तविकता क्या है इससे हम सभी परिचित हैं! भारत में सन 2014 मेगं सर्वोच्च न्यायाल ने हिजड़ों को थर्ड जेंडर के रूप में स्वतंत्र पहचान प्रदान की है तथा उन्हें अन्य पिछड़ी जातियों के समान आरक्षण प्रदान करने के निर्देश दिए हैं। न्यायालय की इस घोषणा से हिजड़ा समुदाय में निश्चित रूप से खुशी व्याप्त हुई है और वे भी सोचने लगे है कि उनके दिन भी फिरेंगे।'' (डॉ. विजेंद्र प्रताप सिंह, 2023, भूमिका)

भारतीय समाज में किन्नरों के साथ धार्मिक एवं व्यावहारिक दोनों दृष्टियों से भिन्न–भिन्न व्यवहार किया जाता है। एक ओर तो धार्मिक दृष्टि से इन्हें उच्च व पवित्र स्थान प्रदान किया जाता है, वहीं दूसरी ओर व्यावहारिक दृष्टि से इनके साथ अत्यंत हेय व्यवहार किया जाता है। भारतीय समाज में किन्नरों को हाशिए पर रखा गया है। किन्नर समुदाय समाज में केवल मुख्यधारा से ही विलग नहीं किया गया, अपितु समाज में इनके प्रति अनेक गलत धारणाओं को भी लोगों में भरा गया, जिसके कारण लोगों की भावनाएं इनके प्रति नकात्मक हो गयी हैं। परिणामतः प्रयत्न करने के पश्चात भी वे मुख्यधारा में नहीं आ पाते हैं तथा समाज के मध्य रहकर भी अलगावपूर्ण जीवन जीने को मजबूर रहते हैं।

स्त्री काल' में प्रकाशित 'डिसेन्ट साहू' द्वारा लिए गए साक्षात्कार में छत्तीसगढ़ की 'रवीना बरिहा' कहती हैं, 'थर्ड जेंडर' के प्रति हम लोग समाज की मिली–जुली प्रतिक्रिया देखते हैं। समाज के जिन लोगों का थर्ड जेंडर किन्नरों के साथ पहले कभी अथवा लगातार मेलजोल रहा है, वे बहुत जल्दी हम लोगों को स्वीकार करते हैं। हमसे अच्छा व्यवहार करते हैं। कई बार हम लोगों को एक दैवीय रूप में देखा जाता है, लेकिन समाज का एक बड़ा तबका ऐसा है, जो अपने कुछ पूर्वग्रहों के कारण हमसे दूर भागता है। शायद थर्ड जेंडर का समाज में पर्याप्त मेल–जोल न होने से वे एक झिझक के कारण हमें कबूल नहीं करते। इस प्रकार समाज में हम लोग दो भिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाएं देखते हैं, एक बहुत सकारात्मक तो दूसरी अत्यन्त नकारात्मक।

किन्नर समाज के लोगों को समाज में उचित स्थान दिलाने हेतु इनकी समस्याओं और स्थिति आदि पर गंभीरता से चर्चा एवं जनमानस में इनसे सम्बन्धी चेतना विकसित किये जाने की आवश्यकता है जिसका आगाज दिखाई पड़ने लगा है। हिंदी साहित्य जगत द्वारा पिछले वर्षों से छेड़ी गयी जिरह के फलस्वरूप इस समाज से सम्बंधित मुद्दों को हाथों हाथ लिया गया है। इस वर्ग के लोगों की समस्याओं, किन्नर जीवन के संघर्ष पर काफी कुछ लिखने, पढ़ने तथा उनके जीवन को समझने का साहस किया जा रहा है जो समाज में उनकी स्वीकार्यता को बल देगा। इस समुदाय की व्यथा को विभिन्न उपन्यासों एवं कहानियों के माध्यम से लोगों के बीच उजागर किया जा रहा है जो इनके संघर्ष में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से सहायक सिद्ध हो रहा है। महेंद्र भीष्म, प्रदीप सौरभ जैसे लेखकों के अतिरिक्त इस समुदाय से जुड़े लोग भी अपनी आत्मकथाओं के माध्यम से समाज के समक्ष अपनी बात को रख रहे हैं–लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी की आत्मकथा 'मैं हिजड़ा मैं लक्ष्मी' और मनोबी बंद्योपाध्याय की प्रकाशित आत्मकथा 'पुरुष तन में फँसा मेरा नारी मन' इसी क्रम में एक साहसिक कदम हैं।

इन दोनों आत्मकथाओं की विशिष्ट बात यह है कि इनमें बड़ी ही बेबाकी के साथ अपने जीवन की सच्चाइयों को अभिव्यक्त किया गया है। 'मैं हिजड़ा मैं लक्ष्मी' के पात्र की कथा जहाँ एक ओर इस परित्यक्त समुदाय के जीवन संघर्षों से हमें रूबरू कराती है वहीं दूसरी ओर एक विजयी सेनानी की भांति कई ऐसे आदर्श प्रस्तुत करती है, जो इनके अपने समुदाय के लिए एक आदर्श पदचिह्न बनता है। इसका पात्र किन्नर के परंपरागत जीवन शैली को नकारते हुए समाज की मुख्य धारा के लोगों की किन्नरों के प्रति हिकारत की भावना का प्रतिकार करता हुआ, संघर्षमय जीवन के साथ, अवनति से उन्नति की ओर अग्रसर होने का प्रयास करता है। सामाजिक तिरस्कार के बावजूद वह अपने असीम धैर्य के साथ शिक्षा ग्रहण कर एक अलग पहचान बनाता है तथा इस समाज के उत्थान को अपना दायित्व मानते हुए अपनी संस्था के माध्यम से उनके जीवन में बदलाव लाने हेतु कई अभियान भी चलाता है।

'पुरुष तन में फँसा मेरा नारी मन' का पात्र सोमनाथ अपने पुरुष शरीर की कैद से आजादी को ही अपने जीवन का लक्ष्य बना लेता है। हालाँकि सोमनाथ के मनोबी बनने की तीव्र आकांक्षा की उत्पत्ति ही अपने–आप में कई प्रश्न खड़े करते हैं। आखिर सोमनाथ में इस बदलाव की तीव्र उत्कंठा का मूल कारण क्या है? क्यों इन जैसे लोगों को एक पूर्ण स्त्री अथवा एक पूर्ण पुरुष बनने की चाह हो? उत्तर बहुत ही स्पष्टत एवं सरल है, उत्तर है समाज में एक पूर्ण स्त्री अथवा एक पूर्ण पुरुष के रूप में समानता का अधिकार, स्वीकार्यता एवं उनके समकक्ष एक जीवन जीने की अपेक्षा यदि समाज उन्हें उनके उसी रूप में वो सम्मान, अधिकार आदि प्रदान करने में सक्षम हो जाये तो शायद उनके मानस में इस द्वंद्व की उत्पत्ति से निजात पाई जा सकती है। हर क्षण दूसरों से भिन्न, उपेक्षित होने की मानसिक पीड़ा से उन्हें मुक्ति दी जा सकती है। शून्य से शिखर तक पहुँचने के इस अभियान में उसे कई शारीरिक एवं मानसिक यातनाओं तथा सामाजिक तिरस्कार का सामना करना पड़ता है। ये दोनों आत्मकथाएं जीवन संघर्ष के विभिन्न पड़ावों से गुजरते हुए, उनके संघर्ष, पीड़ा और अंततः सफलता का चित्रण करती हैं।

एक किन्नर की केवल यही इच्छा होती है उसे भी सामान्य मनुष्य की भांति जीवन जीने का अधिकार हो। उसके साथ अछूतों जैसा व्यवहार न किया जाए। उसे भी परिवार तथा समाज का सहयोग मिले, किन्तु उसकी यह इच्छा पूर्ण नहीं हो पाती है। इनको सर्वाधिक आशा अपने परिवारजनों से होती है कि वे उन्हें स्वीकार करेंगे, प्रेम देंगे, किन्तु सामान्यतः ऐसा नहीं होता है। किन्नरों का तिरस्कार सर्वप्रथम परिवार से ही प्रारम्भ होता है, जिसके कारण ये पूर्ण रूप से शापित एवं अभिशप्त जीवन जीने को मजबूर रहते हैं। इसके सम्बन्ध में प्रसिद्ध कथाकार 'महेन्द्र भीष्म' लिखते हैं, प्रत्येक हिजड़ा अभिशप्त है, अपने परिवार से बिछुड़ने के दंश से, समाज का पहला घात से उस पर शुरू होता है। अपने ही परिवार से, अपने ही लोगों द्वारा उसे अपनों से दूर किया जाता है। परिवार से विस्थापन का दंश सर्वप्रथम उन्हें ही भुगतान होता है।

इस प्रकार की परिस्थितियों की अभिव्यक्ति महेन्द्र भीष्म के उपन्यास 'किन्नर कथा' में बखूबी हुई है। उपन्यास की मुख्य पात्र सोना एक किन्नर होने के कारण अपने पिता द्वारा घृणा का पात्र बनती है। जब तक उन्हें उसकी सच्चाई का पता नहीं होता, तब तक वह उनकी आंखों का तारा होती है, किन्तु जैसे ही उनके नेत्रों के समक्ष वास्तविकता आती है तो वह उन्हें किरकिरी की भांति नेत्रों में चुभने लगती है। वे उससे इतनी नफरत करते हैं कि उसकी हत्या कराने का आदेश तक दे देते हैं। उन्हें अपनी पुत्री ही खादनाद पर धब्बा लगने लगती

है। जगतराज अपनी पुत्री सोना के सम्बन्ध में कहता है–'हे भगवान! हमारी सन्तान हिजड़ा! वीर बुंदेला खानदान में हिजड़ा ने जन्म लिया, भगवान हां हमाए संगे इत्तो बड़ो अन्याय नहीं करो चाहिए तो हे! कामदगिरि महाराज कौन पाप की सजा दई तुमने, बुंदेला खानदान को नाम डुबो दें, क्षत्री वंश में हिजड़ा का, ऊ हिजड़ा पाले पोसे अरे आज नहीं तो कल, जब सबके सामने जा बात आ जेहे कि हमाई सन्तान हिजड़ा है, बुंदेला खून हिजड़ा पैदा करत तो गत हुई हमाई, ई कलंक सोना हां भुन्सारे, मो अंधियारे इन्दौर की डांग ले जाके मार डरो। कोऊ हां कानोकान पतो न परो चाहिए।'

कुछ इसी की परिस्थितियां चित्रा मुद्गल कृत 'पोस्ट बॉक्स नं. 203–नाला सोपारा' में भी देखने को मिलती हैं। विनोद एक किन्नर है। वह अपनी बा को प्राणों से प्यारा है, किन्तु वह अपने परिवार को छोड़कर किन्नरों के बीच रहने के लिए मजबूर है, परिवार के अन्य सदस्य तथा समाज ने ये दूरियां बना दी हैं। विनोद पत्र में अपने अन्तर्गत की पीड़ा को अभिव्यक्त करते हुए बा को लिखता है, मेरी सुरक्षा के लिए कानुनी कार्यवाही कें नहीं की तूने, मेरी बा, तूने ओश्र पप्पा ने मिलकर मुझें कसाइयों के हाथ मासूम बकरी सा सौंप दिया, जिस नरक में तूने और पप्पा ने धकेला है मुझे, वह एक अन्धा क ुआं है, जिसमें सिर्फ सापं–बिच्छू रहते हैं। सापं–बिच्छू बनकर पैदा नहीं हुए होंगे। बस, इस कुएं ने उन्हें आदमी नहीं रहने दिया।' एक ओर जहां इन उपन्यासों में परिवार द्वारा तिरस्कार दिखाया गया है, वहीं दूसरी ओर यह भी दिखाया गया कि जो परिवार इन्हें प्रेम करते हैं, अपने पास रखना चाहते हैं, उन्हें समाज मजबूर कर देता है कि वे अपने बच्चे को त्याग दें।

'प्रदीप सौरभ' कृत 'तासरी ताली' उपन्यास में आनंदी आटीं की पुत्री निकिता एक ऐसा ही उदाहरण है। आनंदी आटीं समाज की परवाह न करते हुए अपनी पुत्री को पढ़ाना चाहती है। वे इसके लिए हर सम्भव प्रयास करती हैं, किन्तु प्रत्येक स्थान पर निराशा ही हाथ लगती है, फिर चाहे वह लड़कों का स्कूल हो अथवा लड़कियों का। दोनों जगह से एक ही जवाब मिलता है कि जेंडर स्पष्ट न होने के कारण दाखिला नहीं मिल सकता। उनका कहना था स्कूल केवल सामान्य बच्चों के लिए है, बीच के बच्चे का दाखिला करने से स्कूल का माहौल खराब हो जाएगा। इस सन्दर्भ से स्पष्ट होता है कि यदि परिवार इन्हें स्वीकार करता है। सामान्य बच्चों की पालन–पोषण करना चाहता है, तो इसमें समाज बाधा बन जाता है।

'यमदीप' उपन्यास में भी यही सवाल 'नीरजा माधव' नाज बीबी के माध्यम से उठाने का प्रयत्न करती हैं। नंदरानी के अभिभावक को प्रेम करते हैं। नंदरानी की माता उसे पढ़ा–लिखाकर आत्मनिर्भर बनाना चाहती थी, किन्तु वही सवाल महताब गुरु उठाने हैं कि कभी हिजड़े को पढ ते–लिखते देखा है या पुलिस में, कलेक्टरी में अथवा मास्टरी में कहीं इन्हें देखा है? वे कहते हैं इनकी दुनिया बस यही है। उनके अनुसार–इन तृतीय लिंगी के समर्थन हेतु कोई आगे बढ़कर नहीं आएगा कि हिजड़ों को पढ़ाओ–लिखाओं और नौकरी दो। महताब गुरु के माध्यम से लेखिका ने समाज द्वारा इनके प्रति अपनाये गये तिरस्कृत व्यवहार को दिखाने का प्रयत्न किया है।

उल्लिखित सभी उपन्यास समाज की किन्नरों के प्रति सोच बदलने का ऐक अच्छा प्रयास हैं। लोगों का किन्नरों के प्रति जो व्यवहार है, उनके प्रति सोच है, निश्चय ही इन उपन्यासों को पढ़ने के पश्चात उनमें परिवर्तन होगा, किन्तु अभी भी साहित्य में किन्नर समाज की समस्त समस्याओं और पीड़ाओं को विभिन्न पक्षों एवं दृष्टियों से विश्लेषित करने की आवश्यकता है। साहित्य के माध्यम से इस उपेक्षित वर्ग की आवाज जन–जन तक पहुंच

सकती है और साहित्य ही किन्नर विमर्श को आगे बढ़ाने में मील का पत्थर साबित हो सकता है। वर्तमान समय में सबसे बड़ी आवश्यकता यह भी है कि मुख्यधारा का समाज किन्नर समाज के प्रति अपनी धारणा बदले एवं इनके प्रति मन–मस्तिष्क में स्थापित पूर्वग्रहों को दूर करने का प्रयास करे। यह वर्ग समाज में केवल नाच–गाकर हमारा मनोरंजन करने के लिए पैदा नहीं हुआ है, इन्हें भी हक है कि ये गरिमा से परिपूर्ण जीवनयापन करें। अतःइस विषय पर और अधिक कार्य किये जाने की आवश्यकता है तथा अन्य विमर्शो ं की भांति किन्नर विमर्श को भी एक आन्दोलनरुपी प्रगति की आवश्यकता है।

संदर्भ :–

1. डॉ. विजेंद्र प्रताप सिंह, थर्ड जेंडर पौराणिक काल से वर्तमान तक, 2.023, विकास प्रकाशन, कानुपर, भूमिका।
2 महेन्द्र भीष्म, किन्नर–कथा, सामयिक प्रकाशन, 2016, पृ. 64
3. स्त्रीकाल.कॉम
4. महेन्द्र भीष्म, किन्नर–कथा, सामयिक प्रकाशन, पृ. 41–42
5. महेन्द्र भीष्म, किन्नर–कथा, सामयिक प्रकाशन, पृ. 24–26
6. चित्रा मुद ्गल, पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा, सामयिक प्रकाशन, पृ. 11
7. किन्नर समाज की चुनौतियाँ–रजनी प्रताप।
8. साहित्य में किन्नर विमर्श की आवश्यकता कीर्ति मालिक।

मो0 9411880204

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 84-87

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

स्वामी विवेकानंद का शैक्षिक विमर्श

डॉ० गीता कुमारी

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, बी०एस० सिटी कॉलेज, बोकारो, बी०बी०एम०के०यू०, धनबाद, पिन 827006

भारतवर्ष की नैसर्गिक छटा पूरी धरा पर अपनी अमिट छाप छोड़ती है। यह देश साधु–संयासियों, ऋषि–मुनियों, त्यागी–तपस्वियों की जन्मभूमि है। आदि–अनादि काल से ही हमारा देश असंख्य तपस्वियों, संतों एवं महापुरुषों की कर्मभूमिरूपी परमधाम है जहाँ ये अवतीर्ण होकर आजीवन विश्वकल्याण में रत रहते हैं। स्वामी विवेकानंद भी माँ भारती के ऐसे शिरोमणि सपूत हैं जिन्होंने अपने कर्म से संपूर्ण विश्व पर भारतवर्ष की महिमा का ध्वजारोहण किया है। अपने धर्म, दर्शन, ज्ञान, शैक्षिक विमर्श आदि के बल पर इन्होंने देश का गौरव गान कर जगत का कल्याण किया है।

स्वामी जी का शैक्षिक विमर्श उच्च कोटि का है, जिसमें उन्होंने मनुष्य के सर्वांगीण विकास पर बल दिया है। विश्वधर्म सम्मेलन में भारतवर्ष का प्रतिनिधित्व कर भारतीय संस्कृति एवं धर्म को विश्व के चतुर्दिक क्षितिज में स्वर्णरूपी झिलमिलाते सितारों से सुशोभित करने का श्रेय इन्हीं को जाता है। धनाढ्य, सुशिक्षित एवं कुलीन परिवार में जन्म लेने के कारण बाल्यावस्था से ही पारिवारिक पृष्ठभूमि में इन्हें शिक्षा का वातावरण मिला औरअध यात्म, धर्म–दर्शन की ओर इनका झुकाव बढ़ता गया। ईश्वर प्रदत्त कुशाग्र बुद्धि के धनी स्वामी जी ने बहुत कम समय में ही कई भाषाओं यथा संस्कृत, बांग्ला, हिंदी, अंग्रेजी आदि भाषाओं में अपनी पकड़ बना ली थी। तत्कालिक राजनीतिक सत्ता में अंग्रेजों की शोषण नीति से त्रस्त भारतीय जनता जो भूख, निर्धनता, अशिक्षा रूपी विकराल दैत्य के पैरों तले दबी थी, वहाँ से संपूर्ण भारतवर्ष को मुक्ति की आश ही दुर्लभ लगती थी क्योंकि जबतक अशिक्षा रूपी अंधकार अपनी बाहों को फैलाये विनाश लीला का जो ताडंव सृजित कर रहा था, उससे संपूर्ण देश का दुर्भाग्य जुड़ा था। अंग्रेजों ने जिस शिक्षण पद्धति का प्रारंभ किया था, वह सिर्फ उनका ही हिमायती था।

सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में अब भी शिक्षा सामान्य जन के लिए दुर्लभ थी क्योंकि अशिक्षित जनता के समक्ष पेट की अग्नि ही इतनी विकराल थी कि वहाँ शिक्षा की लौ जलाने की बात ही बेमानी थी। इसके साथ ही सामाजिक अंधविश्वास एवं छुआछूत की भावना कोढ़ बनी हुई थी। भारतीय समाज सुधारकों, महापुरूषों, नेताओं आदि ने भारतीयों के हितों को ध्यान में रखकर ऐसे विद्यालयों और शिक्षण संस्थाओं की व्यवस्था की जो भारतीय जनमानस को झकझोर कर उसे उसके अधिकार के प्रति सचेत कर उनमें देशभक्ति का प्राण तत्त्व फूँकें। स्वामी विवेकानंद भी ऐसी शिक्षा पद्धति के पक्षधर थे, जो मनुष्य का सर्वांगीण विकास कर उसे उसके अधिकार एवं मानवीय मूल्यों के प्रति सजग करे। निर्धन भारतवासियों के मध्य मुट्ठी भर ऐसे जन थे, जो अंग्रेजों की चापलूसी कर अपना स्वार्थ

साथ रहे थे जिन्हेंन अपनी मातृभूमि से प्रेम था और न अपने निर्धन भाइयों से प्रेम था। वे अंग्रेजी ठाठ–बाट में अपनी संस्कृति, धर्म, शिक्षा की जीवन्तता को उपेक्षित बना चुके थे। स्वामी विवेकानंद का शिक्षा दर्शन भारतीय शिक्षा, संस्कृति, धर्म को पुनर्प्रतिष्ठित करना था। वे तत्कालिक समस्याओं के प्रति सजग रहकर उच्च एवं शिक्षित वर्ग को कटाक्षपूर्ण व्यंग्य–बाणों से बेधते हुए चेताते हैं कि जब तक वे अपने निर्धन भाईयों की पीड़ा महसूस नहीं करेंगे और उन्हें अपने ज्ञान से सिंचित नहीं करेंगे वे धोखेबाज ही रहेंगे। डॉ० नगेन्द्र संपादित 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में स्वामी जी के शब्द गूँज की एक झलक उद्धृत है :– "जब तक देश के हजारों लोग भूखे हैं, अज्ञानी हैं, मैं प्रत्येक शिक्षित वर्ग को धोखेबाज कहूँगा। गरीबों के पैसे से पढ़ कर भी वे उनकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते.....उच्चवर्ग शारीरिक और नैतिक दृष्टि से मर चुका है।"[1]

मनुष्य का चारित्रिक एवं नैतिक पतन सदैव उसे अमानवीय कृत्य की ओर अग्रसर करते हैं। अतएव मनुष्य के सर्वांगीण विकास में चारित्रिक एवं नैतिक विकास की भूमिका महत्ती रहती है। स्वामी जी ने लोककल्याण के निमित्त तात्कालिक शिक्षा व्यवस्था में पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि आदि संबंधी अपने शैक्षिक विमर्श प्रस्तुत किए। पाठ्यक्रम विमर्श के संबंध में उन्होंने कोई क्रमबद्ध स्वरूप भले न प्रस्तुत किया किन्तु इसमें सन्निहित विषयवस्तुओं की विस्तार से चर्चा की है। उन्होंने पाठ्यक्रम में धर्म, दर्शन, वेदान्त, योग आदि की शिक्षा को महत्त्वपूर्ण माना है।

स्वामी विवेकानंद शैक्षिक विमर्श में धर्म के शाश्वत रूप के हिमायती थे। जोन तो किसी पंथ से संबंधित था और न किसी विशेष संप्रदाय से ही जुड़ा था। वे मानवीय मूलक धर्म सत्ता के पक्षधर थे, जो पूरी तरह से धर्मनिरपेक्ष था। यहाँ सिर्फ मानवता का धर्म ही प्रत्येक मनुष्य के लिए श्रेय और प्रेय था। मानवता का धर्म मनुष्य के हृदय पक्ष को सबल एवं पुष्ट बनाता है। स्वामी विवेकानंद ने बुद्धि पक्ष की अपेक्षा हृदय पक्ष को श्रेयस्कर माना है क्योंकि पाश्चात्य शिक्षा बुद्धि को परिष्कृत कर उसे स्वार्थी बना देती है। स्वामी जी के शब्दों में एक दृष्टांत उद्धृत है :–"अत्यधिक मानसिक प्रशिक्षण से अधर्मी मनुष्यों का निर्माण होता है। पाश्चात्य शिक्षा का एक दोष है, वह मनुष्य को अत्यंत स्वार्थी बना देती है। बुद्धि व्यक्ति को उस सर्वोच्च स्तर पर नहीं पहुँचा सकती है जिस पर हृदय उसे पहुँचाता है। हृदय ज्ञान का प्रकाश है। अतः हृदय का परिष्कार करो। ईश्वर हृदय के माध्यम से ही हमें संदेश देता है।"[2]

अंतःकरण के परिष्कार से स्वयं ईश्वर का साक्षात्कार होता है और जब ऐसी शिक्षा में आत्मसाक्षात्कार होता है तो निश्चय ही व्यक्ति मानवीय मूल्यों को आत्मसात करते हुए लोककल्याण के लिए तत्पर हो जाता है। स्वामी जी दर्शन की शिक्षा के लिए उपनिषदों की ओर लौटने हेतु प्रेरित करते हैं क्योंकि मनुष्य की मुक्ति का साधन उपनिषद ही है। आत्मा अजर–अमर एवं शाश्वत हैं, वह केवल शरीर बदलता है। वे कहते हैं जब विद्यार्थी यह अनुभूति कर लेगा कि वह आत्मा है तो निश्चय ही वह सांसारिक चक्र की गतिविधियों को चीरते हुए सर्वश्रेष्ठ विद्यार्थी बनेगा क्योंकि आत्मा अमर है।

स्वामी जी ने शिक्षा में योग की महत्ता पर भी बल दिया है। योग की शिक्षा से बालकों में उच्च चरित्र एवं आदर्श आदि विकसित होते हैं। उन्होंने योग के चार मार्ग बतलाये हैं– कर्मयोग, भक्तियोग, राजयोग, ज्ञान योग। कर्मयोग में कर्म द्वारा मन को शुद्ध करना होता है। भक्तियोग में ईश्वरीय प्रेम पर बल दिया गया है। राजयोग अध्यात्म से संबंधित है, जिसे प्राणायाम, ध्यान–चिंतन द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। राजयोग के संबंध में विस्तृत

चर्चा 'विवेकानंद साहित्य' में मिलता है, जहाँ इसके अंगों पर विचार किया गया है :–"राजयोग आठ अंगों में विभक्त है। पहला है यम–अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी का अभाव), ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। दूसरा है नियम–अर्थात् शौच, संतोष, तपस्या, स्वाध्याय (अध्यात्म–शास्त्रपाठ) और ईश्वर–प्रणिधान अर्थात् ईश्वर को आत्म–समर्पण। तीसरा है आसन– अर्थात् बैठने की प्रणाली। चौथा है प्राणायाम– अर्थात् प्राण का संयम। पाँचवाँ है प्रत्याहार– अर्थात् मन की विषयाभिमुखी गति को फेरकर उसे अंतर्मुखी करना। छठा है धारणा–अर्थात् किसी स्थल पर मन का धारण। सातवाँ है ध्यान। और आठवाँ है समाधि– अर्थात् अति चेतन अवस्था।"[3]

ज्ञानयोग में शाश्वत सत्य और आत्मा की अमरता के वास्तविक रूप का सदैव स्मरण करना आवश्यक होता है। स्वामी जी ने बालकों की शिक्षा के लिए एक सार्वदेशिक राष्ट्रभाषा की महत्ता पर बल दिया क्योंकि यह भाषा संपूर्ण राष्ट्र का प्रतिनिधित्व कर विचार–विनिमय का माध्यम बनती जिससे प्रत्येक भारतवासी सरलता से अपने भावों–विचारों को प्रकट कर एक–दूसरे राज्य से संपर्क कर सकता है। वे मानते हैं किबालकों की प्रारंभिक शिक्षा मातृभाषा में हो। जिससे वे सरलता से अपनी संस्कृति को समझ सके। उन्होंने संस्कृत की शिक्षा की ओर विशेष बल दिया क्योंकि यह भाषा देवभाषा होने के साथ–साथ भारतीय संस्कृति एवं प्रतिष्ठा की परिचायक है। उनकी विचारधारा समन्वयवादी थी, वे अंग्रेजी भाषा के भी पक्षधर थे क्योंकि विज्ञान एवं तकनीकी विषयों की जानकारी के लिए इस भाषा का ज्ञान आवश्यक था। कला, साहित्य, भूगोल, इतिहास, मनोविज्ञान, शारीरिक शिक्षा आदि को भी शिक्षा के लिए आवश्यक अंग माना है। मनोविज्ञान के संबंध में कहा कि मन को नियंत्रित और संयमित मनोविज्ञान द्वारा ही किया जा सकता है। जिस मनुष्य का मन पर नियंत्रण हो जाता है, वह कभी भी पथभ्रष्ट नहीं होता है। यह सभी विज्ञानों का विज्ञान है। शरीर और मन पर नियंत्रण के लिए शारीरिक शिक्षा को भी महत्त्वपूर्ण माना है। स्वस्थ शरीर में स्वस्थ आत्मा का विकास होता है। जब बालक शरीर से स्वस्थ रहकर किसी कार्य को करेगा तो निश्चय ही उसे श्रेष्ठ फल मिलेगा।

स्वामी जी ने स्त्री शिक्षा एवं साधारण जन की शिक्षा के संबंध में अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। स्त्री शिक्षा के संबंध में उन्होंने कहा कि जिस राष्ट्र में स्त्रियों को सुशिक्षित कर उन्हें समुचित मान–सम्मान दिया जाता है, वह राष्ट्र निश्चय ही उत्थान करता है। स्वामी जी मनु महाराज की उक्ति की ओर इंगित करते हैं। स्त्रियों का जहाँ आदर होता है वहाँ देवता भी क्रीड़ा करते हैं और जहाँ उनका अनादर होता, उस देश की उन्नति अवरुद्ध हो जाती है। स्वामी जी भी मानते हैं कि स्त्रियों की समस्या का एकमात्र साधन शिक्षा है जिसकी सहायता से वे अपने जीवन में आत्मनिर्भर बनकर देश के उत्थान में सहयोग करेंगी और समाज का मार्गदर्शन करेंगी। इसी देश में सीता, सावित्री, अहिल्या बाई, गार्गी, मैत्रेयी, झाँसी की रानी जैसी स्त्रियाँ हुई जिन्होंने भारतवर्ष में अपने सत्कर्मों से अपनी अमिट पहचान बनायी। स्त्रियों को धर्म, त्याग, स्वाभिमान, आत्मरक्षा तथा लौकिक विषयों की शिक्षादी जाय जिससे वे राष्ट्र के विकास में अपना उचित योगदान दे सकें। उन्होंने स्त्रियों के संबंध में कहा हिन्दू स्त्रियाँ सदियों से सती व्रत का पालन करती रही, जो अनैतिक था।

वेबाल विवाह का घोर प्रतिकार करते थे। उनका मानना था कि बालिकाओं को बालकों की तरह ब्रह्मचर्य का पालन कर शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। कुछ बालिकाओं को जो स्वयं अपने मनसे संयासिनी बनकर शिक्षा में योगदान देकर राष्ट्र का कल्याण करें, उनको प्रोत्साहित करना चाहिए। वे आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन कर मठों में रहकर स्त्री शिक्षा में अपना योगदान देंगी। पुरुषों का प्रवेश मठ में वर्जित रहेगा। मठ में विद्यालय रहेगा जहाँ

विधवा बालिकायें तथा अविवाहित बालिकायें रहकर शिक्षा ग्रहण करेंगी। गृहस्थ स्त्रियाँ भी पढ़ाई कर सकती हैं। स्त्रियों को धर्म, साहित्य, संस्कृत, सिलाई–बुनाई आदि की शिक्षा दी जाये जिससे वे आत्मनिर्भर बनें।

स्वामी जी सदैव मानते थे कि स्त्रियों की शिक्षा में स्त्रियों का ही महत्त्वपूर्ण योगदान होगा, उन्हीं के शब्दों में एक दृष्टांत :–"सर्व साधारण में और स्त्रियों में शिक्षा का प्रसार हुए बिना उन्नति का कोई उपाय नहीं है। इसलिए कुछ ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणियाँ बनाने की मेरी इच्छा है। ब्रह्मचारी समय पर संयास लेकर प्रांत–प्रांत में, गाँव–गाँव में जायेंगी और जन समुदाय में शिक्षा का प्रसार करने का प्रबंध करेंगी, ब्रह्मचारिणियाँ स्त्रियों में विद्या का प्रसार करेंगी। पर यह सब काम देश में अपने ढंग पर होना चाहिए। पुरुषों के लिये जैसे शिक्षा केन्द्र बनाने होंगे वैसे ही स्त्रियों के निमित्त भी स्थापित करने होंगे। शिक्षित और सच्चरित्र ब्रह्मचारिणियाँ इन केंद्रों में कुमारियों को शिक्षा दिया करेंगी। पुराण, इतिहास, गृहकार्य, शिल्प, गृहस्थी के सारे नियम आदि वर्तमान विज्ञान की सहायता से सिखाने होंगे तथा आदर्श चरित्र गठन करने के लिए उपयुक्त आचरण की भी शिक्षा देनी होगी।"[4]

स्वामी जी का विश्वास था कि स्त्रियों की समुचित शैक्षिक विमर्श से ही राष्ट्र का कल्याण संभव है। इसके साथ ही जनसाधारण को भी शिक्षित किया जाये। वे यदि पाठशाला नहीं आ पाये तो गाँव–गाँव में जाकर शिक्षा की अलख जगायी जाये और उन्हें धर्म, दर्शन, विज्ञान आदि की शिक्षा दी जाये। प्रौढ़ शैक्षिक विमर्श की भी व्यवस्था की जाये। व्यावसायिक शिक्षा देकर मनुष्यों को आत्मनिर्भर बनाया जाये। शैक्षिक विमर्श में उन्होंने रटन्त पद्धति का प्रतिकार किया क्योंकि रटने से ज्ञान स्थायी नहीं रहता है। ज्ञान की प्राप्ति श्रवण, मनन, एकाग्रता, चिंतन द्वारा किया जाये। शिक्षण विधियों में उन्होंने व्याख्यान, उपदेश, प्रयोग, पत्राचार, आध्यात्म, साक्षात्कार आदि पर विशेष बल दिया। स्वामी जी की शैक्षिक विचारधारा भारतीय शैक्षिक व्यवस्था में आज भी अपना अमूल्य स्थान रखती है। उनका शैक्षिक विमर्श पथद्रष्टा के रूप में सदैव भारतीय शैक्षिक व्यवस्था को जगमगाते रहेगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. सं० डॉ० नगेन्द्र : 'हिंदी साहित्य का इतिहास', नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, छियालीसवां पुनमुर्द्रण, संस्करण–2014, पृष्ठ संख्या–411
2. गुप्त राजेन्द्र प्रकाश : 'स्वामी विवेकानंद व्यक्ति और विचार', राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–1997, पृष्ठ संख्या–101
3. प्रकाशक स्वामी मुमुक्षानंद : 'विवेकानंद साहित्य', प्रथम खण्ड–अद्वैत आश्रम कलकत्ता, पंचम संस्करण–1998, पृष्ठ संख्या–48
4. गुप्त राजेन्द्र प्रकाश : 'स्वामी विवेकानंद व्यक्ति और विचार', राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–1997, पृष्ठ संख्या–113

Postal Address :

Geeta Kumari, D/O : Balak Mahto, Vill+PO. Kuchu, PS. Ormanjhi, Dist. Ranchi (Jharkhand)

Pin Code :- 835219

ई–मेल :– kgeetakumari9@gmail.com

मोबाईल नं० :–9608140539

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 88-93

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

वंदना टेटे के साहित्य में झारखंड के आदिवासी साहित्यकार

सुश्री ज्ञान्ती

शोधार्थी, भारतीय भाषा विभाग, दक्षिण बिहार केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गया, बिहार।

सारांश :-

झारखंड के आदिवासी साहित्यकारों में प्रमुख रूप से आदिवासी दर्शन की स्पष्ट छाप देखने को मिलता है। इन आदिवासी साहित्यकारों में अपने समुदाय की संस्कृति, परम्पराएं, और जीवनशैली को प्रमुख विषय के रूप में चुनते हैं। झारखंड के आदिवासी साहित्यकार अपनी यात्राओं और अनुभवों का सुंदर वर्णन करते हैं, जिससे पाठकों को उन जगहों का अहसास होता है जिन्हें वे नहीं देख सकते। झारखंड के आदिवासी न केवल अपने समुदाय के बीच महत्वपूर्ण होते हैं, बल्कि साहित्य जगत में भी महत्वपूर्ण योगदान देते आ रहें हैं। वंदना टेटे आदिवासी साहित्य जगत के वो ध्रूवतारा हैं जिनके बिना आदिवासी साहित्य अधूरा लगती है । उनके कविता, आलोचना, विमर्श, निबंधों में आदिवासी दर्शन की अविरल धारा प्रवाहित होती है।

बीज शब्द :- आदिवासी, अस्मिता, दर्शन, साहित्य, संघर्ष, विमर्श, संस्कृति।

भूमिका :-

झारखंड राज्य पहले बिहार का हिस्सा था। झारखण्ड के आदिवासियों के द्वारा बहुत पहले से आदिवासी राज्य की मांग की जा रही थी। 15 नवम्बर सन् 2000 ई. में बिरसा मुंडा का जन्म दिवस पर बिहार राज्य से अलग होकर स्वतंत्र झारखंड राज्य के नाम पर सम्पूर्ण संविधानिक व्यवस्था के तहत गठित हुआ। झारखण्ड राज्य वहाँ के प्रमुख जनजातियां, लोक कला, संस्कृति, पूजा त्योहार, रीति रिवाज एवं चित्रकला के लिए जाने जाते हैं। झारखंड एक आदिवासी राज्य होने के कारण इस राज्य में 32 जनजाति पाए जाते हैं। इन 32 आदिवासी समुदाय में से 9 विलुप्त प्राय जनजाति श्रेणी के अंतर्गत आते हैं। इन आदिवासी समुदाय में से कुछ प्रमुख समुदाय इस प्रकार हैं।

सन्थाल :- सन्थाल समुदाय झारखंड के एक प्रमुख आदिवासी समुदाय हैं। वे प्रमुख रूप से सन्थाल पर्वों और उत्सवों को मनाते हैं और अपनी विशेष सांस्कृतिक धरोहर को बनाए रखते हैं।

मुंडा :- मुंडा समुदाय भी झारखंड में प्रमुख आदिवासी समुदाय हैं। उनकी भाषा मुंडारी है, और वे अपने खास परंपराओं और आदिवासी धर्म को पालन करते हैं।

हो :- हो समुदाय झारखंड के पूर्वी भागों में बसे हुए हैं। इनकी भाषा हो भाषा है और वे अपनी विशेष सांस्कृतिक परंपराओं को महत्वपूर्ण मानते हैं।

उरावं :- उरावं समुदाय झारखंड के पश्चिमी भागों में बसे हुए हैं। वे अपनी विशेष भाषा उरावं बोलते हैं

और अपनी रंगीन और सांस्कृतिक परंपराओं के लिए प्रसिद्ध हैं।

खरवार :– झारखंड के उत्तरी भागों में खरवार समुदाय बसे हुए हैं। वे अपनी खास भाषा खरवारी बोलते हैं और अपने परंपरागत गीत, नृत्य, और धार्मिक प्रथाओं के लिए प्रसिद्ध हैं।

झारखंड में और भी कई छोटे और बड़े आदिवासी समुदाय हैं, जिनमें हो, खरवार, मुंडा, उरावं, सन्थाल, ओरा, बिरहोर, पहाड़िया, और बिहोरी आदि शामिल हैं। यह सभी समुदाय अपनी विशेष सांस्कृतिक परंपराओं, भाषाओं, और आदिवासी धर्मों को अपनी संस्कृति के हिसाब से पालन करते हैं और अपनी पहचान को दिखाते हैं। आदिवासी संस्कृति को विश्व के धरातल पर अगले पीढ़ी के संजो के रखना झारखण्ड के आदिवासियों का मुख्य लक्ष्य है।

झारखंड एक आदिवासी राज्य होने के नाते इस का गौरवशाली इतिहास रहा है। सन 1778 ई. से लेकर भारत के आजाद होने तक आदिवासियों ने बहुत सी लड़ाइयाँ लड़ी। पूरे विश्व में हुए आदिवासी विद्रोह इस बात को प्रमाणित करते हैं कि अंग्रेजों से टक्कर लेने में आदिवासी समुदाय की अहम भूमिका रहीं है। परन्तु आजाद भारत के इतिहासकारों ने इस योगदान को कहीं भी जगह नहीं दी। दक्षिणपंथी नेतृत्व वाली सरकार इस योगदान को मिटा देने के षड्यंत्र में लगी थी। झारखंड के आन्दोलन पर धूल डाली जा रही थी। झारखंड के आदिवासी समुदाय की आन्तरिक संगठनों को तोड़ने के लिए धार्मिक विद्वेष के एजेंडे को लागू किया जा रहा था और झारखंड राज्य से प्रकाशित होने वाले पत्र–पत्रिकाओं में भी झारखंडी भाषा–साहित्य को अग्रगति प्रदान करने वाले कृतिकारों के बारे में भी लगभग नहीं के बराबर छपा जा रहा था। इस प्रकार झारखंड के महान स्वतन्त्रता सेनानी एवं क्रांतिकारियों, लेखकों, बुद्धिजीवियों और संस्कृत कर्मियों के चिन्तन और लेखन के सम्बन्ध में इन सबका अभाव रहा है। तब झारखंड के साहित्यकारों ने अपनी संस्कृति को और मजबूत करने की नई पहल शुरुआत की और झारखंड के साहित्य को एक नया रूप देने में सफल प्रयास किया गया।

वंदना टेटे –

झारखंड की आदिवासी साहित्यकार हैं, जिन्होंने अपने लेखनी के माध्यम से आदिवासी समुदाय के मुद्दों, समस्याओं, और संस्कृति को आगे बढ़ाने का समर्थन किया। वंदना टेटे ने अपनी रचनाओं में झारखंड के स्थानीय आदिवासी समुदाय के समस्याओं और संघर्षों को अपनी कहानी, कविता, आलोचना के माध्यम से सभ्य समाज के सामने लाने की प्रयास किया है। उन्होंने अपने लेखनी के माध्यम से आदिवासी समाज के लिए आवाज बुलंद की है और समाज में उनके बदलाव के लिए उत्कृष्ट योगदान किया है। वंदना टेटे का लेखन साहित्य में अपने समुदाय की संस्कृति, परंपराएं, और भाषा के प्रति उनके गहरे प्रेम का प्रतीक है। उन्होंने अपने काव्य में आदिवासी संस्कृति को सुंदरता से प्रकट किया है। वंदना टेटे द्वारा रचित कहानियों, कविताओं, और लघु निबंधों के माध्यम से आदिवासी जीवन दर्शन को प्रस्तुत किया है।

वंदना टेटे एक आदिवासी स्त्री होने के साथ–साथ एक आदिवासी साहित्यकार भी हैं जिन्होंने अपने लेखनी के माध्यम से अपने समाज की विशिष्टता को प्रदर्शित और उनकी सांस्कृतिक धरोहर को सुरक्षित रखने का महत्वपूर्ण काम किया है। उनके रचनाओं में सहजीविता तथा सामूहिकता की भाव साफ झलकता है। वंदना टेटे खड़िया समुदाय से आती हैं लेकिन उन्होंने अपने साहित्य में न सिर्फ खड़िया समुदाय की बात करती हैं बल्कि पूरे आदिवासी समाज की बात करती हैं। जिन लोगो ने झारखंडी अस्मिता, भाषा संस्कृति, साहित्य, शिक्षा

और आर्थिक उन्नति के लिए योगदान दिया है उन्हें सामने लाई हैं। वंदना टेटे झारखंड के आदिवासियों के बारे में वर्णन करते हुए 'पुरखा झारखंडी साहित्यकार एवं नये साक्षात्कार' सम्पादित ग्रन्थ में झारखंड के प्रसिद्ध साहित्यकार एवं समाज सुधारक ओत गुरु लकोबोदरा जैसे कोई साहित्यकारों के महत्वपूर्ण योगदान को सामने लाई हैं।

ओत गुरू लकोबोदरा के बारे में वर्णन करते वे लिखती है–

ओत गुरु लकोबोदरा का जन्म झारखंड राज्य के पासेया गाँव में 19 सितम्बर सन 1919 ई. को हुआ है। ओत गुरु लकोबोदरा युवावस्था तक आते–आते आदिवासी समुदाय की परिस्थितियों को समझने लगे थे। क्योंकि आदिवासी समुदाय में अंधविश्वास का ज्यादा प्रभाव था। इन परिस्थितियों को दूर करने के लिए वे समाज के आन्तरिक बुराइयों–कुरीतियों पर गम्भीरता पूर्वक चिन्तन–मनन किया और इस दलदल में डूबते समाज को बाहर निकलने की तरकीब सोची। उनका ध्यान सबसे पहले भाषा, शिक्षा और साहित्य की तरफ गया। इनका मानना है कि भाषा के माध्यम से ही विचारधारा का प्रतिरोपण संभव है और भाषा की पहचान दिलाने तथा विकसित करने में लिपि की अहम भूमिका होती है। इस तरह आदिवासी समुदाय को जागरूक बनाने, शिक्षा की भूख–प्यास जगाने और भाषा साहित्य को सहेजने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका दी है। ओत गुरु लकोबोदरा ने खेत–खलिहानों में कम करते वक्त, राह चलते समय, जंगलों, पहाड़ों में चलते–चलते गाते–गुनगुनाते और रचते रहे। लेकिन ये रचनाएं लिपिबद्ध नहीं थी।

'पुरखा झारखंडी साहित्यकार और नये साक्षात्कार' पुस्तक में गीता सुंडी लिखती हैं कि "इन्हें सहेज कर रखने के सोच और साधन नहीं थे। तत्कालीन समय में सभी समाज के लोग अपने भाषा–साहित्य को संरक्षित, सुरक्षित और समृद्ध बनाने में प्रयासरत थे। इन सब बातों से लकोबोदरा व्यथित थे। भाषा को जीवंत बनाने, भाषा को विकसित करने में लिपि की भूमिका को नकारा नही जा सकता। इस बात को समझते ही लकोबोदरा ने अपने जीवन का लक्ष्य निर्धारण कर लिया। मन में दृढ़ संकल्प कर लिया। लिपि के आविष्कार का कार्य प्रारम्भ किया। यह कोई साधारण कार्य नहीं था। किसी भाषा के फोनेतिक्स को लिपि और लिपि को भाषा के शब्दों के लिए हुबहू रूप देना, एक बहुत बड़ी चुनौती थी। दूसरी ओर लिपि के बिना मातृभाषा की हुबहू अभिव्यक्ति करना कठिन था।"

उपरोक्त वाक्य से स्पष्ट होता है कि ओत गुरु लकोबोदरा ने अपने समाज की भाषा को बचाने के लिए 'वारङचिति लिपि का आविष्कार किए। लेकिन इस लिपि का आविष्कार नहीं बल्कि इस लिपि के विकास में इन्होंने योगदान दिया है। 'वारङचिति लिपि का अविष्कार तो पहले ही हो चुकी थी लेकिन लिखित रूप में न आने के कारण इस लिपि को कोई नहीं जनता था। इस नई लिपि के अक्षरों के लिए कलकत्ता में ब्लॉग बनाया गया। इसके अधर पर विद्यार्थियों को शिक्षा दी जाने लगी। लकोबोदरा और सुशीला सिंकु ने मिलकर सन 1954 ई. में 'आदि समाज' की स्थापना की।

लकोबोदरा ने समाज की कुरीतियों, अन्धविश्वास, बलि पटता, बुराई और रुढियों पर भी अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए इसे दूर करने की कोशिश की है। इन्होंने आदिवासी समुदाय के विवाह संस्कार और मृत्यु संस्कार में भी संशोधन किया। इसलिए इन्हें 'बोदराबोरोम' कहा गया।

प्यारा केरकेट्टा –

झारखंड राज्य के गुमला जिले में 3 जून सन 1903 ई. में प्यारा केरकेट्टा का जन्म हुआ। प्यारा केरकेट्टा को कॉलेज के दौरान ही उनके मन में समाज सेवा की भावना उत्पन्न हुई। छुट्टियों के दिन वे घर न जाकर रांची में खडिया लोगो के साथ गाँव में चले जाते थे। गाँव के लोगो के साथ राजनीतिक, जाति उत्थान, शिक्षा आदि पर चर्चा करते थे और नाटको के द्वारा लोगो के अंदर चेतना जागृत करते थे। उनका एक ही लक्ष्य था 'शिक्षित होना और शिक्षित करना'। "सन 1949 ई. में इन्होने सिमडेगा में एस.एस. हाई स्कूल की स्थापना की और पूरे इलाके में प्राईमरी, मिडिल एवं हाई स्कूलों का जाल बिछा दिया। बालिका शिक्षा के हिमायती प्यारा मास्टर ने अनेक कन्या पाठशालाओं की स्थापना की। इसके साथ ही उन्होंने अपने निवास के बगल में निर्धन छात्राओं के लिए एक छात्रावास खोला जो आज भी चल रहा है।"

प्यारा केरकेट्टा पेशे से एक शिक्षक थे और झारखंड के सांस्कृतिक नवजागरण अगुआ भी थे। पहले वेजयपाल सिंह मुंडा के साथ आदिवासी महासभा में रहे लेकिन वैचारिक मतभेद के कारण कांग्रेस पार्टी में चले गये। मुख्य धारा की राजनीति में आकर झारखंडी आकांक्षा को स्थापित किया और उसे चुनौती देते हुए आदिवासी सवालों को सामने रखा। आजादी के बाद कांग्रेस की राजनीतिक संस्कृति में परिवर्तन होने के कारण इनका राजनीति से मोह भंग हो गया और ये राजनीति से सन्यास ले लिए। प्यारा केरकेट्टा राजनीति के माध्यम से सामाजिक जीवन में सम्मान और न्याय पाने की अपेक्षा की। सामाजिक विरोधों के बावजूद भी युवा नेतृत्व को आगे बढ़ाया। खड़िया छात्र संघ की स्थापना की। प्यारा केरकेट्टा खडिया और हिंदी में अनेक साहित्यिक रचनाएं भी की हैं। इन्हें खडिया आधुनिक खानी लिखने वाले प्रथम लेखक हैं। खडिया भाषा की इनकी लिखित पहली आधुनिक कहानी 'बेरथ अबिहा' है। इनकी अन्य कहानियाँ है – सानिका असांगो, लोदरो सोमधि, कोरमो जवानी आदि है। आदिवासी गद्य साहित्य की परम्परा को शुरु करने में प्यारा केरकेट्टा की अहम् भूमिका रही है। इनकी लगभग सभी विधाओं में कृति है। श्रम और समय का आदर प्यारा मास्टर जी की प्रवृति में था। प्यारा केरकेट्टा के वंशज वंदना टेटे हैं। वंदना टेटे अपने समाज सुधारक, क्रन्तिकारी विचारों वाले नाना के नाम से 'प्यारा केरकेट्टा फाउण्डेशन' चलाती हैं। इस फाउण्डेशन का उद्देश्य आदिवासी साहित्य में योगदान देने वाले तथा आदिवासी साहित्यकारों की रचनाओं को एक मंच देती हैं। जो समाज के सामने आसानी से पढ़ा और समझा जा सकता है।

डॉ. फ्रांसिस्का कूजुर :–

झारखंड के आदिवासी लेखिकाओं में फ्रांसिस्का कूजुर की नाम सम्मान के साथ लिया जाता है। यात्रा साहित्य में उनकी महत्वपूर्ण योगदान को हिन्दी साहित्य हमेशा याद रखेगा। फ्रांसिस्का कूजुर के बारे में वंदना टेटे 'पुरखा झारखंडी साहित्यकार एवं नये साक्षात्कार' ग्रंथ में लिखते हैं "इतिहास तथा विधि शास्त्र में पढ़ाई करने के बावजूद साहित्य में रुचि रखना वो भी मातृभाषा कुडुख में सभी आदिवासी साहित्यकारों प्रति ये सम्मान की बात है।" फ्रांसिस्का कूजुर की लेखनी आदिवासी समुदाय के लोगों की आवाज को सुनहरे शब्दों में प्रस्तुत करती है और उनके विचारों और अनुभवों को साझा करने में मदद करती है। झारखंड के साहित्य में विशेष रूप से आदिवासी समुदाय के साथ उनकी जीवन शैली और संघर्ष को प्रकट करने में फ्रांसिस्का कूजुर की महत्वपूर्ण रहा है। 'रोहतास गढ़' और 'आदिवासी एवं अंडमान' यात्रा वृतांत लिख कर उन्होंने आदिवासी यात्रा साहित्य को

उन्होंने शिखर तक पहुंचाया। 'हिन्दी कहानी' वेबपोर्टल के अनुसार "उनके द्वारा रचित ग्रंथों में 'बरचा ओंटा रंफ' और 'झारखंड ओंदनजइर', 'उढ़ियारा पिंजड़ा तामयना' (कुड़ख कहानी संग्रह), 'मूसल' (हिंदी कहानी संग्रह) आदि प्रमुख हैं।"

फ्रांसिस्का कूजुर की लेखनी में आदिवासी समुदाय की पहचान सजीव हो गई है, और उन्होंने अपने कहानी और कविताओं के माध्यम से अपने समुदाय की कई महत्वपूर्ण कथाएँ और परंपरा को सभी के सामने लाया।

सुशीला सामद :-

सुशीला सामद हिंदी की पहली महिला आदिवासी कवयित्री रहीं हैं। इनका पहला काव्य संग्रह सन 1935 ई. में 'प्रलाप' है। इसके बाद "सपनों का संसार" इनका दूसरा काव्य संग्रह है। सुशीला सामद के समय में हिंदी की दो चर्चित कवयित्रियां हैं सुभद्रा कुमारी चौहान (1904–1948) और महादेवी (1907–1987)। इनकी रचनाएं महादेवी की रचनाओं की तरह ही काव्य कला के उत्कर्ष पर है। लेकिन सुशीला सामद को हिंदी साहित्य के इतिहास के मठाधीशों ने स्वीकार नहीं किया। इसलिए कि आदिवासी महिलाओं को साहित्य लेखन में श्रेय देने को तैयार नहीं थे। आदिवासियत के प्रबल स्वर को दबाना चाहते थे। इस भेदभाव के कारण सुशीला सामद को जान बूझकर हिंदी साहित्य में उपेक्षा और अनुपस्थित किया गया है। भारतीय समाज में जिस प्रकार स्त्री को उपेक्षित माना जाता है उसी प्रकार आदिवासी साहित्य में भी आदिवासी महिला रचनाकारों को रचनाओं को उपेक्षित किया जाता है। 'प्रलाप' काव्य संग्रह के भूमिका में वंदना टेटे लिखती हैं कि 'भारतीय पत्रकारिता और साहित्य के इतिहास में आदिवासी और महिलाओं दोनों की स्थिति एक समान है। लेखन में भी और लेखक के रूप में भी। लेखन में जहां उन्हें विषय और कथ्य के रूप में नहीं लाया गया या लाया भी गया तो गरिमापूर्ण गरिमा पूर्ण अस्तित्व को नकार कर। वहीं दूसरी ओर उनकी लेखकीय अभिव्यक्ति को लगातार दमित–पीड़ित किया गया। प्रकाशनों में उन्हें स्थान नहीं दिया। अगर अपने दम पर वे अपना प्रकाशन लें भी आए तो उसमें भाषाई त्रुटि, साहित्यिक दोष, सौंदर्यात्मक अनुभूतियों को कमी आदि बताकर पत्रकारिता व साहित्य के मुख्य मंच पर आने से जबरन रोक दिया।'

उपरोक्त वाक्य से स्पष्ट होता है कि आदिवासी स्त्रियां दोयम दर्जे की शिकार होती हैं पहली स्त्री होने की दूसरी आदिवासी स्त्री होने की। इन्हीं में से एक सुशीला सामद हैं। सुशीला सामद सन 1930 के दशक से कविताएं लिखना प्रारंभ कर दी थी। जिस समय हिंदी और आधुनिक हिंदी कविता लेखन की शुरुआत हो रही थी। उस समय भारतीय पटल पर कविता के क्षेत्र में कवयित्रियों की गिनी चुनी उपस्थिति थी। लेकिन सुशीला सामद का जिक्र हिंदी साहित्य के इतिहास में कही नहीं है। इन्हें जान बूझकर कर उपेक्षित किया गया। उस समय सुशीला सामद केवल कविता ही नहीं लिख रही थीं बल्कि वे एक साहित्यिक–सामाजिक पत्रिका 'चांदनी' का संपादन और प्रकाशन भी कर रही थी। वे बिहार में (वर्तमान समय में झारखंड) गांधी की एक मात्र आदिवासी महिला 'सुराजी' आंदोलनकर्ता भी थीं । उन्होंने सामाजिक–सांकृतिक, साहित्यिक के अनेक वैधानिक तत्वों का निर्वाह भी किया है।

निष्कर्ष :-

वंदना टेटे ने अपने लेखनी के माध्यम से झारखंड के आदिवासी साहित्यकारों कीअपने लेखन के माध्यम

से आदिवासी समाज की विशिष्टता और उनकी संस्कृति को सुरक्षित करने का काम किया। उन्होंने अपने लेखन से अपने समुदाय के जीवन संघर्ष, और विस्थापन की त्रासदी, विकास की मार को कविता, निबंध, कहानी के माध्यम से प्रस्तुत किया है और इसके माध्यम से लोगों को उनके मुद्दों के प्रति जागरूक किया है। झारखंड के साहित्यकारों के माध्यम से न केवल साहित्यिक, बल्कि सामाजिक और राजनीतिक दृष्टिकोण में भी एक बदलाव लाने में सफल प्रयास किया गया है, और यह आदिवासी समुदाय को अपने अधिकारों और मुद्दों के प्रति जागरूक किया है। उनका योगदान झारखंड के आदिवासी साहित्य को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण रहा है और उन्होंने अपने समुदाय के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया है। वंदना टेटे झारखंड के आदिवासी साहित्यकारों के माध्यम से आदिवासी समुदाय की विशेष भाषा, परम्पराएँ, और संस्कृति को संरक्षित करने के दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाया। उनके द्वारा लिखे गए कविताएं, कहानियाँ, और निबंध अपने समुदाय के विचारों, मूल्यों, और आदिवासी जीवन के प्रमुख पहलुओं पर ध्यान केंद्रित करते हैं।

संदर्भ सूची :-

1. पुरखा झारखंडी साहित्यकार ए और नये सक्षत्कात, सं. वंदना टेटे, पृष्ठ सं. 12
2. पुरखा झारखंडी साहित्यकार ए और नये सक्षत्कात, सं. वंदना टेटे, पृष्ठ सं. 23
3. पुरखा झारखंडी साहित्यकार ए और नये सक्षत्कात, सं. वंदना टेटे, पृष्ठ सं. 44
4. https://hindikahani.hindi-kavita.com/HK-Francisca-Kujur.php/DOA-7-09-23
5. प्रलाप, वंदना टेटे, प्यारा केरकेटा फाउंडेशन, रांचीवंदना टेटे, पृष्ठ संख्या–7

मो. 9569885090

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 94-99

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

दलित साहित्य में सौन्दर्य शास्त्र

हेमलता

असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी विभागाध्यक्ष),

वीरांगना रानी अवन्तीबाई लोधी राजकीय महिला महाविद्यालय, बरेली, उत्तर प्रदेश

हिन्दी साहित्य की परम्परा में सौन्दर्य शास्त्र संस्कृत साहित्य की परम्परा से ग्रहण किया गया है, जिसका मूल आधार सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् है। यहां सत्य से अभिप्राय है यथार्थ। हिन्दी दलित साहित्यकारों ने इस सौन्दर्य शास्त्र पर प्रश्न चिह्न लगाए और इस सौन्दर्य परम्परा को नकार दिया।

वास्तव में सौन्दर्य का अर्थ है – इन्द्रिय सुख की चेतना। 18वीं शताब्दी में एलेक्जैण्डर वामगार्टन ने सर्वप्रथम 'एस्थेटिक्स' शब्द का प्रयोग किया। एस्थेटिक्स ग्रीक भाषा का शब्द है, जिसे हिन्दी में 'सौन्दर्य शास्त्र' कहा जाता है। प्रसिद्ध आलोचक डॉ रामविलास शर्मा का मानना है कि 'प्रकृति मानव जीवन तथा ललित कलाओं के आनन्ददायक गुण का नाम सौन्दर्य है।'

दलित साहित्य से अभिप्राय मानवीय सरोकारों और संवेदनाओं की यथार्थवादी अभिव्यक्ति है, यानी ऐसा साहित्य, जिसमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को रूपायित या अभिव्यक्त किया है। इन्होंने अपने जीवन संघर्ष में सामाजिक विद्वेष और विषमताओं की विदग्ध वेदना को भोगा है। यह कला के लिए सृजित नहीं किया जा रहा है, बल्कि जीवन की और जीवन की जिजीविषा की अभिव्यक्ति है। इस विचारधारा में मनुष्य को मनुष्य माना गया है और यह सामाजिक विषमताओं से मुक्ति का आग्रह करती है, अर्थात यह कहती है कि समता, बंधुत्व की भावना को प्रतिष्ठित करके ही मनुष्य की निजता स्थापित होगी। यह वर्ण–व्यवस्था से उपजे जातिवाद का विरोध करती है। इस साहित्य का विरोध सवर्ण सनातनी ब्राह्मणवादी व्यवस्था से है, इसलिए पारम्परिक साहित्य के मूल्यों और मानदण्डों से अलग नए सौन्दर्यशास्त्र की स्थापना करता है। बाबूराव बागुल ने कहा था, मनुष्य की मुक्ति को स्वीकार करने वाला, मनुष्य को महान मानने वाला वंश, वर्ण और जाति श्रेष्ठत्व का प्रबल विरोध करने वाला साहित्य ही दलित साहित्य है।

दलितों के अनुसार, आत्मचेतना और विद्रोही साहित्य के लिए परम्परागत सौन्दर्य शास्त्र के तत्वों को आधार बनाकर अभिव्यक्ति संभव नहीं है, क्योंकि सौन्दर्य के लिए सामाजिक यथार्थ एक विशेष तत्व है। कल्पना और आदर्श की नींव पर खड़ा साहित्य वर्तमान परिप्रेक्ष्य में ही नहीं, बल्कि कभी भी प्रासंगिक नहीं हो सकता। किसी भी साहित्य के लिए वैचारिक प्रतिबद्धता और वर्तमान की दारुण विसंगतियां ही उसे प्रासंगिक बनाती हैं। दलित साहित्यकार भी उन विषम परिस्थितियों में अपने अस्तित्व और अस्मिता की तलाश करते हैं, इसलिए दलित साहित्य की भाषा, बिम्ब, प्रतीक, भाव–बोध परम्परावादी साहित्य से भिन्न है, उसके संस्कार भिन्न हैं।

दलित मुक्ति आन्दोलन में 'आत्मचेतना' की रचनात्मक अभिव्यक्ति है। दलितों को अपने अस्तित्व के लिए लम्बा संघर्ष करना पड़ा है, और यह परम्परा गौतम बुद्ध, चार्वाक, पेरियार, महात्मा फूले और बाबासाहेब तक निरन्तर प्रवाहित होती रही। बाबासाहेब वर्ण–व्यवस्था और जाति–व्यवस्था को निर्मूल करने के लिए सामाजिक व्यवस्था को जड़ से बदलने की बात करते हैं, क्योंकि वर्णवादी–व्यवस्था अतार्किक है और जन्म से जुड़ी है। वह मानव को मानव मानने पर बल देते हैं। वह अज्ञान के अंधेरे को चीरकर, मानवतावाद का विचार लेकर, समतावादी समाज बनाने के निश्चय के साथ पुरातनवादी विचारों के प्रतिरोध में परिवर्तनवादी विचार लेकर रचनात्मकता और सृजन के क्षेत्र में प्रविष्ट हुए। 30 मई, 1930 में मुंबई की एक सभा में बाबासाहेब ने कहा, 'जो धर्म एक को ज्ञानी बनाकर दूसरे को अज्ञानी रखे, वह धर्म नहीं, लोगों को बौद्धिक गुलाम बनाकर रखने वाला जेलखाना है। जो धर्म एक के हाथ में शस्त्र देता है और दूसरे को निःशस्त्र करने का आदेश देता है, वह धर्म न होकर परतन्त्रता की बेड़ी है। जो धर्म कुछ लोगों को जीविकोपार्जन की खुली छूट देता है और कुछ लोगों को जीविकोपार्जन के लिए दूसरे पर निर्भर रहने का आदेश देता है, वह सबका धर्म न होकर कुछ स्वार्थियों का धर्म है।'[1]

सामाजिक–समता का स्वप्न दलित साहित्यकार सदैव देखते हैं। ऐसा ही एक प्रखर स्वर नामदेव ढसाल की कविता में अभिव्यक्त हुआ है, वह नए समतावादी समाज का स्वप्न देखते हुए कहते हैं –

मेरे लहू में अनगिनत सूर्य बिम्ब जन्मे हैं
कितने दिनों तक सहेंगे
यह बंदीवास
क्या ऐसे ही बने रहेंगे युद्ध कैदी
वह देखो रे मेरे अस्मिता का प्रकाश
आकाश भर में फैल चुका है।
मेरी इन्कलाब की घोषणा चारों दिशाओं में गूंज उठी।
मेरे लहू में अनगिनत सूर्य बिम्ब जन्मे हैं।[2]

दलित साहित्य का विद्रोह मानव निर्मित भेदभाव मूलक विचारधारा और उसे अपरिवर्तनीय बनाने वाले धर्म से है। अतीत से वर्तमान की राह तलाशते हुए शोषक अघोरी संस्कृति को वे धिक्कारते हैं –

कब तक चलता रहेगा भेदभाव का प्रपंच।
हम बहिष्कृतों की तरह गांव से बाहर कर दिए
इसमें हमारा दोष क्या हम
देश के बाहर तो नहीं हैं।[3]

दलित साहित्यकारों ने सनातनी धर्मग्रंथों द्वारा स्थापित सामाजिक संरचना को न केवल नकारा है, बल्कि सार्वजनिक तौर पर उस कट्टरतावादी पुरोहितवाद का पूर्णतः निषेध भी किया है। दलित साहित्यकार ऐसे धार्मिक ग्रंथों को पूर्णतः नकारते हैं, जो उनके अस्तित्व को नकारते हैं। वह विद्रोहात्मक तेवर अपनाते हुए कहते हैं –

तुम्हें और तुम्हारे धर्म ग्रंथों को
तुम्हारी संस्कृति को

मैं गालियों से नवाजता हूं।
तुम्हारे पाखंडीपन की जहालत से परिचित हो चुका हूं
मैं एक जागरूक व्यक्ति हूं, इसलिए बोल पा रहा हूं।(4)

दलित साहित्यकार अस्पृश्यता, अपवित्रता को जन्म देने वाली भाग्यवादी ईश्वरवादी परम्पराओं को ध्वस्त करते हुए सामाजिक संरचना के परिवर्तन की बात करते हैं। कवि इस व्यवस्था को पूर्णतः बदलने की बात करते हैं –

ऐसी हरामखोर परम्पराएं नष्ट करनी होंगी
उन पर विध्वंस का हल चलाकर
मेरा उन सभी नियतिवादियों से बैर है
मधुर गीत गाकर अस्पृश्यता के, इस अभेद्य करने वाले
सगुण–निर्गुणवादी, जो शब्द को ही प्रमाण मानते रहे
वे मेरे बैरी हैं, जिन्होंने मुक्त होने से रोका।(5)

दलित साहित्य का सृजन स्वांतः सुखाय नहीं होता, बल्कि वह अपने जीवन के यथार्थ को प्रतिबिम्बित करते हुए अपनी स्वतंत्रता व अस्मिता की तलाश करता है, इसलिए उनके साहित्यिक सौन्दर्य में नकार, आक्रोश और सामाजिक व्यवस्था को बदलने का अति उत्साह दिखाई देता है। दलितों को सदैव मुख्यधारा से काटकर रखा गया, उन्हें जीविकोपार्जन के साधनों से वंचित कर दिया गया। उन्हें मुख्य गांव से बहिष्कृत कर बाहर जीने के लिए मजबूर किया गया। सो, दलित साहित्यकार इस नारकीय जीवन के संदर्भों और परिवेशगत बिम्बों, प्रतीकों और मिथकों के माध्यम से अपनी यथार्थपरक अनुभूति को अभिव्यक्त करते हैं, तो उन्हें परम्परागत सौन्दर्यशास्त्र की सीमाओं को पार करना ही था, क्योंकि पीड़ा, संत्रास, अभाव, वंचना, अपमान और बहिष्कृतों की वेदना की अभिव्यक्ति अलंकृत शैली और कोमल शृंगार रस संचार को प्रश्रय देने वाली तो नहीं ही होगी। इस पर साहित्यकार हरपाल सिंह अरुष का मानना है – 'यह स्पष्ट हो गया है कि शोषक और शोषित की परिभाषाओं के बीच से भाग्यवाद निकल गया है, सोचने के तरीके, बोलने की शैली आदि सब कुछ अलग–अलग है, तो दोनों साहित्य में अलग–अलग तत्व तो होंगे ही।'(6)

हिन्दी दलित साहित्य की भाषा सहज, सरल तथा आम बोलचाल की भाषा है। दलित जब किसी रचनात्मक क्षेत्र में प्रवेश करते हैं, तो वह अकेले प्रवेश नहीं करते, बल्कि उनके साथ उनका पूरा परिवेश, संस्कार और समाज साहित्य में प्रवेश करता है, इसलिए उनके साहित्य में दलित बस्तियों की सारी सड़ांध और गालियों ने भी प्रवेश किया। भाषा पर विमल थोरात का कहना है – 'इन कवियों ने भाषा की सृजनात्मक क्षमता को अपनी प्रतिभा के द्वारा उद्घाटित कर समकालीन रचनाकारों के सामने एक आदर्श प्रस्तुत किया। भाषा के संस्कृतनिष्ठ संस्कारों के समानान्तर इन्होंने ऐसी भाषा की खोज की, जिसका उद्गम स्थान परिष्कृत या अभिज्ञान सौन्दर्य बोध नहीं, बल्कि दलित जीवन यथार्थ है।'(7)

हिन्दी दलित साहित्य में गरीबी, भुखमरी, बेबसी और बेरोजगारी आदि के बिम्ब उभरते हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने लिखा है– 'दलित कविता में बिम्ब दलित जीवन की त्रासदी है और उसके यथार्थ को व्यक्त करते हैं। दलित कविता में अंधेरा, आसपास के परिवेश में गंदगी की सड़ांध, सीलन–भरे तंग मकानों में सिसकती

जिन्दगी दलित जीवन की त्रासदी और उसके यथार्थ को व्यक्त करते हैं, जो उनके जीवन का अविभाज्य घटक हैं। उन वस्तुओं को दृश्य बिम्ब के स्थान पर रखकर दलित कवि इन्हीं वस्तुओं में अपने जीवन के प्रतिबिम्ब ढूंढता है।'[8]

कवयित्री डॉ. सुशीला टांकभौरे की कविता में विद्रोहिणी स्त्री का बिम्ब देखा जा सकता है –

तुम्हें शर्म क्यों नहीं आई?
गल चुकीं मोमबत्तियां
आज वह जंगल की आग है
बुझाए न बुझेगी
आग का दरिया बन जाएगी
उसके तेवर पहचानो
संभालो पुराने तेवर
थान के थान परिधान
नंगेपन पर उतरकर
पुरुष के सर्वस्व को नकार कर
नीचा दिखाएगी।[9]

दलितों के शोषण, उत्पीड़न और अन्याय की लम्बी परम्परा को देखते हुए हमें यह बिम्ब सहज, सरल यथार्थ और बेहद सजीव लगते हैं।

प्रतीकों के माध्यम से दलित कवियों ने अपनी अभिव्यक्ति को और अधिक शक्तिशाली बनाया। पेड़, भेड़िए, जंगली सूअर और कुत्ते असल में शोषण, दमन और गुलामी के प्रतीक हैं। इसी तरह कलम, सूर्योदय आदि दलित मुक्ति के प्रतीक रूप में सामने आए। इस कविता में कंवल भारती (शम्बूक) लिखते हैं –

शम्बूक / तुम्हें मालूम नहीं / तुम्हारे वध पर / देवताओ ने पुष्पवर्षा की थी
कहा था – बहुत ठीक, बहुत ठीक / क्योंकि तुम्हारी हत्या दलित चेतना की हत्या थी
स्वतन्त्रता, समानता और न्यायबोध की हत्या थी / किन्तु शम्बूक / तुम आज भी सच हो
आज भी दे रहे हो शहादत / सामाजिक परिवर्तन के यज्ञ में।[10]

हिन्दी के दलित साहित्य का प्रतीक विधान भी समय की आवश्यकता पर यथार्थ और सजीव अभिव्यक्ति के लिए ही गढ़ा गया है और निरंतर नए–नए प्रतीक गढ़े और रचे जा रहे हैं।

दलित साहित्य स्वतन्त्रता और समानता का आग्रह करता है। वह सनातनी व्यवस्था को निरस्त करते हुए नए मानवतावादी मूल्यों की स्थापना करता है। इसी के अंतर्गत वह हिन्दू धर्म के सभी मिथकों पर प्रचंड प्रहार करते हैं। वह ईश्वर, आत्मा, मंदिर, गीता और नायकों पर चोट करते हैं। वरिष्ठ कवि मोहनदास नैमिशराय ईश्वर की मौत की घोषणा इस प्रकार करते हैं –

ईश्वर की मौत / उस दिन होती है / जब बनता है कोई मंदिर या मठ
जहां बैठता है कोई / ठग / लुटेरा / गुमराह करने वाला / ईश्वर की मौत उस दिन होती है / जब
किसी महिला को बनना पड़ता है / देवदासी / जाना पड़ता है वेश्यालय।[11]

बदलते परिवेश एवं नई परिस्थितियों में इन मिथकों के अर्थ और प्रयोग पूर्णतः बदल चुके हैं और अब वह परम्परागत मिथकों को भी सनातनवादी व्यवस्था की तरह बदलना चाहते हैं।

दलित साहित्य की भाषा दलित जीवन के गहन अनुभवों से जुड़ी भाषा है, जिसने दलितों की भाषा की रचनात्मकता में शामिल किया है। ग्रामीण परिवेश, गली–मोहल्लों, दैनिक जीवन से जुड़े संदर्भों से रची–बसी भाषा ही दलित साहित्य की भाषा है, जिसे विद्रोह की भाषा भी कहा गया है। दलित रचनाकार सामाजिक उत्पीड़न से उपजी वेदना को शब्दशः अभिव्यक्त करते हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी कविता की पंक्तियों में दलित जीवन की दारुण स्थिति का वर्णन करते हुए कहते हैं –

कच्चे घर में
जलते दिये की रोशनी पर
कब्जा करके बैठ गए हो तुम
मेरी पिंडलियों
और मेरी भुजाओं के मांस से बनी है बाती
हड्डियों को निचोड़कर
निकाला गया है तेल
किन्तु इतना याद रखो
जिस रोज इन्कार कर दिया
दिया बनने से मेरे जिस्म ने
अंधेरे में खो जाओगे
हमेशा–हमेशा के लिए।[12]

सारांश रूप में कह सकते हैं कि दलित साहित्य में वर्णवादी व्यवस्था, ब्राहमणवादी समाज व्यवस्था, सामंती व्यवस्था से निर्मित दलितों के नारकीय जीवन का वेदनामय रूप दिखाई देता है, जिसे अभिव्यक्त करने के लिए दलित साहित्यकारों ने सौन्दर्य शास्त्र के नए प्रतिमान गढ़े हैं। दलित साहित्य ने मानवतावाद और आशावाद की स्थापना करने का प्रयास किया है। उन्होंने समाज में समता, स्वतन्त्रता और भाईचारे की भावना की पुरजोर प्रतिबद्धता के साथ अपनी उपस्थिति सवर्ण साहित्य के साथ–साथ समाज में भी दर्ज कराई है। इसके लिए उन्होंने पारम्परिक रूप से स्थापित सौन्दर्य शास्त्र के मानदंडों को नकारते हुए नया सौन्दर्य शास्त्र ही गढ़ डाला है। दलित साहित्य की भाषा यथार्थ से जुड़ी है, उन्होंने नए प्रतीकों के साथ–साथ पुराने प्रतीकों को भी नया अर्थ दिया है। कविता में जो बिम्ब प्रस्तुत होते हैं, वे दलितों के जीवन की अभिव्यक्ति हैं। प्रकृति के बिम्बों को सामाजिक सरोकारों और मानवीय दृष्टिकोण में ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. दलित साहित्य की भूमिका – हरपाल सिंह अरुष – पृष्ठ 131
2. गोल पिठा – नामदेव ढसाल – पृष्ठ 13
3. उत्थान गुफा – यशवंत मनोहर – पृष्ठ 15

4. उत्थान गुफा – यशवंत मनोहर – पृष्ठ 15
5. उत्थान गुफा – यशवंत मनोहर – पृष्ठ 15
6. दलित साहित्य की भूमिका – हरपाल सिंह अरुष – पृष्ठ 149
7. मराठी दलित कविता और साठोत्तरी हिन्दी कविता में सामाजिक और राजनीतिक चेतना – विमल थोरात – पृष्ठ 147
8. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र – ओमप्रकाश वाल्मीकि – पृष्ठ 85
9. आज की खुद्दार औरत, कविता – डॉ. सुशीला टांकभौरे, युद्धरत आम आदमी, त्रैमासिक पत्रिका, हजारीबाग, अंक 31, जुलाई–सितम्बर 1995 – पृष्ठ 67–68
10. आज का समय : सं. डॉ. तेज सिंह – आज के समय की दलित कविता (सम्पादकीय) – पृष्ठ 22
11. शिखर की ओर : सं. डॉ. एन. सिंह – पृष्ठ 358
12. ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविता – सदियों का संताप – पृष्ठ 25

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 100-104

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

दलित विमर्श की छलनी में 'रंग कितने संग मेरे'

डॉ इन्दू के. वी.

सहायक आचार्या, हिन्दी विभाग, केरल विश्वविद्यालय, तिरुवनंतपुरम, केरला, 695581

दलित विमर्श और साहित्य का लक्ष्य दलित समाज का उद्धार है। दलित और गैर दलित लेखक दलितों के उद्धार के लिए लिखते है और इस दृष्टि से दोनों दलित साहित्य के अंतर्गत आते हैं। लेकिन सहानुभूति और स्वानुभूति की बातों को नजरअंदाज नहीं कर सकते। दलितों के जीवन यथार्थ को रेखांकित करने में गैर दलित साहित्यकार सफल रहे है पर दलितों की वेदना की तीक्ष्णता और मुक्ति का मार्ग दलित लेखकों की रचनाओं में घुल मिल गया है क्योंकि यह उनके द्वारा भोगा गया यथार्थ है। दलित संघर्ष और चेतना का प्रसार इसमें देख सकते हैं। अपने समाज के लोगों को वे साहित्य रचनाओं के माध्यम से जागृत करना चाहते है। आत्मसम्मान के साथ इस समाज में जीना चाहते हैं।

दलन या दमन किये गए, शोषित एवं हाशियेकृत सभी लोगों को या सर्वहारा वर्ग को दलित कहने की रीति आज प्रचलित है। केवल शब्दार्थ के आधार पर परखें तो इसमें सच्चाई है। लेकिन यह सर्वहारा सभी दृष्टियों से शोषण का शिकार नहीं। स्वयं मोहनदास नैमिशराय की राय में दलित शब्द मार्क्स प्रणीत सर्वहारा शब्द के लिए समानार्थी लगता है, लेकिन इन दो शब्दों में पर्याप्त भेद है। दलित की व्याप्ति अधिक है, तो सर्वहारा की सीमित। दलित के अंतर्गत सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक शोषण तक सीमित है। प्रत्येक दलित व्यक्ति सर्वहारा के अंतर्गत आ सकता है, लेकिन प्रत्येक सर्वहारा को दलित कहने के लिए बाध्य नहीं हो सकते अर्थात सर्वहारा की सीमाओं में आर्थिक विषमताओं का शिकार वर्ग आता है, जबकि दलित विशेष तौर पर सामाजिक विषमता का शिकार होता है। तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था के प्रति संघर्ष करने वाला साहित्य है दलित साहित्य। अस्तित्व की खोज, अधिकारों एवं दायित्वों का बोध, धार्मिक एवं सांस्कृतिक रूढीवादिता का विरोध, अनीतियों का प्रतिरोध, शिक्षा के महत्व का एहसास, सामाजिक हैसियत के लिए संघर्ष आदि दलित साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियां हैं। दलित साहित्यकार गांधी और मार्क्स से ज्यादा आंबेडकर को माना। आंबेडकर विचारधारा से वे प्रभावित थे। अम्बेडकर के 'शिक्षित हो जाओ, संगठित हो जाओ, संघर्ष करो' नारा दलित साहित्य में सबसे अधिक गूजती है।

दलित साहित्य में सबसे अधिक चर्चित विधा दलित आत्मकथाएं हैं। आंबेडकर की आत्मकथा 'मैं कैसे बना' से दलित लेखक काफी प्रेरित हुए थे। दलित आन्दोलन का प्रारंभ महाराष्ट्र में हुआ था और दलित साहित्य लेखन की शुरुआत भी। दया पवार की आत्मकथा 'अछूत' और शरणकुमार लिम्बाले की आत्मकथा 'अक्करमाशी' सभी भाषाओँ दलित लेखकों को विशेषकर हिन्दी के लेखकों को बहुत अधिक प्रभावित किया था। हिन्दी में सबसे

पहले मोहनदास नैमिशराय की आत्मकथा 'अपने अपने पिंजरे' 1995 में प्रकाशित हुई। इसके बाद ओमप्रकाश वाल्मीकि (जूठन), कौसल्या बैसंत्री (दोहरा अभिशाप), कैलाश नाथ (जाती अपराध), सूरजपाल चौहान (तिरस्कृत), माताप्रसाद (झोंपड़ी से राजभवन), सीताराम सहयोगी (मेरा गाँव और जीवन यात्रा), श्यामलाल जोदिमा (एक भंगी कुलपती की अनकही कहानी), श्यौराजसिंह बेचन (मेरा बचपन मेरे कन्धों पर), रूप नारायण सोनकर (नागफनी), तुलसीराम (मुर्र्दाहिया), धर्मवीर (मेरी पत्नी और भेड़िया), सुशीला टाकभौरे (शिकंजे का दर्द), कौशल पंवार (बवन्डरों के बीच) आदि अनेक दलित लेखकों की अत्मकथाएं प्रकाशित हुई। मोहनदास नैमिशराय के ही दूसरी आत्मकथा अपने अपने पिंजरे का दूसरा भाग 2000 में और तीसरा भाग 'रंग कितने संग मेरे' (2019) में प्रकाशित हुई।

'रंग कितने संग मेरे' में दलित आत्मकथाओं में अक्सर दिखाई देने वाले सारी प्रवृत्तियां देखने को मिलती है। नैमिशराय जी बचपन से दलितों पर होने वाले अत्याचारों को देखा पहचाना था और बड़े होकर इसके इन अनीतियों के विरुद्ध कुछ करना चाहता था। इसलिए वह अपनी नौकरी छोड़कर सामाजिक कार्यकर्ता बने। डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर की विचारधारा से प्रभावित होकर 'बामसेफ' (BAMSEF) में भाग लेकर काम करने लगे। कांशीराम ने इसकी स्थापना की थी। वे दलितों की उन्नति और अधिकार के लिए सामाजिक और राजनीतिक स्तर पर अनेक कार्य करते थे। उन्होंने दलितों के लिए दलित शोषित समिति (डी एस एस) और बहुजन समाज पार्टी की स्थापना की। नैमिशराय इन संस्थाओं में भाग लेकर दलितों की उन्नति, अधिकार और आरक्षण के लिए कार्य करते रहे। इसके साथ उन्होंने पत्रकारिता भी किया बहुजन संघ घटक नामक अखबार को चलाने के लिए उन्होंने बहुत यात्राओं को भी सहा। दलित समाज में जागरण लाने के लिए उन्होंने खूब मेहनत की और इसके बीच अपने परिवार को ज्यादा महत्व नहीं दिया। इसलिए उन्हें अपने बेटे को भी खोना पड़ा। बेटे की मृत्यु के समय वह घर पर नहीं था। इसलिए उनकी पत्नी और परिवार वाले उन पर ही दोष आरोप लगाया पड़ोसियों ने भी व्यवहारिक जीवन जीने का उपदेश दिया– "नैमिशराय जी बुनियादी सीखो, लिखो, पढ़ो लेकिन अपने परिवार को भी पढ़ना सीखो परिवार के सदस्य भी कुछ कहते हैं। उनकी भी भाषा होती है। वह आपसे कुछ उम्मीद रखते हैं। पहले उनकी उम्मीदों को पूरा करो फिर समाज सेवा के चक्कर में पड़ो। जीवन की भाषा समझो और उस पर चलो।"[1]

नैमिशराय जी अपनी आत्मकथा में दलितों की दयनीय स्थिति के सबसे प्रमुख कारण के रूप में उनकी आर्थिक स्थिति बताया। सामाजिक प्रतिष्ठा के पीछे का सर्वप्रथम कार्य लोगों की आर्थिक स्थिति है, लेकिन लेखक ने अपने जीवन में आर्थिक स्थिति से ज्यादा महत्व स्वाभिमान को दिया। लेखक के शब्दों में "स्वाभिमान बहुत कुछ होता है वही तो आदमी की ताकत शक्ति होती है। घर की दीवार पर लगे बाबासाहब के चित्र को देखो। अगर उनके भीतर स्वाभिमान नहीं होता तो आज कौन उन्हें जानता? कौन उन्हें याद करता? कौन उन्हें सलाम मारता? कौन उनके जन्म दिवस मनाता?[2] लेकिन धन का भी अपना महत्व है। लेखक के ही शब्दों में "पैसा ना हो तो जीवन बेरौनक हो जाता है।"[3] धन के अभाव में उनकी लेखकीय जीवनयात्रा आसान नहीं था, उन्होंने अपनी आत्मकथा में कहा है कि "मैं सड़क का आदमी था और सड़क का लेखक भी। शब्द ही तो थे जो चाबुक का काम करते थे। फर्क सिर्फ इतना था कि चाबुक की आवाज नहीं होती थी।"[4] उनके अर्थाभाव और उनके द्वारा भोगी गयी पीड़ा का स्वर हम इन्हीं शब्दों से समझ सकते हैं।

दलित विमर्श के पीछे अनेक आंदोलनों का भी हाथ है जैसे 'मराठवाडा विश्वविद्यालय आंदोलन', 'मनुवाद हटाओ आंदोलन आदि। मराठवाड़ा विश्वविद्यालय की स्थापना में अंबेडकर का बहुत बड़ा हाथ है इसलिए मराठवाड़ा विश्वविद्यालय को अंबेडकर के नाम देने के लिए दलितों ने जो आंदोलन चलाया वही मराठवाडा विश्वविद्यालय आंदोलन है जिसका उल्लेख मोहनदास नैमिशराय की आत्मकथा में हैं। इस आंदोलन के लिए हजारों दलितों ने नागपुर से पैदल चलकर औरंगाबाद पहुंच गए। भूखे, प्यासे होकर बाबा साहेब की जय जयकार करते हुए आए लोगों को पुलिस ने औरंगाबाद के 100 किलोमीटर दूर रोककर लाठीचार्ज किए। हजारों आंदोलनकारियों को जेल में भरा दिया। इस आंदोलन के विरोधियों ने दूसरे विश्वविद्यालय बनाने का सुझाव दिया। लेकिन दलित मराठा विश्वविद्यालय को ही बाबा साहेब का नाम देने के लिए दलितों ने हठ किया। देश के दलितों को आह्वान देते हुए दलित नेता प्रोफेसर कावडे ने कहा कि "भेड़ बकरियों की भांति 100 दिन जीने से अच्छा है स्वाभिमान पूर्वक 10 दिन जिए।"[5] 'हम न्याय चाहते हैं', 'मराठवाड़ा विश्वविद्यालय का नाम बाबासाहेब का नाम पर होना चाहिए','भारत के दलित स्वाभिमान का जीवन चाहते हैं' आदि नारे लगाते हुए वे संसद भवन में बाबा साहब की प्रतिमा पर हारार्पण किया था। यह आंदोलन सफल हुए और उस समय के मुख्यमंत्री शरद पंवार ने मराठा विश्वविद्यालय को अंबेडकर के नामांतरण की औपचारिक घोषणा की।

उस समय का दूसरा आंदोलन था 'मनुवाद हटाओ आंदोलन'। राजस्थान के उच्च न्यायालय में सवर्णों ने मनु की मूर्ति स्थापित करवा दी थी। उसी समय बाबासाहेब अंबेडकर की मूर्ति हाईकोर्ट के बाहर एक चौराहे के कोने में लगाई थी। अंबेडकर मनुवाद के विरोधी थे। उन्होंने जब महाड में सरकारी तालाब में पानी पीने के लिए दलितों को अधिकार मिलने के लिए जो आंदोलन चलाया था उसी दौरान सार्वजनिक रूप से मनुस्मृति को जलाया था। दलितों की मूर्ति स्थापित करने के विरुद्ध आंदोलन चलाया। उनके अनुसार उन्हें मनुवादी नहीं मानवतावाद चाहिए। अंत में न्यायाधीशों ने मनु की मूर्ति वाहन से हटाने का प्रस्ताव पारित किया लेकिन इस प्रस्ताव के विरोध में राजस्थान विश्व हिंदू परिषद एवं बजरंग दल के अध्यक्ष आचार्य धर्मेंद्र महाराज एवं सोमेंद्र शर्मा ने याचिका दायर की और उसके खिलाफ स्थगन का आदेश प्राप्त किया। दलित चिंतकों के अनुसार मनुमत और मानवीय अधिकार परस्पर विरोधी है। मनु विचार और न्यायपालिका एक साथ नहीं रह सकते। क्योंकि मनु न्याय प्रणाली के लिए कलंक है।"[6] दलित संगठनों के इस 'मनुवाद हटाओ आंदोलन' के बाद सरकार ने मनु की प्रतिमा और राजस्थान हाईकोर्ट की सुरक्षा बढ़ा दिया था। मनुवाद के कारण ही वर्ण भेद और जातीयता के भेद समाज में व्याप्त था। केवल दलित ही नहीं बल्कि अनेक भारतीय नेताओं ने जाति व्यवस्था का विरोध किया था। सवर्णों द्वारा निम्न जाति के लोगों के शोषण किस प्रकार किए जा रहे हैं इसका ज्वलंत चित्रण आत्मकथा में मिलता है।

एक दलित होने के कारण नैमिशरायजी को बचपन से ही अनेक वेदनाओं को झेलना पड़ा था। शासक ही देश में होने वाले जातीय भेदभाव को छिपाकर रखते हैं। जातीयता को मिटाने के लिए वे कुछ भी नहीं करते हैं। नैमिशराय के शब्दों में टोपियाँ बदल जाती है लेकिन नेताओं के मुखोटे और चरित्र बदल नहीं जाती। अनेक हत्याकांडो के बारे में भी लेखक ने अपनी आत्मकथा में उल्लेख किया है। पटना जिले में स्थित बेलछी गांव में जातीय संघर्ष के दौरान 11 दलितों की हत्या हुई थी। हत्यारों ने इन सब को गोली मारने के बाद आग में डाल दिया था। आपातकाल के समय बिहार में दलितों की हत्या हुई थी। लेकिन उस समय के शासक उनकी

शिकायतें ठीक तरह से सुनने को भी तैयार नहीं था। पुलिस भी कभी भी उनका साथ नहीं दिया था। इसके बारे में नैमिशराय जी कहते हैं "जब पुलिस ही रक्षक के स्थान पर भक्षक का रूप धारण कर ले तब सवर्णों को सताए दलित लेखनी के माध्यम से अपने दुख और अनुभूति को कैसे व्यक्त न करें इन सब के खिलाफ आक्रोश तो उठाना ही था।"[7]

नैमिशराय 'हरिजन' शब्द के विरोधी थे। लोगों के विचार में 'हरिजन' शब्द भगवान अर्थात हरी के निकट का सूचक है। लेकिन लेखक इससे सहमत नहीं है। ऐसे विचार वालों से उनका सवाल यह है कि "क्या हरिजनों के अतिरिक्त बाकी सभी को क्यों दुर्जन नहीं कहलाते हरिजन शब्द अछूत जाति के लोगों को उनका उठाने की अपेक्षा उन्हें सैकड़ों वर्ष और पीछे कर दिया है।"[8]

दलितों की स्थिति में बदलाव लाने के लिए राजनीति एक अच्छे उपकरण के रूप में ले सकती थी। लेकिन राजनीतिक क्षेत्र में हमेशा छल और कपट ही देखते थे। नैमिशराय इन राजनीतिक नाटकों के विरोधी थे। राजनीति के संबंध में उन्होंने अपनी आत्मकथा में बताया था कि "राजनीतिक पद पर भड़वा होकर किसी केंद्रीय मंत्री के तलवे चाट कर कहीं विधायक या संसद बनकर फिर चोर दरवाजे से राज्यसभा में आकर ठलुओं की संगत कर बैठना मैं नहीं चाहता था।"[9] नैमिशराय जी कांशीराम के राजनैतिक हरकतों के विरोधी बने थे। राजनीति से वह हमेशा दूर ही रहना चाहता था। वे लिखते हैं कि "राजनीति के बदलते मूल्य, नैतिकता में गिरावट, संघर्ष से भागती हुई नई पीढ़ी, इन सब की कशमकश में मैं यानी एक आदत लेखक"।[10]

राजनीति के सामान नैमिशराय जी धार्मिक रूढी वादिता का भी विरोधी है। एक बार उत्तर प्रदेश के शिक्षा मंत्री संकटा प्रसाद शास्त्री ने अपने एक भाषण में रामायण बकवास है– कहने पर हिंदू समाज के रूढ़िवादी धर्मान्ध लोगों ने तीव्र प्रतिक्रिया किया था और हिंदू धर्म का अपमान बताते हुए उनसे अपने शब्द वापस लेने को कहा था। नैमिशराय कहते हैं कि "संकटा प्रसाद शास्त्री ने साहस के साथ सच्चाई को उजागर किया है। धार्मिक विचारों से ऊपर उठाकर जो भी व्यक्ति रामचरित का अध्ययन करेगा उसे ऐसा लगेगा कि रामचरितमानस धार्मिक ग्रंथ है ही नहीं जो देश के प्रतिशत शूद्रों की भावनाओं को ठेस पहुंचने वाला हो जो भारतीय नारी का अपमान करने वाला हो जो मानव जाति में ऊंच–नीच भेदभाव की भावना पैदा करने वाला हो वह कभी भी धार्मिक ग्रंथ नहीं हो सकता।"[11] धर्म के नाम पर दूसरों के शोषण करनेवालों के विरोध में लेखक अपनी तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं।

संक्षेप में कह सकते हैं कि मोहनदास नैमिशराय ने अपनी आत्मकथा में दलितों के विरुद्ध होने वाली अत्याचारों एवं शोषण का सच्चा चित्र प्रस्तुत किया है। दलितों की प्रगति के लिए उनका शिक्षित होना, स्वावलंबी होना, आत्मसम्मान कायम रखना आदि अनिवार्य हैं लेकिन जातीयता जैसी सामाजिक विसंगति से समाज को मुक्त करने के लिए सिर्फ दलितों को शिक्षा देने से, उनकी आर्थिक स्थिति में बदलाव लाने से कुछ भी नहीं होता। वास्तव में समाज की मानसिकता में भी बदलाव आने की जरुरत है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. मोहनदास नैमिशराय, रंग कितने मेरे संग, पृ. 202, वाणी प्रकाशन, 2019
2. मोहनदास नैमिशराय, रंग कितने मेरे संग, पृ. 47, वाणी प्रकाशन, 2019

3. मोहनदास नैमिशराय, रंग कितने मेरे संग, पृ. 47, वाणी प्रकाशन, 2019
4. मोहनदास नैमिशराय, रंग कितने मेरे संग, पृ. 152, वाणी प्रकाशन, 2019
5. मोहनदास नैमिशराय, रंग कितने मेरे संग, पृ. 27, वाणी प्रकाशन, 2019
6. मोहनदास नैमिशराय, रंग कितने मेरे संग, पृ. 59, वाणी प्रकाशन, 2019
7. मोहनदास नैमिशराय, रंग कितने मेरे संग, पृ. 63, वाणी प्रकाशन, 2019
8. मोहनदास नैमिशराय, रंग कितने मेरे संग, पृ. 59, वाणी प्रकाशन, 2019
9. मोहनदास नैमिशराय, रंग कितने मेरे संग, पृ. 117, वाणी प्रकाशन, 2019
10. मोहनदास नैमिशराय, रंग कितने मेरे संग, पृ. 174, वाणी प्रकाशन, 2019
11. मोहनदास नैमिशराय, रंग कितने मेरे संग, पृ. 78, वाणी प्रकाशन, 2019

मोबरू 9497457004

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 105-109

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मालती जोशी की कहानियों के संदर्भ में पुरूष विमर्श : एक विवेचन

E. JACQUELINE, Research Scholar
ANURADHA PAKALAPATI, Assistant Professor & Research Supervisor,
Department of Hindi, School of Languages,
Vels Institute of Science, Technology and Advanced Studies (VISTAS)

परिवर्तन, विकास, क्रांति ये तीन तथ्व प्रकृति के स्थाई नियम हैं। प्रत्येक युग में क्रांतियाँ और आंदोलन हुए हैं, आज भी हो रहे हैं और आगे भी होते रहेंगे। पृथ्वी पर जब से जीवन की उत्पत्ति हुई है, तब से विविध परिवर्तन होते रहे हैं। पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति के साथ साथ पेड़–पौधे, जीव–जंतुओं और मनुष्य का भी जन्म हुआ। मनुष्य मात्र ही इस पृथ्वी का सबसे बुद्धिशाली प्राणी है। इसलिए इसका वैज्ञानिक नाम 'होमो सेपियन' रखा गया है। इसे लिंग के आधार पर नर और नारी दो भागों में खंडित किया गया है। यह वर्गीकरण की प्रक्रिया भी लगातार चलती रहती है, जो आवश्यक भी है। मान्यता यह है कि जब से पृथ्वी पर नारी का जन्म हुई है, तब से नरों के द्वारा उनका शोषण होता आ रहा है।

स्वतंत्र्योत्तर काल से स्त्री–विमर्श की अवधारणा का प्रारंभ हुआ जिसके अनुसार जागरुक एवं दूरदर्शी स्त्रियों और पुरुषों ने नारी–शोषण के विरुद्ध आवाज उठाई। अनेक नारीवादी आन्दोलन एवं क्रांतियाँ होने के बाद ही स्त्रियों ने सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक समानता के अधिकारों को प्राप्त किया। नारीवादी विचारधारा आने से समाज में स्त्रियों की दशा में प्रगति हुआ। नारी–विमर्श होने से समाज और साहित्य में नारी–विमर्श परम्परा की होड़ सी लग गई, जिससे नारी–विमर्श चरम–सीमा पर आ पहुँचा। आज नारी विमर्श की अति अधिक हो जाने के कारण स्त्रियों ने समानता के नाम पर पुरुषों की तरह कई बुरे आदतों को गुलामी हो गया है। स्त्रियों का धूम्रपान एवं मदिरापान आदि करने से स्वास्थ्य और संस्कृति के लिए अत्यंत हानिकारक है और नारी अस्मिता पर भी प्रश्न चिन्ह लगा देती है। स्त्रियों के स्वास्थ्य का प्रभाव उनके संतानों पर भी पड़ता है।

वर्तमान समय में जितनी जोर से नारी–विमर्श की चर्चा चल रही है, उतनी ही जोर अब 21वीं सदी में पुरुष–विमर्श केलिए भी चर्चा करने की आवश्यकता है। बीसवीं सदी तक स्त्री अपने संतानों का पालन–पोषण कार्य करें तो पुरुष संरक्षण, धन इकट्ठा करने का काम कर रहे थे। पर आजकल स्त्रियों की आमदनी पुरुषों से अधिक होने के कारण उसके मनःस्थिति में परिवर्तन पाया जाता है। पुरुषों के सामाजिक, राजनैतिक शोषण से मुक्ति एवं सभी पुरुषों को हर क्षेत्र में समान अधिकार प्राप्त करना आवश्यक है। नारी–विमर्श से उत्पन्न विचार

धारा के अधिकता के आगे बहुत बड़ा एक पुरुष वर्ग चिन्ता, कुंठा, हीन भावना, तनाव की स्थिति आदि से शिकार होने लगे हैं। सभ्य समाज के शिष्ट पुरुष, नारी अतिक्रमण से बेसब्र होकर आत्म हत्या तक कर लेते हैं। वास्तव में पुरुष उन्हें समाज के सामने आकर अपने विलाप सुनाने से रोक देता है। अपनी पीड़ा को संभालने में असमर्थ वह पुरुष टूट कर बिखर जाता है। यही कारण है जो पुरुष–विमर्श की उपयोगिता और सार्थकता को निमंत्रित करता है।

पुरूष शब्द की व्युत्पति :-

'पुरुष' अत्यंत व्यापक शब्द है। भाषा में इसे लिंग विशेष के लिए प्रयोग किया जाता है। जिसका तात्पर्य स्त्री के विपरीत लिंग से है। हिन्दी भाषा में पुरुष शब्द का शाब्दिक अर्थ है– "जो पुर अथार्त समाज की सेवा करता है, वही पुरुष है।"

नालंदा विशाल शब्द सागर के अनुसार दृ'पुरुष' एक 'संज्ञा' और 'पुल्लिंग' शब्द है। इसके निम्नलिखित अर्थ हैं – मनुष्य, आदमी, नर, किसी पीढ़ी का प्रतिनिधि, विष्णु, जीव, सूर्य, सांख्य में एक, अकर्ता तथा असंख्य चेतन पदार्थ जो प्रकृति से भिन्न तथा उसका पूरक अर्थ माना जाता है।

"आप्टे संस्कृत कोश" के अनुसार– 'पुरुष' शीपृषो, पुरकुशन इसकी व्युत्पत्ति बतलाई गई है। नर, मर्द, मनुष्य, जाति, किसी पीढ़ी का प्रतिनिधि, अधिकारी, कार्यकर्ता, अभिकर्ता, अनुचर, मनुष्य की ऊँचाई या माप, आत्मा, परमात्मा, व्याकरण के प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष, उत्तम पुरुष आदि।

बृहद हिन्दी अंग्रेजी कोश के अनुसार– "डंद शब्द का अर्थ नर, मानव, मनुष्य, आदमी, पुरुष, मनुष्य जाति, इंसान, असामी, दास, प्रजा, सेवक परिचारक, सैनिक जवान, कारीगर, पति, जलपोत आदि अर्थों में दिया है।"[1]

पुरूष विमर्श क्या है?

पुरुष के चारित्रिक विशेषताएँ, उनके सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों के विश्लेषण को पुरुष विमर्श कहते हैं। पुरुष समाज एवं परिवार का केन्द्र बिंदु है। वह सदियों से समाज के सभी गतिविधियों में प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से क्रियाशील कर रहा है। परिवार, सामाजिक व्यवस्था का मूल रूप एवं प्राथमिक संस्था है। पुरुष इस संस्था का प्रमुख आधार होते हैं जो परिवार के सभी कार्य निर्वाह करता है। इस प्रकार वह परिवार का संरक्षक और संचालक होते रहते हैं। इसका संदर्भ मनुस्मृति में –

"पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थाविरे पुत्रः न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हती।।"[2]

साहित्य में पुरुष को भी पति, भाई, पिता के साथ–साथ विधुर, प्रेमी, आश्रयदाता आदि रूपों में चित्रित किया गया है। मानव सभ्यता के आरंभिक काल में पुरुष शब्द का प्रयोग 'नर' के अर्थ में हुआ करता था। जैसे–जैसे उसके पारस्परिक सम्बन्ध बढ़ते गए, वैसे–वैसे पुरुष की पहचान अलग–अलग ढंग से होने लगी। उदाहरण के लिए– पिता, भाई, काका, चाचा आदि अनेक स्वरूपों में पुरुष शक्ति है। वह वंश परम्परा को बनाए रखने में करणीभूत हो रहा है।

मालती जोशी की कहानियों में भी कुछ संदर्भ हमें मिलता है।

ममतामई पिता :-

वर्तमान समय में पति, पत्नी दोनों काम में व्यस्थ रहे हैं। इसके बीच परिवार को देखभाल करना भी

जरूरत है। बच्चे होते तो उनको पालन–पोषण करना अलग काम है। आजकल के माँ–बाप इस काम को बूढ़े हो गये अपने माँ–बाप से थोपते हैं। इसका संदर्भ मालती जोशी का कहानी–संग्रहमें से 'एक घर हो सपनों का' की कहानी 'ये कहाँ आ गए हम' में हमें मिलता है। कहानी की नायिका अमृता अपनी कर्तव्य भूल कर सैर–सपटे में व्यस्थित होती रहती है। अपने बच्चों को अपनी माँ के पास हमेश छोड़कर चल रही है। स्त्री सुलभ उसमें थोड़ भी नहीं है। पर उसके पति उसका उल्टा है। बच्चों को पालन–पोषण करने में, बच्चों के देखभाल करने को अपनी सास का सदद करने में, रसोई करने में बहुत मददगार है। अमृता की माँ अपने दामाद कार्तिक की ममतामई स्वभाव को देखकर कहती हैं– "कार्तिक! काश, तुम इन बच्चों की माँ होते?"[3]

साहचर्य पति :-

वर्तमान समय का दुनिया लेन–देन का दुनिया है। जो भी चाहते हैं उसे सामने वाले लोगों को दें तो उसी प्रकार वापस मिलता है। परिवार को एक साथ बाँधने का धागा प्रेम ही है। इसलिए रहिमन अपने दोहे में प्रेम का उपमान धागे से करते हैं। इसका संदर्भ मालती जोशी का कहानी–संग्रह में से 'बोल री कठपुतली' की कहानी 'प्रश्नों के भँवर' और 'हमको दिया परदेश' में हमें मिलता है। कहानी की नायिका अंजना गरीब सुनिल को प्यार करती है। अंजना, अपने भाई की सहमति के इंतजार कर रही तो इसके अंदर सुनिल के विवाह दूसरी लड़की से हुआ। पर अंजना का विवाह आलोक नामक एक संवेदनशील आदमी के साथ हुई। आलोक के बारे में अंजना द्वारा मालती जी का कथन है– "आलोक के संवेदनशील साहचर्य ने उसके घावों पर मरहम–सा लगा दिया था।"[4] 'हमको दिया परदेश' कहानी में नायिका कुसुम के पति भी ऐसे आदमी हैं। कुसुम का भाई उनको अपमानित करने पर भी उसकी इलाज कर्च के लिए पैसा भेजने को अनुनति दिये हैं।

बेरोजगारी पति :-

हिन्दी साहित्य के संदर्भ में स्त्री–पुरुषों के विविध रूपों को प्राचीन व नवीन मूल्यों, परंपरागत और परिवर्तित संवेदनाओं, अनुभूतियों और प्रवृतियों को सशक्त माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है। नारी घर की संचालिका रहती है। पुरुषों को अर्थोपार्जन के लिए बाहर के कार्य संभालना पड़ता है और नारी को गृहलक्ष्मी बनकर रहना होता है। किसी न किसी काम करना पुरुष का लक्षण है। पर आजकल का स्थिति बदल गया है। पुरुष अपने योग्यता व समर्थता को भूल जाते हैं। किसी न किसी बहाने के कारण अपने को और परिवारवालों को भी धोखा देते हैं। इसी संदर्भ में मालती जोशी का कहानी–संग्रह में से'बोल री कठपुतली' की कहानी 'सन्नाटा' में देख सकते हैं। कहानी की नायिका उतरा है। वह अच्छी पढ़ी–लिखी स्त्री है। उसकी आमदनी पर घर चल रहा है। गिरीश की माँ होने तक काम कर रहे थे। तब उनकी माँ कहती है– "अकेला आदमी, बेचारा कहाँ तक बोझा ढोता फिरेगा, एक लड़का ही अगर हो जाता।"[5] तो उनका बोझ बाँटना पड़ेगा करके उनकी माँ गुजर जाने के बाद बेरोजगारी हो गये हैं। कोई काम करने के लिए शौक भी नहीं। यही आजकल की सामाजिक स्थिति है।

लगावहीन भाई :-

भाई–बहन का रिश्ता संसार के सभी रिश्तों में ऊपरी है। भाई–बहन, एक दूसरे के सच्चे मित्र और मार्गदर्शक होते हैं। एक दूसरे को सहयोग करने वाले सर्वोत्तम अनमोल रिश्ता है। ऐसी रिश्ते में भी आजकल समाज की परिवर्तन के साथ साथ बदलाव आ जाता है। इसी संदर्भ में मालती जोशी का कहानी–संग्रह में से

'बोल री कठपुतली' की कहानी 'हमको दिया परदेश' में देखने मिलता है। कहानी की नायिका कुसुम के दस साल में माँ गुजर गई तो उस समय से अपने छोटे भाई रघु का सब कुछ बन गई। अपने भाई का पालन–पोषण के लिए विवाह को भी त्याग कर दिया। उसका भाई रघु का विवाह होने के बाद वह अपनी पत्नी का बात सुनकर बहन को निंदा करता था। कुसुम के पिताजी गुजर जाने के बाद रघु को देखने के लिए गई तो वह कहता है– "वाह दीदी! इधर कैसे भूल पड़ी आज! इस घर में तो तुम्हारा रिश्ता उन्हीं तक था, जो तुम्हें थैली भर–भरकर देते थे। वे चले गये तो सारे सम्बन्ध समाप्त हो गये"[6]। यही आजकल की रिश्ते का परिवर्तित स्थिति है।

कर्तव्यनिष्ठा पति :–

आधुनिक काल में परिवार पर धीरे–धीरे पुरुष का नियंत्रण बढ़ता गया, धीरे–धीरे यह प्रभाव समाज में परिवर्तित हुआ, फिर राजनीति, धर्म और जीवन के सभी क्षेत्रों पर पुरुष अपना वर्चस्व थोपना शुरू किया। इससे पुरुष प्रधान संस्कृति का उदय हुआ। आजकल विवाह होने के बाद लड़कियाँ ससुराल छोड़कर अलग जाने के लिए बहुत प्रयत्न करते हैं। इसी संदर्भ में मालती जोशी का कहानी–संग्रह में से 'एक घर हो सपनों का' की कहानी 'गृह प्रवेश' में देखने मिलता है। कहानी का नीयक मनोज अपनी पतनी कनक के अनुरोध के अनुसार घर छोड़कर नया घर जाने के लिए निश्चय करते हैं। तब मनोज के पिताजी बीमार हो गये हैं। मनोज की पत्नी कनक नया घर जाने का प्रस्ताव प्रकट की। तब मनोज पत्नी कनक से कहता है– "और एक बात साफ बता दूँ मैडम! मैंने सिर्फ घर छोड़ा है, घर के लोग नहीं। उनके सुख–दुख से अब भी मुझे सरोकार है"[7]।

पुरूष के स्वरूप :–

कुल मिलाकर पुरुष का स्वरुप वैविध्यपूर्ण होते हैं। एक ओर वह मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में हैं तो दूसरी ओर वह खलनायक के रूप में भी देख पड़ता है। वह अपने परिवार के लिए आजीवन भर संघर्ष सहने वाला एक जिम्मेदारी व्यक्ति है। दूसरी ओर नकारात्मक कार्यों में लिप्त भी दिखाई देता है। इस प्रकार पुरुष एक ही समय में अनेक भूमिकाओं का निभाने वाले चरित्र भी उसमें होता है। आज भी परिवार की सभी जिम्मेदारी उसी पर थोपना पड़ा हैं। आर्थिक स्त्रोत का वह केन्द्र रहा है। पुरुष का स्वरुप अलग–अलग दृष्टियों से विश्लेषण करने पर वैविध्य रूप से पुरुष विमर्श परिलक्षित होता है। पुरुष अपने इस दायित्व के निर्वाह में आने वाले अनेक समस्याओं, सवालों तथा जटिलताओं का सामना करते हुए किस प्रकार अपने लक्ष्य में अग्रसर होता है उसकी ओर प्रकाश डालने की प्रक्रिया 'पुरुष विमर्श' कहलाता है।

उपसंहार :–

समाज के प्रत्येक व्यक्ति को समझना किसी और व्यक्ति के लिए आसान नहीं होता है। यदि कोई समझने का प्रयास भी करें तो वह केवल सामान्य एवं मोटी–मोटी ऊपरी बातों से ही उन्हें अवगत करा सकता है। साहित्यकार इस कला में आगे होता है, क्योंकि साहित्य के माध्यम से हम व्यक्ति को पूर्णतः समझ सकते हैं। हिन्दी साहित्य के कहानियों में पुरुष विमर्श के विविध अंशों पर प्रकाश डालते हुए इस युग के सांस्कृतिक मूल्यों को मापदंड बनाकर बदलते सांस्कृतिक परिवेश में पुरुष विमर्श का विश्लेषण करने के तत्पश्चात धार्मिक परिवेश में पुरुष का व्यक्तित्व एवं स्वरुप का विवेचन, विवेच्य कहानियों के आधार पर करते हुए बदलते धार्मिक मूल्यों और उनका पुरुष पर हो रहे प्रभाव का दृष्टिपात किया गया है। आधुनिक युग की आर्थिक परिस्थितियाँ एवं पुरुष के विमर्शात्मक अध्ययन का प्रभाव यहाँ विवेच्य कहानियों के आधार पर करना पुरुष विमर्श का मुख्य उद्देश्य है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. बृहद अंग्रेजी–हिन्दी कोश, भाग–1, डॉ. हरदेव बाहरी, पृ. सं. 1106
2. मनुस्मृति, श्लोक 9.3
3. मालती जोशी, साक्षी प्रकाशन, एक घर हो सपनों का, ये कहाँ आ गए हम, पृ. 52
4. मालती जोशी, किताबघर प्रकाशन, बोल री कठपुतली, प्रश्नों के भँवर, पृ. 45
5. मालती जोशी, किताबघर प्रकाशन, बोल री कठपुतली, सन्नाटा, पृ. 28
6. मालती जोशी, किताबघर प्रकाशन, बोल री कठपुतली, हम को दिया परदेश, पृ. 45
7. मालती जोशी, किताबघर प्रकाशन, बोल री कठपुतली, गृह प्रवेश, पृ. 58
8.

Mail ID : anuradha.hindi@velsuniv.ac.in

Mobile No : 7299012063

Mail ID : jacquelinejhon@gmil.com

Mobile No.: 9841777187

My Address: 2/47, Anthonipillai Street, Gandhi Nagar, East Tambaram, Chennai-600059

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 110-112

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

नारी विमर्श तथा इसकी महत्ता

डॉ. जगदीप दुबे

सहायक प्राध्यापक वाणिज्य, शासकीय आदर्श महाविद्यालय डिण्डौरी।

सारांश :–

समाज के दो पहलू हैं स्त्री और पुरुष, ये दोनों एक दूसरे के पूरक है। किसी एक के अभाव में दूसरे का अस्तित्व नहीं है। इसके बाद भी पुरुष समाज ने महिला समाज को अपने बराबर के समानता से वंचित रखा। इसी पक्षपात स्वरुप ने शिक्षित नारियों को आंदोलन करने को मजबूर किया जो आज ज्वलंत मुद्दा नारी विमर्श के रुप में दृष्टिगोचर है।

आदिकाल से ही नारियों की दशा दयनीय व सोचनीय थी। नारियों की दशा को देखकर स्वामी विवेकानंद कहते हैं कि स्त्रियों की अवस्था को सुधारे बिना जगत के कल्याण की कोई संभावना नहीं है। पक्षी के लिए एक पंख से उड़ना संभव नहीं है। जिस भारत में वैदिक काल में ''यत्र नार्यस्तु पूज्यंते तत्र रमंते देवता'' कहा जाता था आज वही अनेक शोषण का शिकार हो रही है, लेकिन वर्तमान में यह स्थिति परिवर्तित नजर आती है। भारत सरकार ने 2001 को महिलाओं के सशक्तिकरण वर्ष के रुप में घोषित किया।

कुंजी – नारी की दशा एवं दिशा, महिला सशक्तिकरण, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक विकास।

प्रस्तावना :–

प्रेमचंद से लेकर आज तक अनेक पुरुष लेखकों ने स्त्री समस्या को अपना विषय बनाया लेकिन उस रुप में नहीं लिखा जिस रुप में स्वंय महिला लेखिकाओं ने लिखा है। अतः नारी विमर्श की शुरुआती गूंज पश्चिम में देखने को मिलती है। सन् 1960 ई. के आसपास नारी सशक्तिकरण ने जोर पकड़ा जिसमें कई लेखिकाओं ने नारी मन की दुविधा और आपबीती घटनाओं को उकेरना प्रारंभ किया और नारी विमर्श एक ज्वलंत मुद्दा बन गया।

आठवें दशक तक आते–आते इसने एक आंदोलन का रुप ले लिया जो शुरुआती नारी विमर्श से ज्यादा शक्तिशाली सिद्व हुआ। हिंदी साहित्य में नारी विमर्श जिसमें नारी की अनेक समस्याएं देखने को मिलता हैं। हिंदी साहित्य में छायावाद काल से नारी विमर्श का जन्म माना जाता है। महादेवी वर्मा की कविताओं में नारी वेदना के विभिन्न रुप देखने को मिलता है। उनकी श्रृंखला की कड़िया स्त्री सशक्तिकरण का सुंदर उदाहरण है। जिसमें नारी–जागरण एवं मुक्ति का सवाल को उठाया गया है। ऐसा साहित्य जिसमें नारी जीवन की अनेक समस्याओं का चित्रण हो नारी विमर्श कहलाता है।

हिंदी पद्य एवं गद्य में नारी विमर्श :-

सुशीला टाकभौरे के काव्य संग्रह स्वाति बूंद और खारे मोती तथा यह तुम भी जानों काफी चर्चित रहे। इनकी विद्रोहणी कविता में आक्रोश की ध्वनि सुनाई पड़ती है –

''मां–बाप ने पैदा किया था गूंगा
परिवेश ने लंगड़ा बना दिया
चलती रही परिपाटी पर
बैसाखियां चरमराती है।
अधिक बोझ से अकुलाकर
विस्कारित मन हुंकारता है
बैसाखियों को तोड़ दूं।''

उपर्युक्त कविता स्त्री जीवन की वास्तविकता को प्रदर्शित करती है।

नारी की दशा पर समाज सुधार :-

नारियों की दशा पर अनेक समाज सुधारकों ने चिंता व्यक्त की तथा यथासंभव उन्हें दूर करने का प्रयास भी किया जिससे नारी की स्थिति में परिवर्तन हुआ। ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन तथा अनेक सरकारी संगठनों द्वारा नारी शिक्षा पर जोर दिया जिसका सकारात्मक परिणाम आया और नारियों की दशा में कुछ सुधार देखने को मिला। वंदना वीधिका के शब्दों में ''नारियों के लिए सबसे बड़ा अभिशाप उनकी अशिक्षा थी और उनकी परतंत्रता का कारण उनकी आर्थिक स्थिति था। आज स्थिति परिवर्तित हुई है। वर्तमान में लड़कियों के लिए हर क्षेत्र में रास्ते खुले हैं और वे हर जगह प्रवेश पाने लगी है जमीं से आसमां तक–पृथ्वी से चांद तक उनकी पहुंच हैं जिसका ज्वंलत उदाहरण 23 अगस्त 2023 को देखने को मिलता है कि किस प्रकार नारी शक्ति के नेतृत्व में चंद्रयान 3 चांद पर उतरा और भारत का गौरव बढ़ा। आज नारी सभी क्षेत्रों में अपनी भागीदारी निभा रही है। राजनीतिक हो या सामाजिक, आर्थिक हो या सांस्कृतिक उसके बाद भी लगातार नारियों को अपने अस्तित्व के लिए रोज लड़ना पड़ता हैं।

बीसवीं सदी के अंतिम दशक में स्त्रीवादी विचार को बढ़ने का सुअवसर मिला जिससे तमाम अच्छाईयों व बुराईयों के साथ सभी वर्ग की शिक्षित महिलाओं को घर से बाहर निकलने का मौका मिला और स्त्रियों ने अपने वर्जित क्षेत्रों में ठोस दावेदारी की और स्वावलंबन की दिशा में तीव्र प्रयास भी सामने आए।

भारत में नारीवादी आंदोलन :-

भारत में नारीवादी आंदोलन का प्रारंभ नवजागरण के साथ हुआ। स्वामी विवेकानंद जी और स्वामी दयानंद सरस्वती ने स्त्री शिक्षा पर जोर दिया वहीं राजाराम मोहनराय ने सती प्रथा का विरोध किया। स्त्रियों की स्वतंत्रता व समानता के लिए कई महिला समाज सुधारको रमाबाई, ताराबाई, सावित्री बाई फुले आदि ने महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया। पंरमाबाई ने अपनी पुस्तक ''स्त्री धर्मनीति'' के माध्यम से स्त्रियों को जागृत कर उन्हें स्वावलंबन और स्वतंत्रता का पाठ पढ़ाया। सावित्री बाई फुले व उनके पति ज्योतिराव फुले ने स्त्रियों के सुधार के लिए अनेक कार्य किए उन्होंने महिला सेवा मंडल की स्थापना की व सन् 1848 –1952 तक लगभग 18 पाठशालाएं खोली।

नारी विमर्श स्त्री के देह के धरातल पर मुक्ति की पक्षधरता के साथ–साथ उसकी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक समानता की बात करता है। यह मात्र देह का विमर्श नहीं अपितु रुढ़ हो चुकी मान्यताओं, परंपराओं के प्रति असंतोष तथा मुक्ति का स्वर है कहा जाता है कि किसी भी सभ्य समाज की संस्कृति, अवस्था व विकास आदि का मूल्याकंन उस समाज की स्त्रियों की दशा द्वारा ज्ञात किया जा सकता है।

उपसंहार :–

वर्तमान में नारी विमर्श व्यापक रुप प्राप्त कर चुका हैं। नारी विमर्श में महिलाओं को केंद्र में रखकर जागृति और अधिकार को महत्व दिया जा रहा है शोषित महिलाएं अपने आपको समाज के समक्ष व्यक्त कर पा रहीं हैं तथा समाज को सच्चाई से अवगत करा पा रही है। नारी विमर्श केवल स्त्री की मुक्ति या पुरुष की बराबरी का आख्यान नहीं बल्कि नारी मुक्ति के साथ–साथ उनकी अस्मिता, चेतना व स्वाभिमान को भी अपने में समेटे हुआ है। आज की शिक्षित नारी प्रत्येक क्षेत्र में सक्रिय भूमिका का निर्वहन कर रही है शिक्षा, चिकित्सा, कला, कविता, पर्वतारोहण, चंद्रमा पर पहुंच आज ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं है जहां नारी ने प्रवेश न किया हुआ हो।

संदर्भ सूची :–

1. आजकल मार्च 2013 –पृष्ठ 20–29
2. पंचशील : शोध समीक्षा– पृष्ठ 82–87
3. डॉ. मंदाकिनी मीणा एवं डॉ. अनिरुद्व कुमार सुधांशु–अस्मिता मूलक विमर्श और हिंदी साहित्य, श्री नटराज प्रकाशन, 2016.
4. डॉ. हेमंत कुकरेती–हिंदी साहित्य का इतिहास, सतीश बुक डिपो, 2016.
5. https://core.ac.uk
6. https://hi.m.wikibooks.org

मोबाइल 9424605206

bZesyshravandubey10@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 113-116

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

समकालीन महिला लेखिकाओं की रचनाओं में नारी विमर्श

काकर मुत्यालराव

शोधार्थी, हिंदी विभाग, आंध्र विश्वविद्यालय, विशाखापट्टनम, आंध्र प्रदेश– 530003

सारांश :-

हिंदी उपन्यास पर स्त्री–विमर्श का गहरा प्रभाव पड़ा है और धीरे–धीरे यह प्रभाव बढ़ता जा रहा है। कृष्णा सोबती के उपन्यास सूरजमुखी अंधेरे के, दिलोदानिश। मन्नू भंडारी के उपन्यास आपका बण्टी। उषा प्रियंवदा के पचपन खंभे लाल दीवारें, रुकेगी नहीं राधिका, शेषयात्रा, भया कबीरा उदास, नदी आदि उपन्यास के माध्यम से स्त्री–जीवन का प्रामाणिक अंकन प्रारंभ किया था जो बाद के उपन्यासों में और घनीभूत हुआ है। मृदुला गर्ग के उपन्यासों कठगुलाब, चित कोबरा एवं मिलजुल मन में स्त्री–मुक्ति चेतना का रचनात्मक अंकन हुआ है। प्रभा खेतान का उपन्यास छिन्नमस्ता, मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यासों इदन्नम, अल्मा कबूतरी, चाक आदि में स्त्री–मुक्ति के प्रश्न को उठाया है। चित्रा मुद्गल का आंवा, मंजुल भगत का अनारो नासिरा शर्मा का शाल्मली, गीतांजलिश्री का तिरोहित आदि उपन्यासों में अपने–अपने ढंग से स्त्री–मुक्ति चेतना की सशक्त अभिव्यक्ति दिखाई देती है।

समकालीन महिला लेखिकाओं की रचनाओं में नारी विमर्श :-

कृष्णा सोबती –

सूरजमुखी अंधेरे के उपन्यास में नारी जीवन की एक मनोवैज्ञानिक समस्या को उभारा गया है। इसमें रति तथा दिवाकर की प्रेम कथा है।

दिलो दानिश में मुस्लिम संस्कृति का वर्णन किया गया है। यह उपन्यास 19वीं सदी के रईसों के जीवन का रचनात्मक प्रतिबिंब है। साथ ही इसमें भारतीय नारी की व्यथा कथा भी है। इसके केंद्रीय पात्र वकील कृपा नारायण, नसीम बानो, महक बानो तथा कुटुंब प्यारी है।

मन्नू भंडारी –

आपका बंटी में तलाकशुदा दंपत्तियों के बच्चों की मनोवैज्ञानिक समस्याओं का मार्मिक चित्रण किया गया है इसके मुख्य पात्र बंटी शकुन अजय तथा मीरा है।

उषा प्रियंवदा –

पचपन खंभे लाल दीवारें में सुषमा नामक एक मध्यवर्गीय नारी को केंद्र में रखकर आधुनिक नारी की मानसिक यंत्रणा का संजीव अंकन किया है।

रुकेगी नहीं राधिका में राधिका अपना स्वतंत्र विकास करना चाहती है। वह डैन से विवाह करके अमेरिका जाना चाहती है मगर डैन उसे अस्वीकार कर देता है तो वह मनीष से विवाह कर लेती है। इस प्रकार वह निरंतर

असुरक्षा की स्थिति में रहती है।

शेष यात्रा में अनुप्रणव से विवाह करके अमेरिका चली जाती हैं। साढ़े चार वर्ष बाद दोनों अलग हो जाते हैं। अनु किसी और से शादी कर लेती है। इस उपन्यास में भी आधुनिक नारी की समस्या को ही केंद्र में रखा गया है। लेकिन इसमें नारी असहाय और असुरक्षित नहीं है। नये जीवन यथार्थ में नये विश्वास से प्रतिष्ठित हो चुकी है।

भयाकबीर उदास में नायिका लिली पांडेय उर्फ यमन के माध्यम से नारी की छटपटाहट और मृत्यु से उत्पन्न भय का मार्मिक अंकन किया है। इसमें लिली पांडेय को भयानक कमांडो नामक भ्रष्ट कैंसर की बीमारी है।

नदी उपन्यास में आकाश गंगा नामक स्त्री के सुख–दुःख के समझौते से गुजरते जीवन की करूणा कहानी है।

मृदुला गर्ग –

कठगुलाब में नारी–मुक्ति विषयक अपने प्रौढ़ चिंतन का परिचय देते हुए नारी शोषण के सभी रूपों और नारी के सामर्थ्य का समुचित चित्रण किया है। पुरुष–प्रधान समाज में नारी के दोहन–शोषण और मुक्ति–संघर्ष की कथा है। इसमें स्मिता, मारियान, नर्मदा, असीमा ये चार नारी पात्र अपनी–अपनी कहानी कहते हैं। पुरुष पात्र केवल एक है विपिन। उपन्यास से यह स्पष्ट होता है कि पूरब हो या पश्चिम नारी सर्वत्र दोहन और शोषण का शिकार है।

चित कोबरा में स्त्री–मुक्ति चेतना का रचनात्मक अंकन हुआ है।

मिलजुल मन में गुल और मोगरा के बहाने आजादी के बाद के समय में लोगों की जिंदगी और समाज में आने वाले बदलाव का चित्रण किया गया है। इस उपन्यास में भी स्त्री–मुक्ति चेतना का रचनात्मक अंकन हुआ है।

प्रभा खेतान –

छिन्न मस्ता में कथा नायिका का प्रिया के जीवन के संघर्ष की कहानी है, जो पुरुष प्रधान समाज में पुरुषों के वर्चस्व के विरुद्ध अपनी अलग पहचान बनाना चाहती है। नारी जीवन की उन छुपी सच्चाइयों का उद्‌घाटन करता है जो अपनी समस्त विद्रूपता, विकृति और कुत्सा के बावजूद भारतीय समाज का क्रूर यथार्थ है। उपन्यास की केंद्रीय पात्र प्रिया मारवाड़ी समाज की घुटन भरी संस्कृति से लेकर कॉर्पोरेट कल्चर तक शोषण का शिकार होती है। परिवार, प्रेम–संबंध, वैवाहिक जीवन आदि प्रत्येक स्तर पर स्त्री किस प्रकार पुरुष शोषण का शिकार होती है, इसका अनावरण लेखिका ने स्तब्धकारी ढंग से किया है।

मैत्रेयी पुष्पा –

इदंन्नमम उपन्यास की केंद्रीय नारी पात्र मंदा' लोक शक्ति को जागृत करती है। मजदूरों को उनकी मेहनत का महत्व समझाती है। इसमें लेखिका यह संदेश देना चाहती है कि अब नारी शक्ति जागृत हो चुकी है। अब वह सामाजिक ढाँचे को तोड़ती हुई न केवल अपने अधिकारों को सुरक्षित करेगी, वरन् समाज को भी नई दिशा देगी।

अल्मा कबूतरी उपन्यास में कबूतरा जाति में जन्मी 'अल्मा' की संघर्ष गाथा है। साथ ही यह समकालीन

राजनीति की दिशाहीनता, अपराधीकरण, सत्ता–संघर्ष, बेरोजगारी तथा जीवन मूल्यों के घोर पतन की गाथा भी है।

चाक उपन्यास में व्रज क्षेत्र के जीवन यथार्थ को चित्रित किया गया है। अतरपुर गाँव (अलीगढ़) कथा केन्द्र है। इसमें कथानायिका 'सारंग' के जीवन संघर्ष की कथा कही गयी है।

इसमें स्त्री–मुक्ति के प्रश्न को उठाया है। इनमें ग्रामीण पृष्ठभूमि में अत्यन्त सशक्त रूप में स्त्री अस्मिता के स्तर को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। सारंग पति, पुत्र, सास–ससुर से भरे–पूरे परिवार में होते हुए भी प्रेम करने का अधिकार चाहती है।

कही ईसुरी फाग उपन्यास में ईसुरी के फाग बुन्देल खण्ड में प्रसिद्ध है। इनमें ईसुरी कीरजऊ की प्रेम कथा वर्णित है। इसमें पुरूषों द्वारा स्त्रियों परसदियों से किए जाने वाले अत्याचारों का पर्दाफाश किया गया है।

फरिश्ते निकले उपन्यास ग्रामीण स्त्री पर हो रहे अत्याचार और दमन की कथा पर आधारित है। उपन्यास की नायिका 'बेला' बहू है।

चित्रा मुद्गल –

आंवा उपन्यास में आए श्रमिक वर्ग के परिवेश हों, निम्न मध्यवर्गीय परिवार हों, कामकाजी महिलाएँ हों जैसों का रहन–सहन हो, सबके बीच में हैं आज की स्त्रियाँ उनकी जीवन स्थितियाँ, उनके संघर्ष, उनके समझौते, उनके पतन, उनके उत्कर्ष, उनकी नियति, उनके स्वप्न, मोह, मोहभंग और उनके फैसले। कुल मिलाकर हर तरह की स्त्री जीवन 'आवाँ' के फोकस में है। इसीलिए यह मुझे स्त्री–विमर्श का उपन्यास लगता है।

मंजुल भगत –

अनारो उपन्यास की केंद्रीय पात्र अनारो है। यह अनारो की उपन्यास है। उसकी कुछ इच्छाएं है, कुछ सपने हैं जिन्हें वो पूरा करना चाहती हैं। दिल्ली की मदनगीर बस्ती में रहती है अनारो। पास ही पोश कॉलोनी में मौजूद घरों में चूल्हा चौका करती है और अपने परिवार का भरण पोषण करती है। नन्दलाल नाम का एक पति है जिसका होना न होना बराबर है। दो बच्चे हैं जिनको पालने की जिम्मेदारी उसके ऊपर ही है। अपने बच्चों की जिन्दगी के चारों ओर ही अनारो की जिन्दगी कटती है।

नासिरा शर्मा –

नासिरा शर्मा का विशिष्ट उपन्यास शाल्मली है। इस उपन्यास में जिसकी जमीन पर नारी का एक अलग और नया ही रूप उभारा है। शाल्मली इसमें परम्परागत नायिका नहीं है। शाल्मली एक बड़ी अफसर है। बावजूद इसके वह बेहद सामान्य है। पति, माता–पिता और सास के साथ उसके रिश्ते सच के नजदीक हैं। यही उसकी खूबी है कि वह नौकरशाह होते हुए भी, उस वर्ग से कटी हुई है और एक आम भारतीय नारी के यथार्थ को जीती है।

गीतांजलिश्री –

तिरोहित उपन्यास में गीतांजलिश्री ने स्त्रियों के घरेलू जीवन की अनुभूतियों –रोजमर्रा के स्वाद, स्पर्श, महक, दृश्य –को बड़ी बारीकी से उनकी पूरी सेन्सुअलिटी में उकेरा है।

निष्कर्ष :–

समकालीन महिला लेखिकाओं की रचनाओं में नारी की समस्याओं का विवरण मनोविश्लेषणात्मक,

राजनीतिक, सामाजिक विवेचन किया है। कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा, मृदुला गर्ग, प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा, मंजुला भगत, नासिरा शर्मा, गीतांजलिश्री जैसी अनेक कवयित्रियों ने अपनी रचनाओं में नारी का संवेदनशील चित्रण किया है। हिन्दी साहित्य में नारी की स्थिति का सम्पूर्ण, प्रामाणिक और भावात्मक निरुपण हुआ है। समकालीन महिला लेखिकाओं की रचनाओं में नारी की समस्याओं का विवरण मनोविश्लेषणात्मक, राजनितिक, सामाजिक विवेचन किया है। कृष्ण सोबती, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा, मृदुला गर्ग, प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा, मंजुला भगत, नासिरा शर्मा, गीतांजलिश्री जैसी अनेक कवयित्रियों ने अपनी रचनाओं में नारी का संवेदनशील चित्रण किया है। हिन्दी साहित्य में नारी की स्थिति का सम्पूर्ण, प्रामाणिक और भावात्मक निरुपण हुआ है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. डॉ. विजयलक्ष्मी शर्मा, डॉ. सुंकृति मिश्रा, नारी चिन्तन के विविध आयाम, पृष्ठ संख्या 73, 75, 76, 78,174
2. डॉ. अनिता शर्मा, शशि प्रभा शास्त्री के कथा–साहित्य में नारी, पृष्ठ संख्या 166, 167
3. डॉ. संतोष पंवार, मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में नारी, पृष्ठ संख्या 111, 112, 114, 115, 120, 128, 144

फोन 8978647321

ई–मेल kmrteachingseries@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 117-120

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

किन्नर समाज की मुख्य समस्याऐं

कमलजीत कौर

सहायक प्रोफेसर, समाजशास्त्र {विभाग}, एम.बी.बी.जी.आर.जी.सी गर्ल्ज़ कालेज, मानसोवाल।

शोध-सारांश :-

प्रस्तुत शोध–पत्र में किन्नर समाज की मुख्य समस्याओं का वर्णन किया गया है। किन्नर समाज भारतीय समाज का एक ऐसा हिस्सा है जिनका सभ्य समाज की मुख्य धारा मे कोई स्थान नही है। भारतीय समाज में इनके घर, परिवार, खानदान, रिश्तेदारी सब कुछ नकारात्मक है। मध्यकाल में किन्नर समाज की स्थिति वर्तमान समय से बहुत अच्छी थी। उस समय इनके पास रोजगार व व्यवसाय के साधन थे। उस समय राजे, महराजे नवाब लोग अपने घरों व महलों में जनानखानों की रखवाली, महलो तथा हवेलियों की पहरेदारी के लिए इन्हे सरकारी नौकरी पर रखा जाता था इसके इलावा इनसे गुप्तचरों का काम भी लिया जाता था। कुछ एक किन्नर तो अपने समय में काफी प्रसिद्ध हुए तथा ऊँचे ओहदो पर भी पहुँचे हुए थे। इसका सजीव उदाहरण अलाउद्दीन खिलजी का सेनापति मलिक काफूर भी था।[1] लेकिन समय बीतने के साथ–साथ किन्नर समाज भारतीय समाज की बहुत सी विकृत परम्पराओं के कारण त्रासदीपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे हैः वर्तमान समय में इनकी आजीविका का साधन शुभ–अवसरों जैसे विवाह, शादी जन्म इत्यादि पर नाचना, गाना, भीख माँगना व वेश्याकृति ही रह गया है। जो कि भारतीय समाज के लिए अच्छी बात नही है। आजीविका के इलावा इनके जीवन में अन्य बहुत सारी समस्याऐं शामिल है। इस शोध पत्र में मुख्यता किन्नर समाज की समस्याओं को उजागर करने का प्रयत्न किया गया है। **सुप्रसिद्ध गीतकार सुश्री गीतिका वेदिका का गीत किन्नर समाज की व्यथा को दर्शाता है :-**

'अधूरी देह क्यों मुझको बनाया,
बता ईश्वर तुझे ये क्या सुहाया।
.....
'नहीं नारी हूँ मैं और नर नहीं हूँ
विवश हूँ मूक हूँ पत्थर नहीं हूँ।[2] (हिन्दी साहित्य में किन्नर जीवन)

हम अपने समाज में अपने आस–पास अथवा किसी खुशी के मौके जैसे लड़के के जन्म पर या शादी के मौकों पर किन्नरों को नाचते–गाते बधाईयां देते हुए देखते है यह लोग हमारे समाज से अलग व विशेष दूरी बना कर रहते है इन्हें आम सभ्य समाज के साथ मेल–जोल रखना पसंद नहीं है। किन्नर जो लैगिक रुप से ना नर होता है ना मादा होती है किन्नर कहलाते हैं। बच्चे के जन्म के समय लैंगिक विकृति के कारण किन्नर बच्चे जन्म लेते हैं। समाज में दो प्रकार के किन्नर पाए जाते है पुरुष किन्नर व स्त्री किन्नर इन्हें अलग–अलग नामों से

पुकारा जाता है जैसे खुसरा, हिजड़ा, खोजा, जनखा, अरावनी, बुचरा, छक्का इत्यादि। लेकिन कुछ वर्ष पहले मानयोग उच्चतम न्यापलय ने इसके लिए 'थर्ड जेण्डर' नाम से पुकारने की बात कही है इसलिए अब इन लोगों को 'थर्ड जेण्डर' के नाम से बुलाया जाता है।

किन्नर समाज की प्रमुख समस्याऐं :-

किन्नर बच्चों की त्रासदी जन्म से ही शुरु हो जाती है किन्नर समाज में बसे लोगों के आंतरिक जीवन को जानने, समझने का प्रयास कोई नहीं करता ना ही किन्नर समाज की समस्याओं से सभ्य समाज को कोई सरोकार है आम जनता के लिए यह केवल मनोरंजन का साधन मात्र है। लैंगिक विकृति द्वारा जन्में बच्चों के साथ पहला अन्याय तो अपने परिवार द्वारा ही शुरु हो जाता है जबकि किन्नर के रुप में जन्म लेने में एक किन्नर बच्चे का कोई कसूर नहीं होता अगर किसी परिवार में कोई शारीरिक अथवा दीमागी रुप से विकलांग बच्चा जन्म लेता है तो पूरा परिवार उस विकलांग बच्चे की अतिरिक्त देखभाल व सेवा, मैडिकल ईलाज, पढ़ाई, लिखाई, इत्यादि का पूरा ध्यान रखते है। जबकि एक किन्नर बच्चे के जन्म लेते उसे हर पल अपमानित करते डाँटते मारते–पीटते है उसको परिवार से अलग होने पर मजबूर कर देते है। इस प्रकार एक किन्नर की सबसे पहली उपेक्षा व पहला अन्याय अपने ही घर, परिवार द्वारा मिलता है। ऐसे बच्चों को कलंक माना जाता है लोक–लाज के डर से परिवार ऐसे बच्चों का स्वयं त्याग कर देते है या ऐसे बच्चों को घर से भागने पर मजबूर कर देते है।

किन्नरों की सामाजिक स्थिति :-

भारत में लगभग किन्नरों की संख्या 50 लाख है और यह भी सभ्य समाज का एक हिस्सा है लेकिन सभ्य समाज के लोग किन्नरों के साथ मेल–जोल क्यों नहीं रख पाते उनके साथ घूमना–फिरना, बैठ कर खाना–पीना करना इत्यादि क्यों नहीं कर पाते शायद, इनकी एक अलग सी छवि सभ्य समाज में बन चुकी है। इनका आम लोगों से अलग चेहरा–मुहरा और भड़कीला श्रृंगार, इठलाती चाल, गहनों से लदा हुआ शरीर, चमकीले कपड़े, भारी–भरकम आवाज के कारण या शायद इन लोगों ने भी अपने आप को सभ्य समाज से दूर कर लिया है करें भी क्यों नहीं इसी सभ्य समाज के परिवार ने तो इनका त्याग किया होता है।

किन्नर समाज की समस्याऐं :-

किन्नर बच्चों के जीवन की त्रासदी तो उनके जन्म लेने भर के बाद ही शुरु हो जाती है। "जीवन के लिए सबसे जरुरी तो आँख है। जोगी चाचा अंधे पैदा हुए। जरुरी तो हाथ है। बिन्दा बुआ का दाहिना हाथ कोहनी से कटा है। रामाधा भइया तो शुरु से खटिया पर पड़े है। रीढ़ की हड्डी बेकार है। बिसम्भर तो पागल है जन्म से बिना दिमाग का क्या .... वो आँख, कान, हाथ, पाँव, दीमाग से भी बढ़कर होता है?"

'तुम वंश नहीं बढ़ा सकती!'

गाँव में ऊसर औरते भी हैं, मान से रहती हैं।' बाउदी आप चुप क्यों हैं। क्या मैं किसी के काम की नहीं[3]।"

उपरोक्त पक्तियां जो कि डॉ. इकरार अहमद की 'किन्नर विमर्श' के अंतर्गत लिखी गई है यह उजागर करती है कि आमतौर पर समाज में शारीरिक व मानसिक विकृतियों से युक्त लोग अपना यथासम्भव जीवन यायन करते हैं तो लैंगिक विकृति वाले लोगों के साथ ही यह अन्याय क्यों होता है? किन्नर समाज बहुत सी मुश्किलों से भरा पड़ा है जो कि निम्नलिखित है।

निम्न सामाजिक स्थिति :–

किन्नरों की सामाजिक स्थिति प्रायः निम्न दर्जे की होती है। इनके साथ ऊँच, नीच छूतछात व भेदभाव भरा व्यवहार किया जाता है। आम लोग इनके साथ मेल–जोल रखना पसंद नहीं करते। एक तो परिवार और समाज द्वारा इन्हें बहिष्कार मिलता है दूसरी तरफ राज्य और राष्ट्र द्वारा उपेक्षा और अवहेलना मिलती है। भारत में अनेकता में एकता का सन्देश दिया जाता है परन्तु फिर भी समाज के इस वर्ग को सभ्य समाज द्वारा हमेशा अपमान, घृणा और तिरस्कार ही मिला है। इस प्रकार इनकी सामाजिक स्थिति हमेशा से निम्न ही रही है।

परिवार द्वारा तिरस्कार व त्याग का दंश :–

बचपन में ही परिवार द्वारा इनके साथ बुरा बर्ताव किया जाता रहा है। ऐसे बच्चों को खास देखभाल की आवश्यकता होती है परन्तु परिवार द्वारा इन्हें मारना पीटना, अपमानित करना तथा घर छोड़ देने को मजबूर कर देना सदियों से होता आया है। ईक्कीसवीं सदी का सभ्य समाज भी इनके दर्द को समझना नहीं चाहता कि ऐसे लोगों के पास भी दिल है जज्बात व भावनाऐं है इनके अंदर भी दाम्पत्य व वात्सल्य प्रेम मौजूद रहता है परन्तु इनके इन भावों को इनके परिवार वाले ही नहीं समझना चाहते तो सभ्य समाज से तो इनकी उम्मीद ही क्या की जा सकती है।

शिक्षा की कमी :–

आज के समय में किन्नर बहुत ज्यादा पढ़े लिखे नहीं है क्योंकि अभी भी यह लोग सामाजिक व शैक्षिक रूप से पिछड़े हुए है। इन्हें केवल नाचने व गाने बजाने की शिक्षा दी जाती है। सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि आरक्षण व शिक्षा के अधिकार नियमों के बाबजूद भी भेदभाव व असमानता की स्थिती ज्यों की त्यों बनी हुई है। इसके लिए कोई अलग से स्कूल व कालेजों की व्यवस्था नहीं है ताकि यह लोग भी बिना बेइज्जती सहन किए पढ़ाई कर के अपने पैरों पर खड़े हो सके। हमारे सविधान में अनुच्छेद 14 में वर्णित समानता का अधिकार के अनुसार किन्नरों को भी समानता का अधिकार है लिंग के आधार पर उनसे भेदभाव नहीं किया जा सकता अनुच्छेद 21 में वर्णित शिक्षा का अधिकार के अनुसार सभी को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है परंतु सामाजिक भेदभाव व सुविधाओं की कमी के कारण सभी किन्नरों को यह अधिकार प्राप्त नहीं है 'अगर सरकार ने इनके लिए योजनाऐ बहुत से लोगो की पहुँच से दूर है।

अन्याय व अमानवीय व्यवहार :–

अगर कोई बच्चा अपनी अपेक्षित लैंगिक भूमिका से उलट लैंगिक भूमिका निभाने लगता है, उदाहरणता लड़का है तो लड़की की भूमिका लड़की है तो लड़के की भूमिका तो उसके परिवार के लोग ऐसे बच्चों की उनके इस व्यवहार के लिए डाँटते व मारते–पीटते है उसका अपमान करते हैं उसको अपना व्यवहार बदलने पर मजबूर करते हैं। परिवार के लोग यह बात समझना नहीं चाहते कि यह सामाजिक तौर पर सभ्य समाज से कटे हुए लोग है परन्तु फिर भी यह मनुष्य है इनकी भी अपनी भावनाऐं भूख, प्यास, चाहत, जरुरतें, सपने व अरमान है। परिवार के लोग ऐसे बच्चों के साथ अमानीय व्यवहार करते है उन्हें घर छोड़ने पर मजबूर कर देते है। अगर किन्नर बच्चा खुद घर छोड़ कर नहीं जाता तो परिवार के सदस्य उसे खुद ही किन्नर के डेरे के हवाले कर देते है। किन्नर बच्चे को अधिकारों से बेदखल करके उस बच्चे का पूर्णता त्याग कर देते है।

रोजगार सम्बन्धी समस्याऐं :–

किन्नरों की रोजगार सम्बन्धी समस्याऐं इनके लिए और अनेक प्रकार की समस्याओं को जन्म देती है। रोजगार सबंधी समस्या शिक्षा के अभाव के कारण जन्म लेती है। शिक्षा के अभाव के कारण इनको रोजगार प्राप्त करने मे मुश्किल पेश आती है, किन्नरों के लिए रोजगार के मौके नहीं है जिसके कारण यह लोग बदहाली की जिंदगी जीने पर मजबूर है। लॉकडाऊन में इस वर्ग ने भी भूखमरी की त्रासदी को झेला है रोज़गार ना होने की वजह से यह लोग बसों, ट्रेनों व रेलवे स्टेशन के आस–पास भीख माँगते दिखाई देते है। मजबूरीवश यह लोग वेश्यावृति में लिप्त हो रहे है। सभ्य समाज के लोग इनका शारीरिक शोषण करते है। पंजाब के शिवालिक की पहाड़ियों के आस–पास के धार्मिक स्थानों के आस–पास की पहाड़ियों में कुछ रुपऐ के लिए यह लोग अपना शारीरिक शोषण करवाने के लिए मजबूर है।

निष्कर्ष :–

प्रकृति ने किन्नरों के साथ क्रूर अन्याय किया है इन लोगों की एक ही तमन्ना है कि इनके अस्तित्व को एक पहचान मिले इस पहचान के लिए इनके मन में तड़प है। यह लोग आज स्वयं की पहचान प्राप्त करने के लिए दर–दर की ठोकरें खाने को मजबूर है। प्रत्येक किन्नर का अपना बीता हुआ कल, उसका जीवन की समस्याओं के साथ सघंर्ष होता है। वर्तमान समय में सभ्य समाज के मनुष्य को केवल मनुष्यता का दर्जा देना चाहीए उन्हें प्रकृति परिवार व समाज से मिली उपेक्षा व दर्द को समझना चाहीए और किन्नर समाज को यह अहसास करवाना चाहीए वह भी हमारी तरह मनुष्य है व वह सभी सुख–सुविधाऐं मिलनी चाहीए जो एक सभ्य समाज के लोग भोगते है।

सन्दर्भ सूची :–

1 डॉ. इकरार अहमद, किन्नर विमर्श साहित्य के आइने में, वाड–मय बुक्स, अलीगढ़ 202002

2. महेन्द्र भीष्म, 'किन्नर कथा', सामायिक बुक्स 3320.21, जटवाड़ा, दरियागंज एन.एस.मार्ग, नई दिल्ली. 110002

3. लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी, 'मी हिजड़ा मी लक्ष्मी', ओक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रैस।

4. जसवीर राणा, 'किन्नर दा वी दिल हुंदा है', कैलीबर पब्लिकेशनज़ पटियाला, पंजाब–148002

5. नीरजा माधव, 'यमदीप' सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली–110002

ई–मेल : kamaljeetkaur1489@gmail.com

दूरभाष : 97815–77825

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 121-126

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी उपन्यासों में किन्नर विमर्श

डॉ० कुमुद कला मेहता

सहायक प्राध्यापक, विश्वविद्यालय हिंदी विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची, पिन 834008

ब्रह्म के इस भौतिकवादी संसार में नर–नारी के अतिरिक्त एक अन्य योनि सृष्टि के प्रारंभ से ही विद्यमान है, जिसे किन्नर रूप में अभिहित किया जाता है। समकालीन साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में विहंगम दृष्टि डाले तो कई ज्वलंत विमर्श समाज के समक्ष उभरकर सामने आए हैं, जिनमें प्रमुख रूप से वृद्ध विमर्श, नारी विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, किन्नर विमर्श आदि हैं। इक्कीसवीं सदी के इस साहित्यिक जगत के दौर में विविध विमर्शों को मुखरता दी जा रही है, किन्नर विमर्श भी इस श्रृंखला की अटूट कड़ी है। हिंदी औपन्यासिक जगत में उपन्यासकारों ने किन्नर विमर्श की गहन पड़ताल करते हुए, किन्नरों के जीवन में आनेवाली समस्याओं को उद्घाटित किया है। इस संसार की सामाजिक संरचना में स्त्री–पुरुष समाज की प्रमुख आधारशिला हैं, जिनके साहचर्य से संतति का जन्म होता है। स्त्री–पुरुष से इतर हमारे समाज में किन्नरों का अस्तित्व है, जो न तो स्त्री है और न ही पुरुष। लिंगीय अक्षमता के कारण किन्नर समाज में अभिशप्त जीवन का दंश भोगने के लिए विवश हैं और त्रासदमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

किन्नरों की प्रारंभिक स्थिति वंदनीय थी, जैसा कि हमारे धार्मिक ग्रंथों से पता चलता है रामायण, महाभारत इसके प्रमुख उदाहरण हैं। किन्नरों को कई नामों से पुकारा जाता है यथा–तृतीयलिंगी, हिजड़ा, क्लीव, बुचरा, छक्का, मौसी, खोजा किंपुरुष, थर्ड जेण्डर, अरावणी, खुसरा, कोचावाडू आदि। किन्नरों के संबंध में उर्मिला पोड़वाल लिखती हैं :–"ऐसे मानव किन्नर कहलाते हैं जो लैंगिक रूप से न नर होते हैं न मादा। आमतौर पर न तो पुरुष और न ही महिला, ये एक तीसरे लिंग के रूप में पहचाने जाते हैं।"[1]

हार्मोनल असंतुलन के कारण किन्नर बालकों का जन्म होता है जो पूर्णरूपेण न तो स्त्री होते हैं और न ही उनमें पूर्ण रूप से पुरुषों के गुण होते हैं। इनकी प्रकृति ही अलग होती है। इनके कई प्रकार भी होते हैं, जिनमें से प्रमुख रूप से बुचरा, नीलिमा, मनसा, हंसा, अबुआ आदि हैं। 'किन्नर कथा' में महेन्द्र भीष्म वर्णित करते हैं :– "लिंगोंच्छेदन कर बनाये गये हिजड़ो को 'छिबरा' और नकली हिजड़ा बने मर्दों को अबुआ कहते हैं। वैसे हिजड़ो की चार शाखाएँ हैं– बुचरा, नीलिमा मनसा, हंसा। बुचरा पैदाइशी हिजड़े हैं, नीलिमा स्वयं बने, मनसा स्वेच्छा से शामिल तथा हंसा शारीरिक कमी के कारण बने हिजड़े।"[2]

समकालीन उपन्यासकारों ने हाशिये में नरकीय जीवन जी रहे किन्नरों की स्थिति एवं उनकी समस्त गतिविधियों को समाज के समक्ष प्रस्तुत करने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। इस श्रृंखला में संभवतः प्रथम नाम आता है लेखिका नीरजा माधव का जिन्होंने 'यमदीप' (2002 ई०) की रचना कर किन्नर विमर्श

का हिंदी औपन्यासिक जगत में आगाज किया। इस उपन्यास में किन्नर को केन्द्रीय भूमिका में रखकर लेखिका ने किन्नरों की समाज में वस्तुस्थिति को चित्रित करते हुए दर्शाया कि किस तरह से वे मजबूरीवश घर–परिवार से परित्यक्त हो नरकीय दंश के शिकार बनते हैं। कई बार तो घर–परिवार, समाज में वे इस प्रकार तिरस्कृत किये जाते हैं कि मजबूरी में उन्हें इसका त्याग कर किन्नर बिरादरी में आश्रय लेना पड़ता है जहाँ आजीवन उन्हें मार्मिक पीड़ा के अलावे कुछ नसीब नहीं होता है।

'यमदीप' उपन्यास की केन्द्रीय पात्र नंदरानी उर्फ नाजबीवी (किन्नर) है। नाजबीवी नाम किन्नर बिरादरी द्वारा उसे प्रदत्त किया गया। नंदरानी का जन्म कुलीन परिवार में होता है। उनके पिता सेना में मेजर एवं माँ कुशल गृहिणी रहती हैं। उसके जन्म लेने के उपरांत पिता फूट–फूट कर रोये थे, दादी ने जन्म के दूसरे दिन डर से उनकी माँ को मायके भेज दिया था क्योंकि किन्नर बिरादरी को पता चल जाता तो फिर नवजात को जबरन अपने साथ ले जाते। कड़ी सुरक्षा और माँ की हिदायतों के बीच बच्ची का जीवन कटने लगा। वह अपने माँ–बाप के जिगर का टुकड़ा थी, माँ–बाप भी उसे दुनिया की नजरों से बचाये हुए थे मगर धीरे धीरे बढ़ती उम्र के साथ नंदरानी में स्त्रैण लक्षण (किन्नर सुलभ लक्षण) द्रष्टव्य होने लगे। प्रतिभासंपन्न नंदरानी जो डॉक्टर बनना चाहती थी मजबूरीवश उसकी पढ़ाई छूट जाती है। वह किन्नर बिरादरी की राह पकड़ लेती है क्योंकि घर–परिवार में माँ–पिता के साथ भाई–बहन का जीवन भी दाँव पर लग जाता। वह किन्नर बिरादरी में जाकर भी अपने माँ–बाप से मिलने के लिए विकल रहती है, उन्हें कई बार फोन भी करती है, जो उसके बड़े भाई नंदन और भाभी को कतई पसंद नहीं है। एक दिन तो बदनामी के डर से भईया ने फोन पर नंदरानी से साफ कह दिया :–"देखो, तुम्हारा बार–बार टेलीफोन करना या इस परिवार से संबंध रखना, हमारी इज्जत बढ़ाता नहीं, उल्टे तुम्हें भी दुःख होता है और मम्मी–पापा को भी। तुम परिवार में रह नहीं सकती, हम रख भी नहीं सकते। इसलिए यह समझ लो तुम की अनाथ हो। कोई नहीं तुम्हारा दुनिया में।"[3]

नंदरानी के माँ–बाप उसकी चिंता में घुलते रहते हैं किन्तु मजबूरीवश उसे अपने साथ रख नहीं सकते और भईया–भाभी तो घर–परिवार, रिश्तेदारों के बीच बदनामी के डर से उससे कोई रिश्ता नहीं रखना चाहते हैं। किन्नर बिरादरी में आ जाने के बाद किन्नरों के समक्ष रहने–खाने से लेकर आजीविका की समस्या सामने आती है, जहाँ उन्हें अवसाद और अवमानना की पीड़ा समाज से मिलती है। बाधवा अनुष्ठान में कभी नाच–गान कर मंडली को कुछ मिल जाता तो कभी उन्हें दुत्कार कर भगा दिया जाता है। मजबूरी में कई किन्नर वेश्यावृत्ति की राह चंद पैसों के लिए पकड़ लेते हैं। समाज इन्हें कोई भी सम्मानजनक काम सौंपना नहीं चाहता है।

उपन्यास की कथा बीच–बीच में फ्लैश बैक में चलती है, जहाँ नाजबीवी अपनी यादों की गलियारों में लौटती हुई घर–परिवार और माँ–बाप, भाई–बहनों के प्रेम के सान्निध्य में आत्म विस्मृत हो जाती है। किन्नर महताब गुरू की बिरादरी में बिरादरी वालों संग वह बाधवा अनुष्ठान में नाच–गान करती है। कई किन्नरों की तरह वह भी गिरिया (पति समान) रखती है। किन्नरों के संबंध में नाजबीवी कहती है अगर हमें भी देश सेवा का मौका मिले तो हम जान की बाजी लगाकर इसकी रक्षा करेंगे। वह एक माँ की तरह बच्ची को पालती है, जो पगली की संतान रहती है। पगली के साथ किसी ने बलात्कार किया था, जिसके बाद वह गर्भवती हो गई। प्रसव पीड़ा की वेदना में सभ्य समाज ने तो उसका साथ नहीं दिया किन्तु नाजबीवी की बिरादरी ने न सिर्फ उसकी मदद की बल्कि उसकी मृत्यु के बाद उसके बच्चे को पाला भी और समाज की नजरों सेकई वर्षों तक यह बात

भी छुपायी कि बच्चा किन्नर नहीं है। नाजबीवी तो बच्ची के लिए माँ स्वरूपा थी और संपूर्ण बिरादरी वालों के लिएबच्ची प्राण थी। मानवीय संवेदना जहाँ सभ्य मनुष्यों के हृदय से गायब होते जा रही है वहाँ लेखिका ने किन्नरों के मानवीय भावों को संवेदनशीलता के साथ रूपायित किया है, जब किन्नरों ने आस–पास के घरों में उस बच्ची को रखने का आग्रह किया तो किसी ने उसे नहीं स्वीकारा अंततः नाजबीवी ने फैसला किया कि बच्ची उसके पास रहेगी। बिरादरी वालों ने उसे समझाया कि पुलिस हमें परेशान करेगी, हमने बच्चा चोरी किया है, इसे हिजड़ा बनाने के लिए और थाना–कचहरी का चक्कर लग जायेगा मगर वह नहीं मानी। वह कहती है :–"नहीं टेपकी को लेते चलते हैं। हम लोग ऊपर का दूध पिलाकर पाल लेंगे।"[4]

लेखिका ने उपन्यास में किन्नरों के अभिशप्त जीवन की त्रासदी के अंकन के साथ–साथ उनके हृदय के कोमल भावों को निष्पक्ष होकर रखा है, जो इसे प्रणवता प्रदान करता है।

इसी श्रृंखला में महेन्द्र भीष्म कृत किन्नर कथा (2009 ई०) आयी। जहाँ उपन्यासकार ने किन्नर विमर्श को एक नई ऊँचाई प्रदान की जहाँ बुंदेली राजघराने में पैदा हुई सोना अपने पिता के लिए नासूर बन जाती है। पुरुषवादी अहं भावना से ग्रस्त पिता ने रुढ़ि और अंधविश्वास की टेक लेकर न सिर्फ उसका परित्याग किया बल्कि उसकी हत्या का आदेश भी देता है। झूठी शान–शौकत की आड़ में सोना का पिता कहता है :–"बुंदेला खानदान को नाम डुबा दें, क्षत्रीयवंश में हिजड़ा, काऊ हिजड़ा हाँ पाले–पोसें? अरे आज नहीं तो कल, जब सबके सामने, जा बात आ जेहे कि हमाई संतान हिजड़ा है, बुंदेला खून हिजड़ा पैदा करत है तो का गत हुई हमाई, समझत काय नयीय्या तुम इत्ती सी बात।"[5]

सामाजिक मानसिकता की संकुचित विचारधारा के कारण अबोध किन्नर बालकों की दुर्गति का मार्ग अपने जनक द्वारा ही प्रशस्त हो जाता है फिर समाज को क्या दोष दिया जाये। तारा किन्नर को जब बच्ची सोना को सौंपा जाता है तो एक ओर तो वह अपनी बिरादरी की तरफ से खुश है और दूसरी तरफ उसके अंधकारमय भविष्य के लिए दुःखी क्योंकि घर–परिवार, माँ–बाप के प्यार से वंचित किन्नरों के अभिशप्त संसार की त्रासदमयी जिंदगी नरकीय है। उपन्यासकार ने किन्नरों के रीति–रिवाज, रस्मों का वर्णन किया है। इसके साथ ही किन्नरों के विभिन्न प्रकार और नकली हिजड़ों को वर्णित किया है जो पैसे के लालच में हिजड़ा बनते हैं। इनका मरण संस्कार विचित्र है, जिसे कई उपन्यासकारों ने उजागर किया है। इनकी शवयात्रा रात्रि में निकलती है तथा शवको जूते–चप्पलों से पीटा जाता है ताकि इस तीसरी योनि में उनका पुनर्जन्म न हो। 'पोस्ट बॉक्स नं० 203–नालासोपारा' में कथानायक कहता है :– "वो, जो आपको इंसान नहीं समझते। आपके जीने–मरने से उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता। अंधेरे के बावजूद वो आपकी मैयत को कंधा देने नहीं पहुँचते। आँसू नहीं बहाते। रुढ़ि नियति की है। जीवित रहते धिक्कार की चप्पलों से वे आपको पीटेंगे। मरणोपरान्त वे आपको अपनी ही बिरादरी से पिटवाएंगे। जिनके नवजात शिशुओं को ढूँढ़–ढाँढ़ नाच–गान आशीषने पहुँचते है आप, उन्हीं के घर दूसरे रोज पहुँचकर देखिए? घर का दरवाजा आपके मुँह पर भेड़ दिया जाएगा।"[6]

'किन्नर कथा' में महेन्द्र भीष्म किन्नर गुरू से कहलवाते हैं। साधु–संतों को देह त्याग के बाद जलाया नहीं जाता वैसे ही ठीक हम भी ईश्वर की संतान हैं, हमें उन्हीं की तरह भूमि में समाधि मिलती है। उपन्यासकार ने किन्नर जीवन को यथावत रखने का सफल प्रयास किया है।

प्रदीप सौरभ की 'तीसरी ताली' (2011 ई०) में भी किन्नर विमर्श केन्द्रीय विषय है। उपन्यासकार ने किन्नर

संबंधी रुढ़ि, लोकोपवाद, अंधविश्वास को उजागर करते हुए इनके प्रति साकारात्मक पहलुओं पर गहन मंथन किया है। किन्नरों के मनोभावों, आकांक्षाओं के साथ–साथ उनकी मानवीय संवेदना को व्यक्त किया है। किन्नर निकिता किन्नर बिरादरी की वीभत्स जीवन से हार आत्महत्या करती है वहीं दूसरी तरफ विनीत से विनीता (किन्नर) बनी किन्नर आत्मनिर्भर बनकर अपना लक्ष्य हासिल कर समाज में अपनी पैठ बनाती है। लेखक ने किन्नरों के मरण संस्कार से लेकर उनकी कई मान्यताओं एवं प्रथाओं का वर्णन किया है। कुवागम मेले में जो 'महाभारत' की कथा में वर्णित है जहाँ आज भी किन्नर हजारों की संख्या में जाते हैं और मंदिर में एक ही दिन में सुहागन और विधवा बनने की परंपरा का निर्वाह करते हैं :–"कोई सुहागिन अपने बालों में लगे गजरे तोड़कर बिखेर रही थी तो कोई हाथ में पहनी सुहाग की प्रतीक चूड़ियाँ पत्थर पर पटक रही थी। कोई माँग में भरा, सिन्दूर, तो कोई माथे की बिंदियाँ पोंछकर परंपरा के अनुसार अपने को विधवा बना रही थी।"[7]

अनुसूया त्यागी कृत 'मैं भी औरत हूँ' उपन्यास में लेखिका ने किन्नर विमर्श में एक नवीन प्रयोग किया है। उन्होंने किन्नरों को नवीन जीवन की आश से जोड़कर उन्हें सर्जरी के माध्यम से सामान्य स्त्री–पुरुष की तरह जीवन जीने का अधिकार प्रदान किया है। लेखिका स्वयं स्त्री रोग विशेषज्ञा हैं। जिन्होंने 'मैं भी औरत हूँ' के पात्रों मंजुला एवं रोशनी को केन्द्र में रखकर चिकित्सा पद्धति के माध्यम से उन्हें स्त्री रूप प्रदान किया। मंजुला विवाह के बाद पुत्र को जन्म देती है वहीं रोशनी उच्च शिक्षा प्राप्त कर विवाह के उपरांत सरोगेटेड मदर इला सांवत की सहायता से माँ बनती है क्योंकि सर्जरी से उसको स्त्री योनि अवश्य मिली किन्तु शरीर में भ्रूण न होने से वह माँ नहीं बन सकती थी। लेखिका ने सर्जरी का उचित माध्यम दर्शाया जो वास्तविकता है। आज भी हजारों किन्नर सर्जरी माध्यम से समान्य जीवन जी सकते हैं। उनके अविकसित लिंग को शल्य क्रिया द्वारा ठीक किया जा सकता है किन्तु पैसे के अभाव में किन्नर अपनी कमी को पूरा नहीं कर सकते हैं। मगर उनके जन्म के बाद ही माता–पिता यदि लोकोपवाद का भय त्याग कर चिकित्सा पद्धति का सहारा ले तो आज भी हजारों किन्नरों का भविष्य सँवर सकता है।

'पोस्ट बॉक्स नं० 203–नाला सोपारा' में भी चित्रा जी ने कथानायक के माध्यम से इस समस्या के समाधान की ओर इंगित किया है :–"सर्जरी की दुनिया में अंग, प्रत्यंगों का प्रत्यारोपण सफलता के नये प्रतिमान रच रहा। संभव है, जननांग दोषी अपने अविकसित लिंग दोष से मुक्ति पा जाएं।"[8]

निर्मला भुराड़िया कृत उपन्यास 'गुलाम मंडी' (2014 ई०) में लेखिका ने स्त्रियों की व्यथा के साथ–साथ किन्नर विमर्श को उजागर किया है। स्त्रियों को आत्मनिर्भर और नौकरी का झाँसा देकर वेश्यावृत्ति के मार्ग पर ढकेला जाता है, वहीं किन्नरों की त्रासदमयी हृदय विदारक पीड़ा का वर्णन लेखिका ने सजीवत ढंग से किया है। सभ्य समाज भले शुभ कार्यों में इनके आशीर्वाद को तवज्जों देता है मगर वास्तविकता यही है कि इन्हें हिकारत और जहालत की जिंदगी जीने के लिए विवश भी यही समाज करता है। लेखिका सामाजिक रूढ़ियों को दर्शाती हुई किन्नरों के रीति–रिवाज रस्मों का वर्णन करती है। किन्नर गुरुओं की स्थिति एवं महत्व को प्रदर्शित करती हुई किन्नर पात्र अंगूरी के मुख से कहलवाती है :–"पैर छुओ और अच्छा–सा एक आशीर्वाद अपने नाम कर लो। हिजड़ा गुरू का आशीर्वाद फलता है। वह भी सौ साल की गुरू। कई लोग आकर पैर छूते हैं।"[9]

महेन्द्र भीष्म का उपन्यास 'मैं पायल' (2016 ई०) किन्नर विमर्श पर आधारित है, जहाँ लेखक ने किन्नरों की त्रासद जीवन को तो उभारा ही किन्तु उनके अधिकार और न्याय की चर्चा कर उन्हें समाज में उनके अधिकार

के प्रति सजग किया है।'मैं पायल' किन्नर की जीवनी परक उपन्यास है, जहाँ किन्नर पायल परंपरागत कार्यों का विरोध करती हुई कहती है :– "मैं एक किन्नर हूँ तो क्या किन्नर होना अपराध है, जो उसे उसके स्वभाव के विपरीत कार्य करने के लिए विवश किया जा रहा है? क्या एक किन्नर को बधाई टोली के अलावा अन्य कार्य–दायित्व नहीं सौंपे जा सकते। मैं टॉकीज में प्रोजेक्टर चलाती हूँ।"[10] कथानायिका किन्नरों की तरह बाधवा अनुष्ठान में ताली पीटकर नाचना–गाना नहीं चाहती हैं बल्कि सम्मानजनक कार्य करना चाहती है।

साहित्य अकादमी से पुरस्कृत चित्रा मुद्गल का उपन्यास 'पोस्ट बॉक्स नं० 203–नाला सोपारा' (2016 ई०) आया, जिसमें लेखिका ने किन्नर कथानायक विनोद उर्फ बिन्नी उर्फ बिमली (किन्नर बिरादरी द्वारा प्रदत्त नाम) के माध्यम से किन्नरों की त्रासदमय जीवन का अंकन तो किया ही इसके साथ ही किन्नरों को आत्मनिर्भर बनकर अपने अधिकारों के प्रति सचेत किया है। कथानायक अपनी बा (माँ) को पत्र के माध्यम से अवगत कराता है कि किन्नरों की मुक्ति का एकमात्र साधन शिक्षा है। शिक्षा के बिना वह अपने मूल अधिकार और स्वतंत्रता को समझ नहीं पायेंगे। किन्नर लोकोपवाद और रुढ़िगत मान्यताओं को आजीवन ढोते रहेंगे और राजनीतिक वर्ग उनकी मासूमियत का फायदा वोट बैंक को दुरूस्त करने में उठाते रहेंगे। लेखिका ने कथानायक के माध्यम से किन्नर आंदोलन में किन्नरों को संबोधित करते हुए उसके मुख से कहलवाया है कि हम सभी सरकार से अपील करें कि हमारी घर वापसी का रास्ता प्रशस्त हो। घर–परिवार, समाज परित्यक्त किन्नरों को घर–संपत्ति में अधिकार दे। उन्हें आरक्षण अदर्स में न मिलकर स्त्री–पुरुष में ही मिले। उन्हें यह अधिकार सौंपा जाये कि वे किस श्रेणी में रहना चाहते हैं। उन्हें सरकार लिंगीय आधारपर मान्यता न दे बल्कि मनुष्य के रूप में किन्नरों को आरक्षण मिलें। प्रेस वार्त्ता में कथानायक किन्नरों के संबंध में कहता है :–"देखिए, शिक्षित और स्वालंबी होकर ही वह समाज की मुख्यधारा से जुड़ सकते हैं।"[11]

कथानायक घर–परिवार को विस्मृत नहीं कर पाता है। वहअपनी माँ को ईश्वर से बढ़कर पूजता है, उसमें पुरुष सुलभ गुण है। किन्नरों के अधिकार और न्यायिक माँग के कारण वह राजनीतिक दंश का शिकार हो मार दिया जाता है और मरणासन्न में पड़ी माँ से मिल भी नहीं पाता है। माँ पत्राचार द्वारा उससे जुड़ी रहती है, और नाला सोपारा में पोस्ट बॉक्स नं०–203 निजी पोस्ट बॉक्स नं० लेती है ताकि अपने चहेते से पत्राचार कर सके। पिता लोकोपवाद के कारण समाज में उसे मृत घोषित कर चुके हैं। कारूणिक रूप से किन्नर पर आधारित चित्रा जी का यह संवेदनशील अनुपम कृति है। कथा के अंत में माँ का माफीनामा बेटे के प्रति अखबार में छपता है, जहाँ पिता भी अपनी संपत्ति में उसे अधिकार देना चाहते हैं मगर नियति को कुछ और मंजूर था और उसकी लाश नदी में मिलती है।

हिन्दी उपन्यासकारों ने किन्नर जीवन के प्रत्येक त्रासदी, अवमानना, पीड़ा एवं अभिशप्त दंश को उजागर करने में लेखनी चलायी है। इसके साथ ही उनके अधिकार एवं मनुष्य रूप में उनके अस्तित्व को समाज के बीच प्रतिमान रूप में गढ़ा है। जो साहित्यिक अवदान की दृष्टि से अमूल्य है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. कुमारी पार्वती : 'किन्नर समाज तीसरी ताली', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2019, पृष्ठ संख्या–35

2. वही, पृष्ठ संख्या–62
3. माधव नीरजा : 'यमदीप', सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2017, पृष्ठ संख्या–82
4. वही, पृष्ठ संख्या–13
5. कुमारी पार्वती : 'किन्नर समाज तीसरी ताली', वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण–2019, पृष्ठ संख्या–61
6. मुद्गल चित्रा : 'पोस्ट बॉक्स नं० 203 नाला सोपारा', सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2019, पृष्ठ संख्या–186
7. सं० मोहरा डॉ० दिलीप : 'हिन्दी साहित्य में किन्नर जीवन', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2019, पृष्ठ संख्या–101
8. मुद्गल चित्रा : 'पोस्ट बॉक्स नं० 203 नाला सोपारा', सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2019, पृष्ठ संख्या–178
9. कुमारी पार्वती : 'किन्नर समाज तीसरी ताली', वाणीप्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण–2019, पृष्ठ संख्या–72
10. वही, पृष्ठ संख्या–84
11. मुद्गल चित्रा : 'पोस्ट बॉक्स नं० 203 नाला सोपारा', सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2019, पृष्ठ संख्या–196

ई–मेल :–drkumudkalamehta@gmail.com
मोबाईल नं० :–9973278033

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 127-130

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सामाजिक विमर्श (सोशल मीडिया युग : सोशल मीडिया का प्रभाव)

लिच्छाराम उपप्राचार्य, भारत
प्रशासक, माध्यमिक शिक्षा विभाग, राजस्थान।

परिचय :–

मनुष्य को उसके स्वभाव से एक निश्चित सीमा तक सक्रिय रहने के लिए सामाजिककरण के लिए प्रोग्राम किया गया है। जबकि उन दिनों में लोग आमने–सामने समाजीकरण करते थे जब इंटरनेट और सोशल मीडिया जैसी संचार तकनीकें मुश्किल से विकसित हुई थीं, अब उन्होंने इंटरनेट और तकनीकी उपकरणों के उपयोग के साथ वस्तुतः सोशल मीडिया अनुप्रयोगों पर समाजीकरण करना शुरू कर दिया है। सोशल मीडिया को इंटरैक्टिव कंप्यूटर और मोबाइल उपकरणों द्वारा सहायता प्राप्त किसी भी तकनीक के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो सूचना, विचारों, करियर संबंधी रुचियों और अन्य अभिव्यक्तियों को बनाने और साझा करने की सुविधा प्रदान कर सकता है।

दूसरे शब्दों में, सोशल मीडिया को किसी भी डिजिटल उपकरण के रूप में वर्णित किया जा सकता है जो उपयोगकर्ताओं को शीघ्रता से सामग्री बनाने और उसे सार्वजनिक करने में सक्षम बनाता है। सोशल मीडिया लोगों के बीच सामाजिक संपर्क है जिसमें वे आभासी समुदायों और नेटवर्क में जानकारी और विचारों का निर्माण, साझा या आदान–प्रदान करते हैं।

आज टेक्नोलॉजी का जमाना है और सोशल मीडिया हमारे देश के ग्रामीण क्षेत्र को विकसित करने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मीडिया निस्संदेह संचार का बहुत विशाल और शक्तिशाली माध्यम है। भारत में ग्रामीण युवाओं के विकास में सोशल मीडिया अहम भूमिका निभाता है। ग्रामीण क्षेत्र भारत का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा है जिसकी 70 प्रतिशत आबादी गाँवों में रहती है। "असली भारत इसके कुछ शहरों में नहीं, बल्कि इसके सात लाख गांवों में पाया जाता है। यदि गाँव नष्ट हो जायेंगे तो भारत भी नष्ट हो जायेगा।" – एम.के. गांधी

कीवर्ड : सोशल मीडिया, रिपोर्ट, उपयोगकर्ता, व्यवहार।

एक हालिया रिपोर्ट ने संकेत दिया है कि 95 से अधिक सोशल मीडिया एप्लिकेशन हैं जिनका सक्रिय रूप से उपयोग किया जा रहा है। इंटरनेट, सोशल मीडिया और मोबाइल को लेकर एक रिपोर्ट पर आधारित उपयोगकर्ताओं का वी आर सोशल 2020 के आंकड़ों के अनुसार, दुनिया भर में 3,80 बिलियन सोशल मीडिया उपयोगकर्ता हैं, जिसका अर्थ है कि दुनिया भर में हर दो में से एक व्यक्ति सोशल मीडिया उपयोगकर्ता है। 2,49

बिलियन उपयोगकर्ताओं के साथ फेसबुक पहले स्थान पर है। 2 अरब उपयोगकर्ताओं के साथ यूट्यूब दूसरे स्थान पर है, इसके बाद 1,6 अरब उपयोगकर्ताओं के साथ व्हाट्सएप है। इसके बाद क्रमशः 1,3 बिलियन उपयोगकर्ताओं और 1 बिलियन उपयोगकर्ताओं के साथ फेसबुक मैसेंजर और इंस्टाग्राम का नंबर आता है। जैसाकि देखा जा सकता है, सोशल नेटवर्क साइटें सभी सोशल मीडिया अनुप्रयोगों में सबसे अधिक उपयोग की जाती हैं क्योंकि वे मुख्य रूप से लोगों को एक–दूसरे से जोड़ने का काम करती हैं, एक तथ्य जो अधिकांश अन्य सोशल मीडिया अनुप्रयोगों पर लागू नहीं होता है।

एक अध्ययन के परिणाम द्वारा 1200 सोशल मीडिया उपयोगकर्ताओं की भागीदारी के साथ किया गया और सोशल मीडिया के उपयोग के उद्देश्यों को स्थापित करने के लिए संकेत दिया कि सोशल मीडिया के उपयोग के शीर्ष तीन उद्देश्य नए लोगों के साथ संवाद करना, दोस्तों के साथ संपर्क में रहना और मेलजोल करना है। चूंकि सोशल नेटवर्क साइटों का उपयोग सभी व्यक्तियों द्वारा किया जाता है, इसलिए वे विशेष रूप से युवाओं के बीच लोकप्रिय हैं, कई युवा इन प्लेटफार्मों पर एकत्रित होते हैं।

दैनिक उपयोग की अवधि और उपयोग व्यवहार में भी अंतर होता है। इन निष्कर्षों का समर्थन वी आर सोशल ने अपनी 2020 इंटरनेट, सोशल मीडिया और मोबाइल उपयोगकर्ता सांख्यिकी रिपोर्ट में भी किया है, जिससे पता चलता है कि 65ः व्हाट्सएप और इंस्टाग्राम उपयोगकर्ता 18–34 आयु वर्ग में हैं और लिंग के बीच कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं है। उपयोग अनुपात की शर्तें. उपयोग के मामले में दुनिया भर में पहले स्थान पर रहने वाले फेसबुक के 32 प्रतिशत उपयोगकर्ता 25–34 आयु वर्ग में हैं। ऐसे आंकड़ों से पता चलता है कि व्हाट्सएप और इंस्टाग्राम युवाओं के बीच लोकप्रिय हैं जबकि फेसबुक वयस्कों के बीच लोकप्रिय है।

अगर भारत की बात की जाए तो यहां लगभग हर तीसरा व्यक्ति सोशल मीडिया से जुड़ा हुआ है। सोशल मीडिया में सिर्फ यूजर्स की संख्या ही नहीं बढ़ी है बल्कि लोग यहां पर जमकर समय बिता रहे हैं। रिपोर्ट में इस बात का भी खुलासा हुआ है कि लोग सोशल मीडिया में औसतन करीब 2 घंटे 26 मिनट का समय हर दिन बिताते हैं। हमारे देश में सोशल मीडिया पर ज्यादा समय बिताने के मामले में महिलाएं, पुरुषों से आगे हैं।

सोशल नेटवर्क सूचना संचार और साझा करने के लिए सबसे लोकप्रिय उपकरण बन गए हैं, इससे इन मीडिया पर हमारी निर्भरता बढ़ जाती है। पिछले कुछ वर्षों के दौरान सोशल मीडिया का उपयोग एक 'वैश्विक उपभोक्ता घटना' बन गया है। आज के किशोर अक्सर सोशल मीडिया वेबसाइटों का उपयोग करते हैं, हालाँकि उनका दुरुपयोग या अत्यधिक उपयोग भी किया जा सकता है, जिसके परिणामस्वरूप सोशल मीडिया की लत लग सकती है। पुरुष और महिला दोनों लिंग कुछ मामलों में समान हैं, लेकिन सामाजिक संबंधों के कई पहलुओं को कवर करने वाला एक मजबूत पूर्वाग्रह प्रतीत होता है जो अंतर्निहित व्यवहारिक मतभेदों के अस्तित्व का सुझाव देता है। हालाँकि, लिंग के प्रभाव और सामाजिक नेटवर्क के उपयोग के संबंध में विरोधाभास हैं, कुछ अध्ययन पुरुषों में अधिक निर्भरता दिखाते हैं जबकि अन्य महिलाओं में अधिक निर्भरता दिखाते हैं। परिणामों से यह निष्कर्ष निकला कि पुरुष छात्रों में महिला छात्रों की तुलना में सोशल मीडिया की लत का स्तर अधिक है।

सोशल मीडिया का उपयोग : विश्लेषण :

सामान्य तौर पर सोशल मीडिया के कई फायदे और नुकसान हैं।

सोशल मीडिया के फायदे –

1. मानव संसाधन प्रबंधन में सोशल मीडिया का उपयोग,
2. अनुसंधान के लिए सोशल मीडिया का डेटा उपयोग,
3. विभिन्न व्यावसायिक उद्देश्यों के लिए सोशल मीडिया का उपयोग,
   (बिक्री प्रक्रिया में सोशल मीडिया का उपयोग)
4. सोशल मीडिया शिक्षा के लिए फायदेमंद है (सीखने के माध्यम के रूप में),
5. गंभीर मौसम की घटनाओं में रीयल–टाइम सोशल मीडिया डेटा का उपयोग,
6. नेक उद्देश्यों और प्रथाओं के लिए एक स्थान,
7. प्रचार और विज्ञापन के लिए सोशल मीडिया का उपयोग,
8. अद्यतन जानकारी का अच्छा स्रोत,
10. सोशल मीडिया अधिक दर्शकों तक पहुंच सकता है। (ट्रैफिक बढ़ाने के लिए)
11. सोशल मीडिया से सरकारी लाभ।
12. सोशल मीडिया से मनोरंजन।
13. आपकी वेबसाइट जनसमुदायों के निर्माण में सहायता करती है।
14. लोग सोशल मीडिया के माध्यम से जुड़ सकते हैं,

(बच्चों और किशोरों को उन दोस्तों के माध्यम से खुद को विकसित करने के लिए प्रेरित किया जाएगा जिनसे वे ऑनलाइन मिले थे–सोशल नेटवर्किंग साइटें बच्चों और किशोरों को अधिक मिलनसार, देखभाल करने वाला और सहानुभूतिपूर्ण बनाती हैं।)

सोशल मीडिया के दोष –

1. साइबर बुलिंग, (सोशल नेटवर्किंग साइटें शिकारियों के लिए अपराध करने के लिए उपजाऊ जमीन हैं।)
2. सोशल मीडिया पर हैकिंग।
3. सोशल मीडिया से आमने–सामने संचार कौशल कम हो जाता है,

(बच्चे और किशोर वास्तविक दुनिया में संवाद करना सीखने में आलसी हो जाते हैं, सोशल नेटवर्किंग साइट्स वर्तनी और व्याकरण के संदर्भ में स्कूल में उनके लेखन कौशल को प्रभावित करेंगी।)

4. फेक न्यूज,
5. सोशल मीडिया की लत (सोशल नेटवर्किंग साइटें बच्चों और किशोरों को अधिक स्वार्थी बना देंगी।)
6. सोशल मीडिया स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है,
7. सोशल मीडिया पर समय बिताना समय की बर्बादी है,
8. सोशल मीडिया नींद की समस्या का कारण बनता है,
9. सोशल मीडिया अवसाद और अकेलेपन का कारण बनता है
10. सोशल मीडिया ध्यान भटकाने का कारण बनता है।

REFERENCES :

1. india tv.in 22 july 2023,

2. https://www.academia.edu
3. https://digitalscholar.in
4. https://forms.gle/AoZdCubMtjnnrZCy7
5. हेम (2009), Brandtzæg,
6. कुस और ग्रिफिथ्स, 2017
7. कैसाले और फियोरावंती, 2018
8. डिजिलोपेडी, 2020वी आर सोशल, 2020 https://wearesocial.com
9. Obar, Jonathan A; and Steven S. Wildman- "Social media definition and the governance challenge- an introduction to the special issue." (2015)
10. ISSN–2277-8721 EIIRJ Volume–XI, Issue–VI Nov–Dec 2022 lectronic International Interdisciplinary Research Journal SJIF Impact Factor: 8.095 Peer Reviewed Refereed Journal SOCIAL MEDIA ADDICTION AMONG THE YOUTH 'Juweria A.Basit Shaikh,' Sadiya Ashraf Kazi
11. Impact of Social Media on Everyday Life of the Youth-Banasthali Vidyapth

लिच्छाराम उपप्राचार्य ,
प्रशासक, माध्यमिक शिक्षा विभाग राजस्थान
(ग्रामोदय डिग्री कॉलेज, बामरला)
V/P - BAMARALA TH. - SEDWA, DIS. BARMER
RAJASTHAN -344704 M.NO. 9784249978
Email :- laxsiyol@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 131-138

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मानव तस्करी : एक जघन्य अपराध

प्रोफेसर मंजु नावरिया

आचार्य (समाज शास्त्र), स्व. प. न. कि. श. राज. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दौसा।

सारांश :–

मानव तस्करी, मानवाधिकारों का गम्भीर उल्लंघन, एक समकालीन वैश्विक मुद्दा है जो सीमाओं, संस्कृतियों और अर्थव्यवस्थाओं से परे है। यह अरबों डॉलर का आपराधिक उद्योग है जो दुनिया भर में लगभग 25 मिलियन लोगों को गुलाम बनाता है। इस जघन्य अपराध में शोषण या व्यावसायिक लाभ के लिए लोगों का अवैध व्यापार शामिल है और इसे अक्सर 'आधुनिक गुलामी' के रूप में जाना जाता है। मानव तस्करी आपूर्ति और मांग के सिद्धान्तों पर चलती है। सस्ते श्रम, यौन सेवाओं और कुछ आपराधिक गतिविधियों की मांग इस अवैध व्यापार को बढावा देती है। हालांकि आपूर्ति पक्ष गरीबी, शिक्षा की कमी, लिंग भेदभाव, सशस्त्र संघर्ष और राजनीतिक अस्थिरता जैसे कारकों से प्रेरित है। तस्कर इन कमजोरियों का फायदा उठाकर पीड़ितों को रोजगार, शिक्षा या बेहतर जीवन के झूठे वादे करके लुभाते हैं। मानव तस्करी को रोकने के लिए एक व्यापक, बहुआयामी दृष्टिकोण की आवश्यकता है। इसमें कानूनों और विनियमों को मजबूत करना, पीड़ित की पहचान और सुरक्षा को बढाना, जागरूकता और शिक्षा को बढावा देना और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को बढावा देना शामिल है। मानव तस्करी के खिलाफ इस लड़ाई में सरकारों, गैर सरकारी संगठनों और व्यक्तियों सभी की महत्वपूर्ण भूमिका है।

कुंजी शब्द : मानव तस्करी, लिंग–भेद, अवैध व्यापार, अपराध, कानून।

महाभारत के रचियता महर्षि वेदव्यास ने इस प्रकार कहा–न मानुषात श्रृगार किचिदस्ति। अर्थात मनुष्य से परे या ऊँचा कोई दूसरा धर्म नहीं है। राष्ट्र कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने इसी बात को मानव धर्म की श्रेष्ठता कहा है। इस प्रकार हमारी संस्कृति में मानवता या इंसानीयत को सबसे बड़ी कसौटी मानने पर सदियों से बल दिया जाता रहा है। परन्तु बदलते समय के साथ समाज में परिवर्तन आना भी स्वाभिक था। अच्छे आदर्शों के बावजूद समाज में अनेक तरह के विकार पैदा हुए, जिसके अनेक ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक कारण रहे हैं। आज समाज में महिलाओ, बच्चों एवं बुजुगों के साथ कई प्रकार के अपराध घटित हो रहे है। भिक्षावृति, वेश्यावृति, बेरोजगारी, आंतकवाद, बाल मजदूरी, बाल अपराध के साथ–साथ आज मानव तस्करी एक संगठित अपराध का रूप ले चुका है।

उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रचार–प्रसार के साथ सेक्स वर्करों की बढ़ती मांग से महिलाओं और लड़कियों की अवैध मानव तस्करी को एक अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप दे दिया है। राष्ट्रीय अपराध ब्यूरो एवं 2016 में 8132 मामलों के अनुसार वर्ष 2006 में देश में अवैध मानव व्यापार से संबंधित 6063 मामले एवं 2016 में 8132 मामले दर्ज किए

गए। वेश्यावृति से संबंधित एक अध्ययन के अनुसार देश में वर्तमान में कुल 28 लाख वेश्यायें हैं जिनमें से 35.5 प्रतिशत 18 वर्ष से कम उम्र की हैं। अमेरिकी विदेश विभाग द्वारा भारत सरकार को विगत 5 जून 2006 को जारी एक पत्र के अनुसार भारत को मानव तस्करी के संदर्भ में निगरानी देशों की श्रेणी में रखा गया है। भारत में देह व्यापार का वार्षिक कारोबार 2000 करोड़ रूपये से अधिक है। इसमें लगभग चौथाई हिस्सा बाल वैश्याओं का है जिन्हें जबरदस्ती मानव तस्करी के इस धंधे में झोंका गया है।

लड़कियों एवं बच्चों के अवैध व्यापार में इधर एक दशक में आयी भारी वृद्धि का एक बड़ा कारण पर्यटन हैं। पर्यटन के विस्तार के साथ–साथ 'सेक्स–टूरिज्म' को भी विस्तार मिला, जो हमारी भोगवादी मनोवृति का परिचायक है। आजकल पर्यटक ऐसे देशों या स्थानों में अधिक रूचि लेते हैं जहाँ सेक्स के लिए सुविधाऐं उपलब्ध हो। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के एक आंकलन के अनुसार इंडोनेशिया, मलेशिया, थाइलैण्ड, बैंकाक, फिलीपीन जैसे अनेक देशों के सकल धरेलू उत्पाद का 2 से 14 प्रतिशत भाग सेक्स टूरिज्म से आता है। यह तथ्य इस सच्चाई को उजागर करता है कि विश्व स्तर पर अनैतिक व्यापार किस स्तर को छू रहा है। चूंकि विश्व के अधिकांश देशों की मांग है, अतः इस मांग को पूरा करने के लिए मानव व्यापार करने वाले लोग सक्रियता से अपनी भूमिका निभाते हैं। ये मानव व्यापारी नैतिकता और अनैतिकता को दर किनार कर मांग और आपूर्ति के नियम पर चलते हैं।

जहाँ तक भारत का संबंध है यहीं प्रतिवर्ष पडोसी देश नेपाल से ही लगभग 9 हजार महिलाएं एवं कम उम्र की लड़कियां दलालों द्वारा लाई जाती हैं। नेपाल की एक गैर सरकारी संस्था ''मैटी नेपाल'' की अध्यक्षा कोइराला के हवाले से जारी एक रिपार्ट में बताया गया है कि नेपाल से प्रतिवर्ष लगभग 18 हजार लड़कियाँ भारत एपं अन्य देशों में मानव तस्करी द्वारा पहुॅचाई जाती हैं। मैटी नेपाल के आंकलन के अनुसार भारत में दो लाख नेपाली महिलाऐं सेक्स व्यापार में लिप्त हैं।

संविधान के अनुच्छेद 23 में मानव के दुर्व्यापार अर्थात मानव तस्कारी को अपराध घोषित किया गया है। संविधान में मानव तस्करी शब्द की कोई व्याख्या नहीं दी गयी है। किन्तु अपराध की दुनिया में यह शब्द बहुत ही जाना पहचाना है। भारत में किसी व्यक्ति को गलत दस्तावेजों के आधार पर देश से बाहर ले जाने को साधारण बोलचाल में '' कबूतरबाजी'' कहा जाता है। यह भी मानव तस्करी है किन्तु यह मानव के दुर्व्यापार से काफी भिन्न है। मानव के दुर्व्यापार में मनुष्य को एक वस्तु के रूप में एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जाता है। वर्ष 2010 में संयुक्त राष्ट्र महासभा ने इस घृणित अपराध के खिलाफ कार्य करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय को प्रोत्साहित करने हेतु 'मानव तस्करी से निपटने के लिए वैश्विक योजना (The Global Plan of Action to combat Trffaicking in Persons) को अपनाया था।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 23(1) और अनैतिक व्यापार (रोकथाम) अधिनियम 1966 के तहत भारत में मानव तस्करी प्रतिबंधित है तथापि मानव तस्करी की जाँच के लिए सरकार द्वारा मानव तस्करी (निवारण, संरक्षण और पुनर्वास) विधेयक 2018 में पारित किया गया था।

मानव तस्करी की अवधारणा –

संयुक्त राष्ट्र द्वारा की गई परिभाषा के अनुसार किसी व्यक्ति को डराकर, बलपूर्वक या दोषपूर्ण तरीके से कोई कार्य करवाना, एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने या बंधक बनाकर रखने जैसे कृत्य तस्करी की श्रेणी

में आते हैं। इसमें काम, गुलामी इत्यादि कार्य पीडित व्यक्ति की इच्छा के विरूद्ध कराये जाते हैं।

मानव तस्करी, बलात् श्रम, शोषण और वैश्यावृत्ति आदि जैसे कार्यो के लिए व्यक्ति का मूवमेंट है। ट्रैफिकिंग में अन्तर्राष्ट्रीय सीमा पार करने की आवश्यकता नहीं होती है, मानव तस्करी राष्ट्रीय स्तर पर या एक समुदाय के भीतर भी हो सकती है।

तस्करी शब्द विभिन्न अर्न्तसम्बन्धित गतिविधियों का एक समुच्चय है जिसमें कार्य, वैश्यावृति, मानव अंग व्यापार आदि को सम्मिलित किया गया है। इस प्रकार मानव तस्करी मानव का अवैध व्यापार है जिसमें मानव का अन्तर्राष्ट्रीय सीमा पार एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार किया जाता है। जिससे मानव के विभिन्न अधिकारों का हनन होता है। मानव तस्करी मानव के जीवन जीने, स्वतंत्रता, सुरक्षा, सम्मानजनक व्यवहार, परिवार में रहने, शिक्षा पाने, रोजगार प्राप्त करने, स्वस्थ जीवन एवं जीवन के प्रत्येक पक्ष के अधिकारों का उल्लंघन करता है जो मानव को एक सम्मानपूर्वक जीवन जीने के लिए अनिवार्य होता है।

अमेरिकी विदेश विभाग द्वारा जारी मानव तस्करी रिपोर्ट, 2021 के अनुसार, कोविड–19 महामारी के परिणामस्वरूप मानव तस्करी के प्रति संवेदनशीलता में वृद्धि हुई है और मौजूदा तस्करी रोधी प्रयासों में बाधा उत्पन्न हुई है। मानव तस्करी जिसे व्यक्तियों की तस्करी भी कहा जाता है, आधुनिक समय की दासता का रूप है जिसमें श्रम, यौन शोषण के उद्देश्य से बल या धोखे से व्यक्तियों का अवैध परिवहन शामिल है तथा ऐसी गतिविधियों को अंजाम देने वालों को आर्थिक लाभ होता है। भारत तस्करी को खत्म करने के लिये न्यूनतम मानकों को पूरा नहीं कर पाया है, जबकि इसे खत्म करने के लिये सरकार लगातार आवश्यक प्रयास करती रही, साथ ही जब बंधुआँ मजूदरी की बात आती है तो ये प्रयास अपर्याप्त प्रयास होते है। चीनी सरकार व्यापक रूप से जबरन श्रम करवाने में लगी हुई है, इसमें दस लाख से अधिक उइगर, कज़ाख, किर्गिज और अन्य मुसलमानों को निरंतर सामूहिक रूप से हिरासत में रखना शामिल है।

तस्करी में वृद्धि के कारण –

तस्करी के जोखिम का सामना कर रहे व्यक्तियों की बढ़ती संख्या, अवैध तस्करीकर्त्ताओं की प्रतिस्पर्द्धा संकटों का लाभ उठाने की क्षमता और महामारी पर प्रतिक्रिया प्रयासों के लिये संसाधनों के विपथन/डायवर्जन आदि का सम्मिलन मानव तस्करी के फलने–फूलने एवं विकसित होने के लिये एक आदर्श वातावरण के रूप में परिणत हुआ है।

मानव तस्करी एक अन्तर्राष्ट्रीय अपराध है। एक मानव तस्करी मानवता के विरूद्ध एक अपराध है जो पिछले 200 वर्षों से इतिहास में उपस्थित रही हिंसा है जो आज भी उपस्थित है और यह एक अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दा बन चुका है। अगर वैश्विक आँकडे देखे तो मानव तस्करी एक महामारी के रूप में फैल चुकी है। यूनाइटेड नेशन्स ऑफिस ऑन ड्रग एण्ड क्राइम (UNODC) की रिपोर्ट के अनुसार 137 देशों में से 121 देशों में मानव तस्करी उपस्थित है। संविधान के अनुच्छेद 21 के अनुसार कानून के अतिरिक्त किसी भी दूसरे तरीके से किसी व्यक्ति को उसके जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जा सकता है।

एक मानव तस्करी अपराध से कई अन्य अपराधों का जन्म होता है। यह एक मानवीय आपदा है। वैश्विक स्तर पर संगठनों ने मानव तस्करी को ऑकडों के आधार पर समझाया है ये हैं – यूनाइटेड स्टेट्स गर्वनमेंट, ILO, IOM, UNODC यूनाइटेड स्टेट्स गवर्नमेण्ट Aa ILO (Internnational Labour Organcation) ने सम्पूर्ण

विश्व के पीड़ितों के आँकड़े बताये और IOM ने सहायता प्राप्त पीड़ितों के बारे में आँकड़े एकत्रित किये और UNOD ने मानव तस्करी के अन्तर्राष्ट्रीय मार्गो को चिन्हित किया। जब सम्पूर्ण आँकड़ों पर दृष्टिपात किया जाता है तो तीन मुख्य ट्रेफिकिंग ट्रेंड दिखाई देते हैं –

(1) चिल्ड्रन ट्रेफिकिंग– जिसका मुख्य उद्देश्य बाल मजदूर शोषण है।

(2) महिलाओं एव लड़कियों की यौन शोषण के लिए तस्करी की जाती है।

(3) उच्च स्तर पर अन्तर्राष्ट्रीय तस्करी जो कि सीमा पर अस्तित्व में रहती है।

मानव तस्करी एक लगातार बढ़ती आपराधिक प्रघटना है। यह प्रघटना केवल अन्तर्देशीय नहीं है बल्कि अन्तःदेशीय तस्करी भी पाई जाती है जिसमें बालक, स्त्री एवं पुरूष भी सम्मिलित रहते हैं। लड़कियों की तस्करी घरेलू मजदूरी, जबरन वैश्यावृति एवं जबरन शादी जैसे कार्यो के लिए किया जाता है और लड़कों की तस्करी कृषि कार्य, पशुपालन, वृक्षारोपण कार्य, मछलियों को पकडने आदि के लिए की जाती है और महिलाओं की तस्करी घरेलू श्रम, जबरन वैश्यावृति, सेवा एवं उद्योगों में कार्य करने के लिए की जाती है वहीं पुरूषों की तस्करी मुख्यतः मानवीय एवं कृषि मजदूरी, निर्माण कार्य एवं आपराधिक गतिविधियों के लिए की जाती है।

मानव तस्करी के कारण –

– गरीबी, अशिक्षा।
– प्राकृतिक आपदा और अस्थिरता।
– बंधुआ मजदूरी।
– प्रवासन एवं रोजगार।
– देह व्यापार।
– प्रशासनिक लापरवाही।
– सामाजिक असमानता।
– क्षेत्रीय लैंगिक असंतुलन।
– बेहतर जीवन की लालसा।
– सामाजिक सुरक्षा की चिन्ता।

महानगरों में घरेलू कार्यो के लिये लड़कियों की तस्करी –

चाइल्ड पार्नोग्राफी के लिए बच्चों की तस्करी, आदि मानव तस्करी के मूल कारण है इनके अलावा हम सिर्फ अपने देश भारत की बात करें तो यहाँ और भी कई कारण उभर कर सामने आते हैं जो निम्नानुसार हैं–

– लिंग आधारित हिंसा।
– भेदभावपूर्ण मजदूरी प्रथा।
– पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना।
– विघटित होते परिवार।
– प्रजातीय, धार्मिक एवं साम्प्रदायिक सीमान्तीकरण।
– असफल एवं भ्रष्ट सरकार।
– परिस्थिति में कमी।

– परिवार में महिलाओं की स्थिति।
– शक्ति, संस्तरण और सामाजिक स्तर।
– बच्चों की भूमिका एवं जिम्मेदारियां।
– ऐतिहासिक बंधुआ मजदूरी प्रथा।
– कम उम्र में या जबरन विवाह।
– उच्च तलाक दर एवं सामाजिक कलंक।
– व्यक्तिगत विकास में बाधाऐं।
– सीमित शैक्षणिक उपलब्धियाँ।
– सीमित आर्थिक अवसर आदि।

इस प्रकार मानव तस्करी रूपी राक्षस कोई प्रकट नहीं होता बल्कि उसे जन्म देने वाले कारक रूपी बीज इसी समाज में उपस्थित रहते हैं।

मानव तस्करी को रोकने हेतु किए जा रहे प्रयास–

गैर सरकारी संगठनों, स्वयं सेवी संस्थानों, मीडिया, कॉरपोरेट संस्थाऐं, मानवाधिकार संगठन, उद्योग समूह आदि संगठनों द्वारा इस पर सामूहिक चिंता करने के साथ उल्लेखनीय कार्य किए भी जा रहे है।

भारत में प्रासंगिक कानून :

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 23 और 24

– अनुच्छेद 23 : यह मानव तस्करी और बेगार (बिना भुगतान के जबरन श्रम) को प्रतिबंधित करता है।
– अनुच्छेद 24 : यह 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चें के कारखानों और खदानों जेसे खतरनाक स्थानों में रोज़गार पर रोक लगाता हैं।

भारतीय दंड संहिता (IPC) **धारा –**

– IPC की धारा 370 और 370A मानव तस्करी के खतरे का मुकाबला करने हेतु व्यापक उपाय प्रदान करती हैं, जिसमें शारीरिक शोषण या किसी भी रूप में यौन शोषण, गुलामी, दासता या अंगों को जबरन हटाने सहित किसी भी रूप में शोषण के लिये बच्चें की तस्करी शामिल है।
– धारा 372 और 373 वेश्यावृत्ति के उद्देश्य से लड़कियों को बेचने और खरीदने से संबंधित है।

अन्य विधान :

– अनैतिक व्यापार (रोकथाम) अधिनियम, 1956 (ITPA) व्यावसायिक यौन शोषण के लिये तस्करी की रोकथाम हेतु प्रमुख कानून है।
– महिलाओं और बच्चों की तस्करी से संबंधित अन्य विशिष्ट कानून बनाए गए हैं जैसे–बाल विवाह निषेध अधिनियम, 2006, बंधुआ श्रम प्रणाली (उन्मूलन) अधिनियम, 1976, बाल श्रम (निषेध और विनियमन) अधिनियम, 1986 और मानव अंग प्रत्यारोपण अधिनियम, 1994।
– यौन अपराधों से बच्चों का संरक्षण (POCSO) अधिनियम, 2012 बच्चों को यौन शोषण से बचाने के लिये एक विशेष कानून है।

राज्य सरकारों ने इस मुद्दे से निपटने के लिये विशिष्ट कानून भी बनाए हैं (उदाहरण के लिये पंजबा

मानव तस्करी रोकथाम अधिनियम, 2012)।

भारत सरकार द्वारा उठाए गए अन्य कदम –

– मानव तस्करी के अपराध से निपटने के लिये राज्य सरकारों द्वारा विभिन्न निर्णयों को संप्रेषित करने और कार्यवाही पर अनुवर्ती कार्यवाही करने हेतु गृह मंत्रालय (MHA) में वर्ष 2006 में एंटी ट्रैफिकिंग नोडल सेल की स्थापना की गई थी।

– मानव तस्करी रोधी इकाई (AHTU) : गृह मंत्रालय ने एक व्यापक योजना –स्ट्रेंथनिंग लॉ एनफोर्समेंट रिस्पांस इन इंडिया अगेंस्ट ट्रेफिकिंग इन पर्सन्स' (2010) के तहत देश के कई जिलों में AHTU की स्थापना के लिये फंड जारी किया था।

– AHTU की प्राथमिक भूमिका पीड़ितों की देखभाल और पुर्नवास के लिये कानून प्रवर्तन और अन्य संबंधित एजेंसियों के साथ संपर्क करना है।

 संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन :

भारत ने (वर्ष 2011 में) अंतर्राष्ट्रीय संगठित अपराध पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन (UNCTOC) की पुष्टि की है, जिसमें अन्य लोगों के बीच विशेष रूप से महिलाओं और बच्चों की तस्करी को रोकने और दंडित करने के लिये एक प्रोटोकॉल है।

 सार्क कन्वेंशन : भारत ने वेश्यावृत्ति के लिये महिलाओं और बच्चों की तस्करी को रोकने और इसका मुकाबला करने हेतु सार्क कन्वेंशन की पुष्टि की है।

 द्विपक्षीय तंत्र : महिलाओं और बच्चों में मानव तस्करी की रोकथाम, बचाव, पुनर्प्राप्ति, प्रत्यावर्तन और तस्करी के पीड़ितों के पुनः एकीकरण के लिये भारत व बांगलादेश के बीच एक समझौता ज्ञापन (एमओयू) पर जून 2015 में हस्ताक्षर किये गये थे।

 न्यायिक संगोष्ठी : यह उच्च न्यायालय स्तर पर आयोजित की जाती है।

– इसका उद्देश्य मानव तस्करी से संबंधित विभिन्न मुद्दों के बारे में न्यायिक अधिकारियों को संवेदनशील बनाना और त्वरित अदालती प्रक्रिया सुनिश्चित करना हैं

 क्षमता निर्माण : सरकार द्वारा पूरे देश में क्षेत्रीय स्तर, राज्य स्तर और जिला स्तर पर पुष्टि अधिकारियों तथा अभियोजकों के लिये 'मानव तस्करी का मुकाबला' करने हेतु विभिन्न प्रशिक्षण (TOT) कार्यशालाएँ आयोजित की गई हैं।

तस्करी से निपटने के सुझाव :

पीड़ितों की रक्षा करने और अपराधियों को सजा दिलाने हेतु सभी देशों का समर्थन करने के लिये तकनीकी सहायता बढ़ाने और सहयोग को मजबूत करने की आवश्यकता है।

मानव तस्करी के खतरे से निपटने के लिये गैर सरकारी संगठनों के साथ–साथ पुलिस का क्षमता निर्माण आवश्यक हैं। तस्करी के अपराध के बारे में बच्चों को शिक्षित करने हेतु उनके स्कूली पाठ्यक्रम में इन विषयों को शामिल करना। लोगों को एक समाज के रूप में जागरुक करना अर्थात् यदि कोई व्यक्ति किसी भी संदिग्ध गतिविधि के साथ सामने आता है तो संबंधित अधिकारियों को इसकी सूचना देनी चाहिये।

आंतरिक रूप से प्रशासन में या पुलिस या गैर सरकारी संगठनों जैसे एजेंसियों के बीच या विभिन्न देशों

के बीच भी उचित डेटा साझाकरण सुनिश्चित करने की आवश्यकता है।

इसी प्रकार कानूनी प्रावधानों की बात करें तो अनैतिक व्यापार निवारण अधिनियम–1956, आपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम–2013 के माध्यम से भारतीय दण्ड सहिता की धारा 370 और 370 के प्रावधान, POCS अधिनियम– 2012 बाल विवाह निरोधक अधिनियम–2006 बंधुआ मजदूरी प्रणाली (उन्मूलन) अधिनियम 1976. श्रम (निषेध व नियम) कानून–1966, मानव अंग प्रत्यारोपण अधिनियम–1994 आदि अधिनियम एवं कानून बनाये गये हैं, जिनमें मानव तस्करी संबंधी विभिन्न अपराध है जैसे यौन शोषण, दासता, सेवा या अंगों के व्यापार महिलाओं एवं बच्चों के अवैध व्यापार आदि को रोकने हेतु सजा का प्रावधान किया गया है। साथ ही तस्करी के शिकार लोगों को उन अपराधों के लिए प्रोसीक्यूट नहीं किया जाएगा जो कि तस्करी से सीधे संबधित नहीं होते।

निष्कर्ष –

ट्रैफिकिंग का अर्थ होता है बहुत से मानवाधिकारों का उल्लंधन, ऐसे में उनका पुर्नवास बहुत ही संवेदनशील मुद्दा होता है, चूंकि पीड़ित न सिर्फ शारीरिक, बल्कि बहुत से मानसिक शोषण और प्रताड़ना से गुजरते हैं। सबसे बड़ी समस्या यह होती है कि परिवार भी इन्हें समाज में बदनामी के डर से अपनाने से कतराते हैं। अतः सबसे ज्यादा जरूरत इस बात की है कि पीड़ित को सुरक्षा मिले। मानसिक रूप से उसे सामान्य किया जाये। उसे बेहतर भविष्य की ओर आशान्वित किया जाये। जब कहीं जाकर पूरी तरह से कामयाबी मिल पाएगी। एन्टी ह्यूमल ट्रैफिकिंग एक्टिविस्ट प्रोफेसर पी. एम. नायर ने कहा है कि मानव तस्करी के धन्धे में लगे लोगो ने अब सोशल मीडिया को ट्रैफिकिंग का जरिया बना लिया है। सोशल साइट्स के जरिए अब ट्रैफिकिंग की घटनाओं को अन्जाम दिया जा रहा है अतः पोर्न साइट्स पर पाबन्दी होनी चाहिए। एन्टी ह्यूमन ट्रैफिकिंग यूथ क्लब बनाये जाये, जिसमें स्कूल एवं कॉलेज के विद्यार्थियों एवं टीचर्स एवं पुलिस के सदस्यों को शामिल किया जाये। एन्टी ह्यूमन ट्रैफिकिंग मुहिम को ओर मजबूत कर उसमें ज्यादा से ज्यादा युवाओं को जोड़कर लोगों को जागरूक बनाए। इसके साथ आज समाज से इस जघन्य अपराध को मिटाने के लिए सभी मानव तस्करी रोधी ईकाइयों को पुलिस स्टेशन के समान शक्ति प्रदान की जानी चाहिए। समाज में बढ़ते इन्टरनेट और तकनीकी के प्रयोग में वृद्धि को देखते हुए पुलिस एवं अन्य संबंधित संस्थाओं को ऐसी चुनौतियों से निपटने हेतु आवश्यक प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। सीमावर्ती राज्यों एवं देशों के साथ मिलकर सुरक्षा बलों का गठन किया जाना चाहिए। साथ ही छात्रों को विद्यालय एवं महाविद्यालय स्तर पर मानव तस्करी और इन्टरनेट से जुड़े अपराधों के बारे में जागरूक किया जाना चाहिए। मानव तस्करी जैसी जघन्य समस्या के प्रति पंचायत स्तर पर जागरूकता कार्यक्रमों का नियमित आयोजन किया जावे साथ ही मिडिया के माध्यम से लोगों को जागरूक किया जावें। तभी इस वैश्विक जघन्य समस्या से छुटकारा पाया जा सकता है।

संदर्भ –

1. Crime in India, 2016, National crime Recoards Bureau
2. Menaka Gandhi Vs Union of India 1978 AIr
3. Guidelines 7, Recommended Princples and Guidelines on Human Rights and Human Trffaicking, OHCH

4. मानव अधिकार की संस्कृति (2010) नन्द किशोर आचार्य, वाग्देवी प्रकशन, बीकानेर।
5. योजना मासिक पत्रिका (अप्रैल 2011) प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, भारत सरकार।
6. Responding to trffaicking for sexual Exploitation in south Asia, New Delhi, 10-11, October 2007
7. Report on United Nations office on Drugs and Crime, Trffaicking in persons,
8. Vulnerabilities conflict and Post – conffict countries Uganda, 19-20, June, 2007

मो.नं. 9887038681
E-mail Add.nawriyamanju@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 139-145

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

दीनदयाल उपाध्याय का आर्थिक चिन्तन

डॉ. (श्रीमती) मंजुलता कश्यप
सहायक प्राध्यापक (अर्थशास्त्र)
शासकीय टी.सी.एल. स्नातकोत्तर महाविद्यालय जांजगीर (छ.ग.)

सारांश :-

उपाध्याय इस प्रकार के समाजशास्त्र व मनोविज्ञान के पक्षधर है जिसमें कर्म की प्रेरणा का आधार लोभवृत्ति नहीं वरन् कर्त्तव्यसुख है। वे उस अर्थशास्त्र के खिलाफ है जो मानव जीवन के सामाजिक एवं मनौवैज्ञानिक पहलुओं की उपेक्षा करता है। अपने ही गति से चलने वाले अर्थशास्त्र के हवाले समाज को नहीं किया जा सकता। अर्थचक्र को समाजशास्त्र व धर्मशास्त्र के अनुकूल नियोजित करना आवश्यक है। इनकी मान्यता है कि उपभोगवाद, स्पर्द्धावाद और वर्ग संघर्ष इन सबका आधार अनियंत्रित उपभोग है। वास्तविकता यह है कि अधिकाधिक उपभोग का सिद्धांत ही मनुष्य के दुःखों का कारण है। उपाध्याय धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र व समाजशास्त्र में पारस्परिक संतुलन के पक्षधर है।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का मानना है कि किसी देश की अर्थव्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जो मानव के मानवत्व को समाप्त न करे, इससे उस पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए। बल्कि उसका विकास होना चाहिए। लक्ष्य यह हो कि मनुष्य मानवत्व से ऊपर उठता हुआ देवत्व की ओर बढ़ सके। भारतीय संस्कृति मनुष्य के पूर्ण विकास की पक्षधर है। अर्थव्यवस्था का लक्ष्य लोगों के भरण–पोषण, जीवन के विकास और राष्ट्र की धारणा के लिए भौतिक साधनों का उत्पादन होना चाहिए, जिनकी आवश्यकता होती है। प्रत्येक देश में इस प्रश्न पर विचार किया गया है कि उत्पादन उपभोग का अनुसरण करे अथवा उपभोग उत्पादन का।

आर्थिक विकास का मुख्य उद्देश्य सामान्य मानव का सुख है।

वे प्रकृति के संतुलित दोहन के पक्षधर है। उनके अनुसार प्राकृतिक संपदा सीमित है। यदि उत्पादन को असीमित बढ़ाया जायेगा तो प्राकृतिक साधन लम्बे समय तक हमारा साथ नहीं देगें। प्रकृति की विभिन्न वस्तुओं के बीच एक तालमेल है। वर्तमान युग की अर्थव्यवस्था इस संतुलन को बिगाड़ रही है। हमें प्रकृति से उतना ही लेना चाहिए जितने की वह पूर्ति कर सके।

दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार – ''कमाने वाला खायेगा'' की जगह ''खाने वाला कमायेगा'' का लक्ष्य रखकर भारत की अर्थ रचना करनी चाहिए। वे चाहते थे कि नया युग श्रम का युग हो।

दीनदयाल उपाध्याय का अर्थ चिन्तन समग्रतावादी है। विशुद्ध आर्थिक दृष्टि से ही संपूर्ण मानव जीवन को देखने के वे विरोधी है। मानवीय सांस्कृतिक मूल्यों की दृष्टि से उनका अर्थ चिन्तन आदर्शवादी है लेकिन

वह चिन्तन अव्यवहारिक न बने। अतः उन्होने साथ–साथ व्यवहार्य व्यवस्थाओं के विवेचन का भी प्रयत्न किया है। वे किसी वाद विशेष से कट्टरतापूर्वक बंधने की बजाय शाश्वत जीवन मूल्यों के प्रकाश में यथासमय आवश्यक परिवर्तन एवं मानवीय विवेक में आस्था रखते है।

मुख्य शब्द – समतावादी आर्थिक दृष्टि, अर्थनीति का भारतीयकरण, भारतीय संस्कृति में अर्थ, धन का मनोविज्ञान, संपत्ति पर स्वामित्व, आर्थिक लोकतंत्र, विक्रेन्द्रित अर्थव्यवस्था

अध्ययन का उद्देश्य –

वर्तमान परिदृश्य में भारतीय अर्थव्यवस्था में उपाध्याय जी के स्वदेशी आर्थिक चिन्तन की आवश्यकता।

स्वदेशी आर्थिक नीतियों के संदर्भ में पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी के विचारों का मूल्यांकन।

भारतीय अर्थव्यवस्था के संदर्भ में उपाध्याय जी के स्वदेशी आर्थिक चिन्तन पर प्रकाश डालना।

अध्ययन विधि – द्वितीयक सामंको पर आधारित।

दीनदयाल उपाध्याय जब राजनीतिक दल के कार्यकर्ता बने तब उन्होने महसूस किया कि स्वतंत्र अर्थनीति के बिना कोई स्वंतत्र समाज अपना समुचित विकास नहीं कर सकता। वे कोई बना बनाया आर्थिक राजनीतिक ढांचा स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। दीनदयाल उपाध्याय एक ऐसे दल के नायक थे जो मूलतः संस्कृतिवादी था तथा भौतिक जीवन के बने–बनाए पाश्चात्य मार्गो पर नहीं चलना चाहता था। आधुनिक लोक कल्याणकारी राज्य कल्पना के साथ बिना ''आर्थिक नीति'' के कोई राजनीतिक दल नहीं चल सकता। सामाजिक आर्थिक जीवन से निकटता प्राप्त किए बिना सांस्कृतिक, धार्मिक व शास्त्रीय अवधारणाओं के बल पर कोई दल राजनीतिक वर्चस्व नहीं प्राप्त कर सकता। अतः जब दीनदयाल उपाध्याय ने दल का नेतृत्व संभाला तो उन्होने अपने दल के सांस्कृतिक आग्रहो के अनुकूल अर्थनीति को विकसित करने का प्रयत्न किया। दीनदयाल उपाध्याय द्वारा क्रमबद्ध रूप से लिखी हुई 3 पुस्तकें अध्ययनार्थ उपलब्ध है –

दो योजनाएं – वायदे, अनुपालन, आसार।

भारतीय अर्थनीति – विकास की एक दिशा।

भारतीय अर्थनीति का अवमूल्यन – एक महान क्षति।

समतावादी आर्थिक दृष्टि –

दीनदयाल उपाध्याय ने अपना आर्थिक प्रलेख ''भारतीय जनसंघ की अर्थनीति'' शीर्षक से उत्तर प्रदेश के प्रादेशिक सम्मेलन 1953 के अवसर पर कार्यकर्ता शिविर के लिए लिखा। लेकिन उसके पहले भी ऐसी कुछ घटनाएं घटित हुई, जिनमें उनकी मूलभूत आर्थिक दृष्टि का हमें परिचय मिलता है।

जनसंघ के महामंत्री के रूप में 25 जुलाई 1953 को उनका दिया गया सार्वजनिक वक्तव्य दृष्टव्य है – ''हमारा आर्थिक कार्यक्रम बिल्कुल समाजवादी है। हम वर्तमान आर्थिक ढांचे में दिखने वाली आय–व्यय विषयक विषमता को नष्ट करने के लिए प्रतिबद्ध है। अतएव न्यूनतम तथा अधिकतम आय के मध्य हम एक और बीस का अनुपात बैठाना चाहते है। हम न केवल आधारभूत उद्योगों का राष्ट्रीयकरण चाहते है, बल्कि उन उद्योगों पर भी यह सिद्धांत लागू करना उचित समझते है जिन पर कुछ मुट्ठी भर लोगों का एकाधिकार हो जाता है। आर्थिक व राजनीतिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण हमारा मुख्य सिद्धांत है। उनके चिन्तन को स्पष्ट करने वाली 3

घटनाओं की व्याख्या प्रासंगिक है – कानपुर के सूती मिल में मजदूरों ने बेकारी बढ़ाने वालें यंत्रो के अभिनवीकरण के खिलाफ हड़ताल की। उपाध्याय जी ने इसका समर्थन किया। दिल्ली में दुकानहीन विक्रेताओं की समस्या पर उन्होने कहा – ''आज देश में जिस प्रकार भूमिहीन किसानों की समस्या है वैसे ही दुकानहीन व्यापारियों की समस्या है।'' हमें उनका हल ढूंढना होगा। विन्ध्य प्रदेश में हीरा खदानों का स्वतंत्र निगम बनाते हुए खदान मालिकों से खाने छीन ली जाए तथा कोई मुआवजा न दिया जाये, इस आशय का प्रस्ताव जनसंघ कार्य समिति ने पारित किया।

अर्थनीति का भारतीयकरण –

कुटीर उद्योगों को भारतीय अर्थनीति का आधार मानकर विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था का विकास करने से ही देश की आर्थिक प्रगति संभव है। उपाध्याय बड़े उद्योगों के आधार पर रचित अर्थव्यवस्था को भारतीय परिस्थिति में उचित नहीं समझते थे। कृषि के क्षेत्र में छोटे तथा स्वामित्ववान खेतो के पक्षधर थे। 1959 में कांग्रेस अधिवेशन में साम्यवादी चीन की कृषि योजना की नकल पर ''सहकारी कृषि'' के प्रस्ताव का विरोध किया।

वे देश में घटित होने वाली हर आर्थिक घटना पर अपनी टिप्पणी करते थे। जब सरकार ने खाद्यान्न व्यवसाय के राष्ट्रीयकरण का प्रस्ताव रखा, दीनदयाल जी ने गंभीर अर्थशास्त्रीय तर्को के साथ इसका विरोध किया। 1960 में पी एल 480, 1963 में स्वर्ण नियंत्रण कानून तथा 1996 में भारतीय रूपये का अवमूल्यन ऐसी घटनाएं थी, जिनके कारण दीनदयाल जी बौद्धिक रूप से आंदोलित हुए। दीनदयाल उपाध्याय हमारी पंचवर्षीय योजनाओं के नियमित समीक्षक थे।

दीनदयाल उपाध्याय सहज गति के पक्षधर थे। वे क्रमिक विकास को अधिक टिकाऊ और कम समस्याएं पैदा करने वाला मानते थे। दुनिया की प्रगति की दौड़ में जहां हमारा राष्ट्रीय व्यक्तित्व आगे दिखाई देना चाहिए वहीं राष्ट्र का व्यक्ति–व्यक्ति उसमें सहभागी हो, इसकी भी चिन्ता करनी चाहिए इसलिए उनका यह आग्रह सदा बना रहा कि – ''सबको काम'' पंचवर्षीय योजनाओं की प्रथम वरीयता होनी चाहिए।

उपाध्याय ने चौथी पंचवर्षीय योजना पर अपनी टिप्पणी व समीक्षा पूर्व तीन योजनाओं की तुलना में अधिक व्यापक व क्रमबद्ध रूप से की है। तीन योजनाओं की उपलब्धियों को स्वीकार करते हुए उपाध्याय कहते है – ''इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि आज हम देश में ऐसी बहुत से चीजें पैदा कर रहे है जो 15 वर्ष पहले बाहर से मँगानी पड़ती थी। किन्तु विचार का विषय है कि ये सब हमें किस कीमत पर मिले है? हम कई समस्याओं का निदान नहीं कर सके तथा कई गंभीर समस्याएं पैदा हो गई है – खा़द्याभाव, बेकारी, मंहगाई, मुद्रास्फाति, करभार, भुगतान–असंतुलन में वृद्धि, आर्थिक विषमता में वृद्धि आदि। योजनाओं की यह मौलिक गलती है कि वे श्रम प्रधान नहीं है। हमें सार्वजनिक क्षेत्र का मोह त्यागना होगा, जो निजी उद्यमियों को उद्योजन पर प्रतिबंध लगाता है। सामाजिक न्याय का उद्देश्य तब तक पूरा नहीं हो सकता जब तक सरकारी क्षेत्र के विस्तार के साथ–साथ निजी क्षेत्र की वृद्धि की दिशा और ढंग पर प्रभावी नियंत्रण न लाया जाए।

फिजूलखर्ची पूंजीप्रधान दृष्टिकोण करो के भारी बोझ तथा बेरोजगारी में अभिवृद्धि करने वाली योजनाएं उपाध्याय द्वारा आलोचना का विषय बनायी गयी है। विदेशी मुद्रा का संकट हमारी अर्थव्यवस्था का नासूर बन गया है।

चौथी योजना में यह प्रस्ताव किया गया कि सरकारी कारखानों में मूल्यनीति का इस प्रकार निर्धारण किया

जाए कि उसमें कम से कम 12 प्रतिशत मुनाफा हो। यह मुनाफा खर्चो में किफायत, प्रबंध में कुशलता तथा वैज्ञानिकता से हो।

उत्पादन की प्राथमिकताओं को बदला जाए। उपाध्याय के अनुसार – हम नियोजन के विरूद्ध नहीं है पर हमारी योजनाएं न तो यथार्थ पर आधारित है न समाज में कर्म की प्रेरणा पैदा करती है। एक स्वतंत्र आयोग बैठाना चाहिए जो पिछले 15 वर्षो की आर्थिक स्थिति तथा अपनाई गयी नीतियों की जांच करे और मौलिक गलतियों को बताए।

भारतीय संस्कृति में अर्थ –

समाज से अर्थ के प्रभाव व अभाव दोनो को मिटाकर उसकी समुचित व्यवस्था करने को अर्थायाम कहा गया है। चाणक्य के अनुसार – ''अर्थ के बिना धर्म नहीं टिकता।'' ''श्रम'' को धर्म का पहला लक्षण बताया गया। श्रम करना मनुष्य का मूलभूत कर्त्तव्य है। इसी प्रकार मनुष्य को श्रम का अधिकार देना राज्य का मूलभूत कर्त्तव्य है। अतः श्रम का अधिकार (Right to Work) मनुष्य का संवैधानिक अधिकार है। राज्य का यह प्रथम कर्त्तव्य है कि वह प्रत्येक नागरिक को उसकी योग्यता व क्षमता के अनुसार काम करने का अवसर दे। राष्ट्र के पुनर्निर्माण की जो भी योजना बनाई जाए उसका उद्देश्य सभी व्यक्तियों को काम दिलाना होना चाहिए (पूर्ण रोजगार) इसी आधार पर दीनदयाल उपाध्याय पंचवर्षीय योजनाओं के निर्माण में सदैव यह आग्रह करते रहे कि हमें अपना योजना लक्ष्य घोषित करना चाहिए – ''सब को काम''।

धन का मनोविज्ञान –

समाज में अर्थ का अभाव अथवा अभाव मूलक नियोजन समाज में अधर्म को धर्म बना देता है। अर्थ का प्रभाव भी धर्म का नाश करता है। जब समाज में सभी ''धन परायण'' हो जाए तो प्रत्येक कार्य के लिए अधिकाधिक धन की आवश्यकता होगी। धन का यह प्रभाव प्रत्येक के जीवन में अर्थ का अभाव उत्पन्न कर देगा। इसलिए यह प्रतिपादित करते है कि ''समाज के मानदण्ड ऐसे बनाए जाए कि हर वस्तु पैसे से न खरीदी जा सके।''

श्रम और पारिश्रमिक दोनो का अर्थशास्त्र के क्षेत्र में घनिष्ठ संबंध होने पर भी व्यवहार जगत के लिए सर्वमान्य एवं सर्वकश मूल्य सिद्धांत निश्चित करना न तो सरल है और न उपादेय ही। वास्तविकता तो यह है कि दोनों का मूल्यांकन पृथक मानदण्ड से होता है। श्रम की प्रतिष्ठा उससे मिलने वाले अर्थ के कारण नहीं अपितु उसके धर्मत्व से है। इसी प्रकार किसी भी व्यक्ति को दिया गया पारिश्रमिक उसके द्वारा किए श्रम का प्रतिदान नहीं वरन् उसके योग क्षेम की व्यवस्था है।

संपत्ति पर स्वामित्व –

उपाध्याय संपत्ति के स्वामित्व के लिए व्यक्ति व समाज के द्वंद को ही गलत मानते है। हर व्यक्ति समाज का प्रतिनिधि है। अतः वह समाज की संपत्ति के एक हिस्से का संरक्षक है। वे विकेन्द्रित राज्य व विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था के समर्थक है। व्यक्ति के निजत्व को कुचलने वाले राज्याधिकार व समाज की उपेक्षा करने वाले वैयक्तिक अधिकारों के खिलाफ है। ''ट्रस्टीशिप'' का सिद्धांत प्रत्येक व्यक्ति को समाज का दायित्ववान घटक मानता है। संपत्ति पर साझा अधिकार ही उपाध्याय के एकात्म मानववाद की आत्मा है।

पूंजीवाद का निषेध –

उन्मुक्त आर्थिक प्रतिस्पर्द्धा पूंजीवाद का आधार है। उपाध्याय पूंजीवाद को व्यक्तिवाद की विकृति मानते है। प्राप्त शक्ति तथा प्रचारतंत्र के माध्यम से उत्पादन के स्वामी आम जनता को उनके अधिकार से वंचित करते है अतः आवश्यक है कि उत्पादन के सामर्थ्य की मर्यादा निश्चित की जाए, जो कि विकेन्द्रीकरण से ही संभव है। पूंजीवाद की प्रवृत्ति वित्तीय सत्ता को कुछ हार्थो में केन्द्रीकृत कर देने की है। वे बेतहाशा मशीनीकरण व औद्योगीकरण के खिलाफ है। पूंजीवादी व्यवस्था समाज में प्रतिक्रिया उत्पन्न करती है, सम्यक जीवन का नियोजन नहीं करती। समाज के सांस्कृतिक मूल्यों को नष्ट कर उसे ''उउपभोगवाद'' के दुष्चक्र में फंसाकर ''लोलुप'' बनाती है।

समाजवाद का निषेध –

उपाध्याय समाजवादी वृत्ति के प्रशंसक है लेकिन उसके राज्यवाद व केन्द्रीकरण के व्यवहारिक उपायों के सर्वथा विरूद्ध है। कोई व्यवस्था व्यक्ति निरपेक्ष नहीं होती तथा कोई व्यक्ति व्यवस्था निरपेक्ष नहीं हो सकता। वे इस प्रकार की समाज व्यवस्था के पोषक है जो अपने मनुष्य की चिंता करती है। उपाध्याय मानते है कि समाजवाद में केन्द्रीकरणवादी पूंजीवाद के सब दोष विद्यमान रहते है।

आर्थिक लोकतंत्र –

'प्रत्येक को वोट' जैसे राजनीतिक प्रजातंत्र का निष्कर्ष है वैसे ही ''प्रत्येक को काम'' यह आर्थिक लोकतंत्र का मापदण्ड है। ''प्रत्येक को काम'' के अधिकार की व्याख्या करतें हुए वे कहते है कि काम प्रथम तो जीविकोपार्जनीय हो तथा दूसरे उसे व्यक्ति को चुनने की स्वतंत्रता हो। यदि काम के बदले में राष्ट्रीय आय का न्यायोचित भाग उसे नहीं मिलता तो उसके काम की गिनती बेगार में होगी। आर्थिक स्वतंत्रता व राजनीतिक स्वतंत्रता परस्पर अन्योन्याश्रित है। जो अर्थ की दृष्टि से स्वतंत्र है वही राजनीतिक दृष्टि से अपना मत स्वतंत्रतापूर्वक अभिव्यक्त कर सकेगा।

मनुष्य के उत्पादन–स्वातंत्र्य पर सबसे बड़ा आघात पूँजीवादी औद्योगीकरण ने किया है। अतः उपाध्याय औद्योगीकरण का इस प्रकार से नियमन चाहते है कि जिससे वह स्वतंत्र, लघु एवं कुटीर उघोगों को समाप्त न कर सके।

प्रत्येक को काम का सिद्वाँत स्वीकार कर लिया जाये तो सम वितरण की दिशा सुनिश्चित हो जाती है और हम विकेन्द्रीकरण की ओर बढ़ते है। औद्योगीकरण को उद्देश्य मानकर चलना गलत है।

औद्योगीकरण का निषेध –

यह प्रत्येक को काम के लक्ष्य के प्रतिकूल है। तकनीकी बेरोजगारी में वृद्धि होती है। पूंजी प्रधान तथा आयात निर्भरता अधिक है। सामाजिक मूल्य चुकाना पड़ता है। मजदूरों को हटाकर शहरो में ले आने से कृषि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। स्थानीयकरण की प्रवृत्ति के कारण इससे विकास के मार्ग में बाधा उत्पन्न होती है।

आदर्श औद्योगिक नीति –

सबको काम देने में सहायक हो। विकेन्द्रीकरण में सहायक हो। कृषि व ग्राम व्यवस्था के लिए पूरक हो।

मनुष्य और मशीन –

मनुष्य पर मशीन के हावी हो जाने के विरोधी है। वास्तव में मशीन न तो मनुष्य का शत्रु है न मित्र। वह

एक साधन है तथा उसकी उपादेयता समाज की अनेक शक्तियों की क्रिया प्रतिक्रिया पर निर्भर करती है। मशीन एक लम्बे आर्थिक विकास का कारण नहीं बल्कि उसके परिणामस्वरूप है। मशीन को समाज एवं अर्थव्यवस्था पर हावी नहीं होने देना चाहिए।

विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था –

इसके लिए उपाध्याय स्वावलम्बी समर्थ ग्राम पंचायत व जनपद व्यवस्था के पक्षधर है। हमारी अर्थव्यवस्था का आधार हमारे ग्राम तथा जनपद होने चाहिए। शहर व ग्रामों का विषम विकास हमारी राष्ट्रीय अखंडता के लिए भी घातक होगा। उत्पादक वस्तुएं बड़े उद्योग तैयार करे तथा उपभोग वस्तुऐं छोटे उद्योगो द्वारा बनाई जाए।

विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था में छोटे व कुटीर उद्योग अर्थव्यवस्था के मेरूदंड है, लेकिन बड़े उद्योगों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। लेकिन इससे अर्थिक सत्ता का केन्द्रीकरण न हो, इसके लिए वे मुख्यतः दो सुझाव देते है – शासन व्यवस्था द्वारा नियमन की श्रमिकों की स्वामित्व में हिस्सेदारी की व्यवस्था हो।

प्रासंगिकता –

पंडित दीनदयाल जी का स्वदेशी आर्थिक चिन्तन देश के विकास में एक मील का पत्थर साबित हो सकता है। वर्तमान परिदृश्य में हम ऐसे ही एक स्वदेशी आर्थिक चिन्तन की आवश्यकता है। देश के आर्थिक विकास के लिए औद्योगीकरण, मशीनीकरण जितना आवश्यक है उतना ही प्रकृति का संरक्षण। अगर प्रकृति नहीं बचत तो यह विकास विनाश में बदल जायेगा, इसके लिए प्रत्येक गांव को आदर्श व स्वावलंबी बनाना होगा।

सुख मन की स्थिति पर निर्भर करता है इसलिए विकास की समग्र अवधारणा का समर्थन किया। उनके अनुसार भारत की समस्त नीतियाँ भारतीय मुखी होनी चाहिए।

अपनी उपादेयता सिद्ध करने वाली भारतीय संस्कृति, उसके आर्थिक नैतिक जीवन मूल्य, आदर्श जीवन के मापदण्ड जैसे यक्ष प्रश्नों का समाधान करने वाला अर्थ वैज्ञानिक दीनदयाल उपाध्याय द्वारा प्रस्तुत आर्थिक दर्शन मानव कल्याण के लिए वरदान सिद्ध होगा।

दीनदयाल जी का आर्थिक चिन्तन आज भी प्रासंगिक है कोई भी नीति निर्धारक, संगठन या सरकार जो गरीबों के लिए कल्याणकारी योजनाएं लाना चाहती है उसे दीनदयाल जी के एकात्मक मानवाद एवं अंत्योदय के आर्थिक चिन्तन को आधार बनाना होगा।

निष्कर्ष :–

उपाध्याय का अर्थ चिन्तन मानव प्रधान एवं समाजपरक है। लोकतांत्रिक मानवाधिकारों के दुरूपयोंग ने ही पूंजीवाद को जन्म दिया था। सरकार द्वारा नियमन तो उपाध्याय को स्वीकार है, नियंत्रण नहीं। यह सही है कि संघर्ष को किसी दर्शन का आधार नहीं बनाया जा सकता लेकिन व्यवहार में इससे बचना कठिन है। दीनदयाल उपाध्याय का उत्तर है – ''संस्कार, शिक्षा, लोकमत परिष्कार व नियमन – यही लक्ष्मण रेखा है। इसी की मर्यादा में हमे प्रयोग करना चाहिए।''

संदर्भ –

From Internet

1. पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी के स्वदेशी आर्थिक चिन्तन का समीक्षात्मक विश्लेषण।
2. पंडित दीनदयाल उपाध्याय के आर्थिक चिन्तन में राष्ट्रवाद।

3. सामाजिक आर्थिक चिन्तन के सर्वश्रेष्ठ चिंतक थे – दीनदयाल।
4. दीनदयाल उपाध्याय विकिपीडियां
5. दीनदयाल उपाध्याय का कृषि संबंधी चिन्तन।
6. दीनदयालजी का आर्थिक चिन्तन।
7. दीनदयाल उपाध्याय – स्वदेशी चिंतन के सबसे बड़े प्रवर्तक।
8. पंडित दीनदयाल उपाध्याय के आर्थिक विचारों की मानव कल्याण में भूमिका।
9. पंडित दीनदयाल उपाध्याय जीवनी।
10. अंत्योदय विचार दर्शन के प्रणेता थे दीनदयाल उपाध्याय।
11. दीनदयाल उपाध्याय चिंतन की प्रासंगिकता।
12. पंडित दीनदयाल उपाध्याय की दृष्टि में अंत्योदय।
13. आधुनिक भारत के चाणक्य – पं. दीनदयाल उपाध्याय।
14. युगदृष्टा पं. दीनदयाल उपाध्याय का आर्थिक चिंतन।

पुस्तकें :-

1. महेश चन्द्र शर्मा – दीनदयाल उपाध्याय – संपूर्ण वाडगम्य, खंड पांच प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016
2. महेश चन्द्र शर्मा – दीनदयाल उपाध्याय, कर्त्तव्य एवं विचार, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994
3. भारत अनंत कुलकर्णी – एकात्मक अर्थनीति, सुरूचि प्रकाशन नई दिल्ली 2014
4. नरेन्द्र शिवाजी पटेल, पंडित दीनदयाल उपाध्याय – व्यक्तित्व, कृतित्व व नेतृत्व, बी.एफ.सी., पब्लिकेशन 2021

मो. नं. 9584895167

Email – kashyapmanju6@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 146-150

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

गांधी जी का शैक्षिक विमर्श : नागरिक उत्थान व राष्ट्र निर्माण के संबंध में

मनोज भाकुनी

शोधार्थी, श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, गजरौला, उ०प्र०

शोध सारांश –

महात्मा गांधी न केवल अपनी राजनीतिक सक्रियता के लिए बल्कि अपने शैक्षिक दर्शन के लिए भी जाने जाते हैं। उनका मानना था कि शिक्षा केवल ज्ञान प्राप्त करने के बारे में नहीं है बल्कि चरित्र निर्माण के बारे में भी है। उनका शैक्षिक दर्शन समानता, अनुशासन, सत्य, अहिंसा और सेवा के सिद्धांतों पर आधारित था। गांधी जी का मानना था कि शिक्षा सभी के लिए सुलभ होनी चाहिए, चाहे उनकी सामाजिक स्थिति या आर्थिक पृष्ठभूमि कुछ भी हो। उन्होंने एक ऐसी शिक्षा प्रणाली की वकालत की जो समावेशी हो और सभी शिक्षार्थियों की जरूरतों को पूरा करे। उनका मानना था कि शिक्षा समग्र होनी चाहिए और न केवल शैक्षणिक उपलब्धि पर बल्कि चरित्र विकास पर भी ध्यान केंद्रित करना चाहिए। गांधी जी के लिए अनुशासन शिक्षा का एक अनिवार्य पहलू था। उनका मानना था कि आत्म–नियंत्रण के विकास के लिए अनुशासन आवश्यक है, जो व्यक्तियों को उनके व्यक्तिगत और व्यावसायिक जीवन में मदद करेगा। उनका मानना था कि अनुशासन स्वयं लगाया जाना चाहिए न कि बाहरी ताकतों द्वारा थोपा जाना चाहिए। गांधीजी के शैक्षिक दर्शन में सत्य एक और महत्वपूर्ण सिद्धांत था। उनका मानना था कि शिक्षा को सत्य की खोज पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए, और शिक्षार्थियों को प्रश्न पूछने और उत्तर खोजने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। उनका मानना था कि सत्य को केवल अनुभव और चिंतन के माध्यम से ही खोजा जा सकता है।

गांधीजी का मानना था कि शिक्षा व्यक्ति और समाज के विकास की कुंजी है। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि शिक्षा केवल सैद्धांतिक ज्ञान तक सीमित नहीं होनी चाहिए, बल्कि व्यावहारिक कौशल पर भी ध्यान केंद्रित करना चाहिए जो दैनिक जीवन में उपयोगी हो।शिक्षा पर गांधीजी के विचार आत्मनिर्भरता और सामाजिक जिम्मेदारी में उनके विश्वास पर आधारित थे। उनका मानना था कि शिक्षा समाज की जरूरतों के लिए प्रासंगिक होनी चाहिए और व्यावहारिक कौशल विकसित करने पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए जो व्यक्तियों को आत्मनिर्भर और सामाजिक रूप से जिम्मेदार बनने में सक्षम बनाएगा। शिक्षा के प्रति गांधी जी का दृष्टिकोण समग्र था और इसका उद्देश्य केवल उनकी बुद्धि का नहीं, बल्कि संपूर्ण व्यक्ति का विकास करना था। गांधी जी का मानना था कि शिक्षा को काम से जोड़ा जाना चाहिए। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि छात्रों को काम करके सीखना

चाहिए और व्यावहारिक कार्य से उन्हें ऐसे कौशल विकसित करने में मदद मिलेगी जो उनके दैनिक जीवन में उपयोगी होंगे।

गांधी जी का शैक्षिक दर्शन : समग्र रूप में –

गांधी जी के दर्शन में अहिंसा एक मूल सिद्धांत था और उनका मानना था कि शिक्षा को अहिंसक व्यवहार को बढ़ावा देना चाहिए। उनका मानना था कि हिंसा कभी भी किसी समस्या का समाधान नहीं है और व्यक्तियों को शांतिपूर्ण तरीकों से संघर्षों को हल करना सीखना चाहिए। सेवा गांधी जी के शैक्षिक दर्शन का एक और अनिवार्य पहलू था। उनका मानना था कि शिक्षा को व्यक्तियों को अपने समुदाय की सेवा करने और समाज पर सकारात्मक प्रभाव डालने के लिए तैयार करना चाहिए। उनका मानना था कि दूसरों की सेवा करना चरित्र विकास का एक अनिवार्य हिस्सा है और व्यक्तियों को दुनिया में बदलाव लाने का प्रयास करना चाहिए। गांधी जी का शैक्षिक दर्शन दुनिया में बदलाव लाने की व्यक्ति की शक्ति में उनके विश्वास पर आधारित था। उनका मानना था कि शिक्षा व्यक्तियों को बदल सकती है और उन्हें समाज में सकारात्मक बदलाव लाने के लिए सशक्त बना सकती है। उनका मानना था कि शिक्षा सामाजिक परिवर्तन के लिए एक उपकरण होनी चाहिए, और शिक्षार्थियों को समाज पर सकारात्मक प्रभाव डालने के लिए अपने ज्ञान और कौशल का उपयोग करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

गांधी जी के अनुसार, कार्य शिक्षा पाठ्यक्रम का एक अनिवार्य घटक है क्योंकि यह व्यावहारिक कौशल प्रदान करता है जो दैनिक जीवन में उपयोगी होते हैं। यह छात्रों को आत्मनिर्भरता और स्वतंत्रता की भावना विकसित करने में सक्षम बनाता है, जो उनके व्यक्तिगत और व्यावसायिक विकास के लिए आवश्यक है। कार्य शिक्षा टीम वर्क, समस्या–समाधान और संचार जैसे गैर–संज्ञानात्मक कौशल के विकास को भी बढ़ावा देती है, जो कार्यस्थल में सफलता के लिए आवश्यक हैं। इसके अलावा, कार्य शिक्षा छात्रों को सामाजिक जिम्मेदारी और नैतिक व्यवहार का महत्व सिखाती है, जो एक न्यायपूर्ण और न्यायसंगत समाज के विकास के लिए आवश्यक हैं। इसलिए, छात्रों को वास्तविक दुनिया की चुनौतियों के लिए तैयार करने के लिए कार्य शिक्षा पाठ्यक्रम का एक अभिन्न अंग होना चाहिए।

गांधी जी का मानना था कि छात्रों को खेती, बुनाई या बढ़ईगीरी जैसे उत्पादक कार्यों में शामिल होना चाहिए। उनका मानना था कि इससे न केवल उन्हें व्यावहारिक कौशल मिलेगा बल्कि उनमें आत्मनिर्भरता और स्वतंत्रता की भावना विकसित करने में भी मदद मिलेगी। शिक्षा पर गांधी जी के विचार औपचारिक स्कूली शिक्षा तक सीमित नहीं थे। उनका मानना था कि शिक्षा एक आजीवन प्रक्रिया होनी चाहिए और व्यक्तियों को जीवनभर सीखना और विकास करते रहना चाहिए। गांधी जी का मानना था कि शिक्षा सभी के लिए सुलभ होनी चाहिए, चाहे उनकी पृष्ठभूमि या सामाजिक स्थिति कुछ भी हो। शिक्षा पर महात्मा गांधी के विचार आत्मनिर्भरता, सामाजिक जिम्मेदारी, अहिंसा, चरित्र विकास और आजीवन सीखने में उनके विश्वास पर आधारित थे। उन्होंने व्यावहारिक शिक्षा के महत्व पर जोर दिया जो दैनिक जीवन में उपयोगी हो और काम से जुड़ी हो। शिक्षा के प्रति गांधी जी का दृष्टिकोण समग्र था और इसका उद्देश्य संपूर्ण व्यक्ति का विकास करना था। शिक्षा पर उनके विचार आज भी प्रासंगिक हैं और उनके विचारों ने दुनिया भर में शैक्षिक प्रथाओं को प्रभावित किया है।

निष्कर्षतः, गांधीजी का शैक्षिक दर्शन समानता, अनुशासन, सत्य, अहिंसा और सेवा के सिद्धांतों पर आध

ाारित था। उनका मानना था कि शिक्षा सभी के लिए सुलभ होनी चाहिए और चरित्र विकास के साथ–साथ शैक्षणिक उपलब्धि पर भी ध्यान देना चाहिए। उनका मानना था कि शिक्षा व्यक्तियों को बदल सकती है और उन्हें समाज में सकारात्मक बदलाव लाने के लिए सशक्त बना सकती है। उनका शैक्षिक दर्शन आज भी प्रासंगिक है, और हम उनकी शिक्षाओं से सीख सकते हैं और समाज पर सकारात्मक प्रभाव डालने के लिए उन्हें अपने जीवन में लागू कर सकते हैं।

'नई तालीम' के संबंध में गांधी दर्शन –

नई तालीम, जिसका अर्थ है 'नई शिक्षा', पारंपरिक शिक्षा प्रणाली के विकल्प के रूप में महात्मा गांधी द्वारा विकसित एक अवधारणा थी। नई तालीम आत्मनिर्भरता, सामाजिक जिम्मेदारी और व्यावहारिक शिक्षा के सिद्धांतों पर आधारित थी। गांधी का मानना था कि पारंपरिक शिक्षा प्रणाली ऐसे व्यक्तियों को तैयार करने पर केंद्रित थी जिन्हें अपने समुदायों की सेवा करने के बजाय औपनिवेशिक सरकार की सेवा करने के लिए प्रशिक्षित किया गया था। उनका मानना था कि शिक्षा समाज की आवश्यकताओं के लिए प्रासंगिक होनी चाहिए और व्यावहारिक कौशल पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए जो व्यक्तियों को आत्मनिर्भर बनने में सक्षम बनाएगा। नई तालीम इस विचार पर आधारित थी कि शिक्षा को उत्पादक कार्यों के साथ एकीकृत किया जाना चाहिए। गांधी जी का मानना था कि छात्रों को करके सीखना चाहिए और व्यावहारिक कार्य से उन्हें ऐसे कौशल विकसित करने में मदद मिलेगी जो उनके दैनिक जीवन में उपयोगी होंगे। उनका मानना था कि छात्रों को खेती, बुनाई और बढ़ईगीरी जैसी गतिविधियों में शामिल किया जाना चाहिए, जो उन्हें व्यावहारिक कौशल प्रदान करेगा और उन्हें आत्मनिर्भर बनने में भी मदद करेगा।

गांधी जी का यह भी मानना था कि शिक्षा को सामाजिक जिम्मेदारी से जोड़ा जाना चाहिए। उनका मानना था कि छात्रों को अपने समुदाय की सेवा करना और समाज की भलाई के लिए काम करना सिखाया जाना चाहिए। उनका मानना था कि शिक्षा को न केवल व्यक्तिगत विकास बल्कि सामाजिक विकास पर भी ध्यान देना चाहिए। महात्मा गांधी का मानना था कि व्यक्ति और समाज के विकास के लिए व्यावहारिक शिक्षा आवश्यक है। उनका मानना था कि शिक्षा को केवल सैद्धांतिक ज्ञान पर ही नहीं बल्कि व्यावहारिक कौशल पर भी ध्यान केंद्रित करना चाहिए जो दैनिक जीवन में उपयोगी हो। उनका मानना था कि छात्रों को करके सीखना चाहिए और व्यावहारिक कार्य से उन्हें ऐसे कौशल विकसित करने में मदद मिलेगी जो उनके दैनिक जीवन में उपयोगी होंगे। गांधी जी का यह भी मानना था कि व्यावहारिक शिक्षा को आत्मनिर्भरता से जोड़ा जाना चाहिए। उनका मानना था कि छात्रों को खेती, बुनाई और बढ़ईगीरी जैसी गतिविधियों में शामिल किया जाना चाहिए, जो उन्हें व्यावहारिक कौशल प्रदान करेगा और उन्हें आत्मनिर्भर बनने में भी मदद करेगा।

कुल मिलाकर, व्यावहारिक शिक्षा पर महात्मा गांधी के विचार इस विचार पर आधारित थे कि शिक्षा समाज की आवश्यकताओं के लिए प्रासंगिक होनी चाहिए और व्यावहारिक कौशल विकसित करने पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए जो व्यक्तियों को आत्मनिर्भर और सामाजिक रूप से जिम्मेदार बनने में सक्षम बनाएगा। अतः कहा जा सकता है कि, महात्मा गांधी की नई तालीम की अवधारणा आत्मनिर्भरता, सामाजिक जिम्मेदारी और व्यावहारिक शिक्षा के सिद्धांतों पर आधारित थी। उनका मानना था कि शिक्षा समाज की जरूरतों के लिए प्रासंगिक होनी चाहिए और व्यावहारिक कौशल विकसित करने पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए जो व्यक्तियों को आत्मनिर्भर बनने

में सक्षम बनाएगा। उनका यह भी मानना था कि शिक्षा को सामाजिक जिम्मेदारी से जोड़ा जाना चाहिए और छात्रों को अपने समुदायों की सेवा करना और समाज की भलाई के लिए काम करना सिखाया जाना चाहिए।

निष्कर्ष –

महात्मा गांधी के शैक्षिक दर्शन का भारतीय समाज पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। उनका मानना था कि शिक्षा समग्र होनी चाहिए, जिसमें मन, शरीर और आत्मा के विकास पर जोर दिया जाए। गांधी जी ने ऐसी शिक्षा की वकालत की जो सत्य, अहिंसा और सामाजिक न्याय के सिद्धांतों पर आधारित हो। व्यावहारिक शिक्षा पर गांधी जी के जोर ने भारतीय समाज को कई तरह से मदद की है। उनका मानना था कि शिक्षा समुदाय की जरूरतों के लिए प्रासंगिक होनी चाहिए और छात्रों को व्यावहारिक कौशल से लैस करना चाहिए जो उन्हें आत्मनिर्भर बनने में मदद करेगा। इस दृष्टिकोण ने उद्यमिता और व्यावसायिक प्रशिक्षण को बढ़ावा देकर भारत में गरीबी और बेरोजगारी को कम करने में मदद की है। सामाजिक उत्तरदायित्व और नैतिक व्यवहार पर गांधी जी के फोकस का भारतीय समाज पर भी गहरा प्रभाव पड़ा है। उनका मानना था कि शिक्षा को करुणा, सहानुभूति और दूसरों के प्रति सम्मान जैसे मूल्यों को बढ़ावा देना चाहिए। इस दृष्टिकोण ने भारतीय नागरिकों के बीच सामाजिक जिम्मेदारी की भावना को बढ़ावा देने में मदद की है, जिससे एक अधिक न्यायपूर्ण और न्यायसंगत समाज का निर्माण हुआ है।

गांधी के शैक्षिक दर्शन ने भारत में लैंगिक समानता को बढ़ावा देने में भी मदद की है। उनका मानना था कि लिंग या सामाजिक स्थिति की परवाह किए बिना शिक्षा सभी के लिए सुलभ होनी चाहिए। इस दृष्टिकोण ने भारत में महिलाओं को शिक्षा और व्यक्तिगत और व्यावसायिक विकास के अवसर प्रदान करके उन्हें सशक्त बनाने में मदद की है। निष्कर्षतः, गांधी के शैक्षिक दर्शन का भारतीय समाज पर परिवर्तनकारी प्रभाव पड़ा है। व्यावहारिक शिक्षा, सामाजिक जिम्मेदारी और नैतिक व्यवहार पर उनके जोर ने आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देने, गरीबी और बेरोजगारी को कम करने, अधिक न्यायपूर्ण और न्यायसंगत समाज को बढ़ावा देने और महिलाओं को सशक्त बनाने में मदद की है। गांधी की विरासत भारत और दुनिया भर में शिक्षकों और नीति निर्माताओं को प्रेरित करती रहती है।

शोध क्षेत्र व सीमाएं –

प्रस्तुत शोध कार्य में गांधी जी के शैक्षिक विचारों का अध्ययन मुख्य रूप से नागरिक उत्थान व राष्ट्र निर्माण के संबंध में किया गया है। इसमें प्रयास किया गया कि गांधी जी के शैक्षिक दर्शन के विभिन्न आयामों यथा मूल्य निर्माण, सामाजिक उत्थान, नई तालीम व कार्य शिक्षा का महत्व, न्यायपूर्ण समाज, लैंगिक समानता, मानवीय दृष्टिकोण का विकास इत्यादि को शामिल किया गया है जिससे विद्यार्थी इन आयामों पर अपनी समझ को सुदृढ़ कर सकें व एक बेहतर राष्ट्र के निर्माण में सहयोग कर सकें।

यह शोध कार्य उनके द्वारा प्रस्तुत शैक्षिक दर्शन जिसमें राष्ट्र निर्माण हेतु मानवीय व नैतिक मूल्यों का निर्माण शामिल है, तक ही सीमित है।

संदर्भ ग्रंथ सूची –

1. गांधी, मोहनदास करमचंद (1937), नई तालिम की ओर, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद।

2. सिंह, नवनीत कुमार (2009)– "भारतीय शिक्षा व्यवस्था में समाजवादी चिन्तकों का शिक्षा में योगदान और उसकी वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उपादेयता"।
3. गांधी, महात्मा (2019)– "ग्राम स्वराज्य", प्रभात प्रकाशन।
4. रानी, सुनीता (2020)– "महात्मा गाँधी जी के शैक्षिक चिंतन का अध्ययन तथा वर्तमान भारतीय समाज में उसकी सार्थकता", इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांस्ड एजुकेशन एण्ड रिसर्च–वॉल्यूम 5, इशू 4–2020।
5. रूबी (2020)– "महात्मा गांधी का शिक्षा दर्शन", गाँधी दर्शन एवं साहित्य, साहित्य संचय प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. सिंह, विभा (2011), महात्मा गांधी की बुनियादी शिक्षा प्रणाली की वर्तमान व्यावसायिक शिक्षा के संदर्भ में प्रासंगिकता, http://hdl.handle.net/10603/288537
7. दुबे, कीर्ति (2017), स्वन्तंर्त्योतर भारतीय शिक्षा व्यवस्था पर महात्मा गांधी का प्रभाव, http://hdl.handle.net/10603/187125
8. लाल, रमन बिहारी (2009)– "भारतीय शिक्षा के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य", आर. लाल प्रकाशन।
9. श्रीवास्तव, अनुज–गांधी जी का बुनियादी शैक्षिक दर्शन", जर्नल ऑफ एडवांसेज एण्ड स्कालरली रिसर्च इन एलाइड एजुकेशन, वॉल्यूम 13, इशू 1 : अप्रैल 2017।

ईमेल : mnbhakuni22@gmail.com
मोबाइल 8532917718

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 151-156

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

महिला पुलिस कर्मियों में भूमिका संघर्ष – एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

Meenu Dalal, Research Scholar
Dr. Manju Singh, Guide
Sociology, Banasthali Vidyapith, Jaipur

सारांश –

इस शोध पत्र के माध्यम से हरियाणा के पुलिस विभाग में कार्यरत महिला पुलिस कर्मियों में भूमिका संघर्ष को दर्शाया गया है। भारतीय समाज में महिलायें सदा से ही दोहरी भूमिकाएँ निभाती आ रही हैं। परम्परागत रुप से महिलाओं की भूमिका बहन, बेटी, बहू, पत्नी एवं माँ की भूमिका के रूप में समाज में रही है तथा पुलिस विभाग में एक कर्त्तव्यनिष्ठ पुलिसकर्मी के रूप में बखूबी अपनी भूमिकाओं को निभाती हैं। इन विरोधी भूमिकाओं के कारण उनके समक्ष भूमिका संघर्ष की समस्या उत्पन्न हो जाती है। वर्तमान अध्ययन महिला पुलिस कर्मियों में एक ही समय में दोहरी भूमिका के कारण होने वाले भूमिका संघर्ष को दर्शाता है। कार्यशील महिलाओं में भूमिकाओं के निर्वहन से जो भूमिका संघर्ष उत्पन्न होता है उसका प्रमुख कारण दोहरे उत्तरदायित्वों का निर्वहन, सामाजिक अपेक्षाएं एवं कर्त्तव्यों की क्रियान्विति परिवार एवं कार्य स्थल के दायित्वों के प्रति प्रतिबद्धता इत्यादि है जो इसके प्रमुख संकेतक भी होते है। इस प्रकार प्रस्तुत शोध पत्र के द्वारा भूमिका संघर्ष तथा इसके कारण उत्पन्न समस्याओं पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

परिचय –

किसी राष्ट्र के निरंतर विकास के लिए महिलाओं का सामाजिक–आर्थिक विकास होना अत्यंत महत्वपूर्ण है। औद्योगिक क्रांति, उदारीकरण और वैश्वीकरण की प्रक्रियाओं के कारण भारत में महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन आया है। परिणाम स्वरूप, महिलाएं विभिन्न आर्थिक गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग ले रही हैं, और साथ ही साथ अपने परिवार और कार्यशील जीवन का प्रबंधन कर रही गृह निर्मात्री के रूप में उनकी पारंपरिक भूमिका एक व्यावसायिक महिला के रूप में परिवर्तित हो रही है। इनकी भागीदारी के बिना कोई भी देश अपने उच्चतम लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता है। पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो 2019 के अनुसार भारत में कुल पुलिस कर्मियों की संख्या 21 लाख के करीब है जिसमें महिला पुलिस कर्मियों की संख्या 2 लाख से भी कम है।[2] सिनोपसीस महिलाओं की पुलिस विभाग में उत्साह पूर्वक भर्ती के बावजूद इस कार्य को पौरुष परिपूर्ण और बर्बरता का पर्याय समझा जाता है। इसे पुरुष व्यवसाय के रूप में वर्णित किया जाता है, विशेष रूप से पारम्परिक

पुरुष प्रधान विशेषताओं के लिए महत्वपूर्ण समझा जाता है। पुलिस विभाग का कार्य चुनौतियों से परिपूर्ण है। जिसमें कार्य अवधि के लम्बे और अनिश्चित घंटे सम्मिलित है।

पितृसत्तात्मक पारिवारिक व्यवस्था के परिणाम स्वरूप महिलाओं को पारंपरिक रूप से पारिवारिक देखभाल करने के लिए उपयुक्त माना जाता है। पुलिस विभाग के कार्य में संतुलन के अलावा किसी भी अन्य विभागों की तुलना में पुलिस विभाग की महिला पुलिस कर्मियों को अधिकतम उत्पीड़न एवं चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। अपने स्वयं के विभाग के पुरुष सहकर्मी ही नहीं अपितु आम लोग भी उनके प्रति नकारात्मक पूर्वाग्रह रखते हैं जिसके परिणाम स्वरुप उनका व्यक्तिगत जीवन प्रभावित हो जाता है। कार्य स्थल एवं व्यक्तिगत भूमिकाओं का निर्वहन करते हुए अनेक बार महिलाओं को भूमिका संघर्ष की स्थिति का सामना करना पड़ता है जो कि वर्तमान समय की ज्वलंत समस्या है। अधिकांश कार्यशील महिलाओं में द्वन्द्व का मुख्य कारण उनकी भूमिकाएं होती हैं, क्योंकि जब वे अपने परिवार की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए घर के बाहर भी जाकर कार्य करती हैं तब भी उनकी परम्परागत भूमिकाएं यथावत् बनी रहती हैं। जिनमें कई बार उचित प्रकार से समायोजन न हो पाने के कारण उन्हें भूमिका संघर्ष की समस्या का सामना करना पड़ता है।[6] सिनोपसीस इस संदर्भ में वर्तमान अध्ययन हरियाणा की महिला पुलिस कर्मियों के कार्य और पारिवारिक तनाव और संघर्ष के बीच बहुभिन्न संबंधों के बारे में जानने हेतु किया गया है कि क्या वे अपने काम और पारिवारिक जीवन को संतुलित करने में सक्षम हैं, या हो पाती है?

साहित्य की समीक्षा –

घोष, एस. के. 1981[1] इन्होंने महिलाओं के शारीरिक पहलू सहित पुलिस के सभी कर्तव्यों को पूरा करने की क्षमता के ज्वलंत मुद्दे पर प्रकाश डाला। **अलीम, शमीम** 1991[2] ने अपने अध्ययन में आन्ध्र प्रदेश के महिला पुलिस कर्मियों के अध्ययन द्वारा यह स्पष्ट होता है कि महिला पुलिस कर्मियों को अपनी भूमिका का निर्वहन करते समय सामान्यतया भूमिका द्वन्द का सामना करना पड़ता है। **भारद्वाज, अरूणा** 1999[3] ने दिल्ली महिला पुलिस की स्थिति की परिस्थिति को जानने का प्रयास किया और यह पाया कि अन्य व्यवसायों में कार्यरत महिलाओं की तुलना में, महिला पुलिस कर्मियों काम के घंटे, मानसिक तनाव और शारीरिक श्रम बहुत अधिक करना पड़ता है। जिससे दो भूमिकाओं के मध्य समायोजन नहीं हो पाता है। **कोरी, हैन्स सार्जेंट (2003)**[4] शोध से यह ज्ञात होता है कि कम वेतन, काम के अधिक घंटे, अनियमित कार्य चक्र, परिवार एंव मित्रों में विवाद के साथ अन्य कई कारक हैं जो पुलिस कर्मियों के तनाव का कारण है। कार्य स्थल पर अधिक काम के प्रभाव के कारण बहुत से पुलिस अधिकारी अपने परिवार को समय नहीं दे पाते हैं। इसी भूमिका संघर्ष के परिणाम स्वरूप बहुत से पुलिसकर्मी अपने पति/पत्नी से तलाक ले लेते हैं। **पद्मा, एस. (2013)**[5] ने अपने शोध में यह पाया कि परिवार की देखभाल हेतु महिलाएं अपने व्यावसायिक जीवन एंव परिवार में संतुलन बनाए रखने का पूर्ण प्रयास करती हैं। दोहरी भूमिकाओं का भली भाँति पालन न होने से उक्त महिलाओं में भूमिका संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

कार्यस्थल एवं व्यक्तिगत भूमिकाओं का निर्वहन करते हुए अनेक बार महिलाओं को भूमिका संघर्ष की स्थिति का सामना करना पड़ता है।

संकल्पनात्मक रूपरेखा –

भूमिका –

प्रसिद्ध सामाजिक मानव शास्त्री रॉल्फ लिंटन ने भूमिका सिद्धांत को सामाजिक व्यवस्था के संरचनात्मक परिप्रेक्ष्य से संबंधित कर विकसित किया है। लिंटन के अनुसार सामाजिक संरचना में प्रत्येक व्यक्ति की भूमिका के साथ उसकी परिस्थिति जुड़ी हुई होती है। इस परिस्थिति के साथ एक स्तर के आदर्श कर्तव्यों एवं उत्तर दायित्वों का निर्वहन व्यक्ति को करना पड़ता है। अर्थात् मानव समाज प्रत्येक व्यक्ति से उसकी परिस्थिति के अनुसार कुछ सामाजिक अपेक्षायें रखता है।

भूमिका संघर्ष –

भूमिका संघर्ष की अवधारणा को अपेक्षित भूमिका की अवधारणा के विरोधाभास के रूप में समझा जा सकता है। अर्थात् भूमिका संघर्ष अपेक्षित भूमिकाओं के विरूद्ध वह स्थिति है, जिसका कारण किसी व्यक्ति द्वारा उचित समय पर उससे अपेक्षित की गई भूमिकाओं को सही अर्थों में प्रस्तुत नहीं कर पाना है। सामान्यतया भूमिका संघर्ष दो प्रकार के होते हैं –

1. अन्तः भूमिका संघर्ष 2. अन्तर भूमिका संघर्ष

अन्तः भूमिका संघर्ष की स्थिति उस समय उत्पन्न होती है, जब कर्त्ता किसी एक ही भूमिका का निर्वहन करते हुए उससे संबधित अपेक्षाओं को सही प्रकार से पूर्ण नहीं कर पाता है।

जबकि अन्तर भूमिका संघर्ष की स्थिति कर्त्ता द्वारा दो या दो से अधिक भूमिकाओं का निर्वहन करते समय द्वन्द्व के कारण उत्पन्न होती है। कार्यशील महिलाओं में भूमिकाओं के निर्वहन से जो भूमिका संघर्ष उत्पन्न होता है उसका प्रमुख कारण दोहरे उत्तर दायित्वों का निर्वहन करना है।

अध्ययन का महत्व –

प्रत्येक कार्यकारी महिला की भाँति पुलिस विभाग की महिला पुलिस कर्मियों को भी दोहरे दायित्वों का निर्वाह करना पड़ता है। पहला पारिवारिक दायित्व और दूसरा विभागीय दायित्व। एक माँ के लिए कार्यशील होने के साथ बच्चों की सम्पूर्ण एवं उचित देखभाल एवं परवरिश कर पाना कठिन हो जाता है, क्योंकि कार्य स्थल के कार्य भार को सम्भालने के साथ–साथ उन्हें गृहिणी के कार्य भी समान रूप से करने पड़ते हैं। अन्य विभागों में कार्यरत महिलाओं की तुलना में पुलिस विभाग मे ंकार्यरत महिला पुलिस कर्मियों के लिए यह उत्तरदायित्व निभाना अधिक कठिन है, क्योंकि उनके कार्य का समय निर्धारित नहीं होता, जिसके परिणाम स्वरूप उन्हें अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। चूंकि बच्चों की सम्पूर्ण रूप से देखभाल एवं पालन–पोषण करना महिलाओं का नैतिक कर्त्तव्य है। अतः उक्त कर्त्तव्य को उचित रूप से सम्पादित ना कर पाने के कारण महिलाओं में ग्लानि की भावना उत्पन्न हो जाती है। वर्तमान परिदृश्य में महिला पुलिस के बीच काम एवं पारिवारिक संघर्ष एक महत्वपूर्ण समस्या है। इस संदर्भ में वर्तमान शोध पत्र हरियाणा के महिला पुलिस कर्मियों भूमिका संघर्ष एवं दोहरी भूमिका के कारण उत्पन्न बहु भिन्न समस्याओं पर प्रकाश डालने का प्रयास करता है।

अध्ययन के उद्देश्य –

महिला पुलिस कर्मियों के मध्य भूमिका संघर्ष की स्थिति को जानना।

भूमिका संघर्ष के कारण उत्पन्न समस्याएँ एवं संबंधित सुझाव।

अनुसंधान प्रविधि –

प्रस्तुत शोध पत्र में हरियाणा राज्य के जिले भिवानी एवं हिसार के पुलिस विभाग में कार्यरत 200 महिला पुलिस कर्मियों के अनुभवों एवं विचारों को सम्मिलित करते हुए प्रश्नावली द्वारा तथ्यों को एकत्रित किया गया है। प्राथमिक आँकड़ों के संकलन हेतु प्रश्नावली का उपयोग किया गया है।

परिणाम –

प्रस्तुत शोध में महिला पुलिस कर्मियों में भूमिका संघर्ष की स्थिति को जानने हेतु तालिका को अत्यधिक, सामान्य एवं न्यूनतम भूमिका संघर्ष के रूप में दर्शाया गया है। जिन महिला पुलिस कर्मियों को घर व कार्यालय के कार्यों को सम्पादित करने में अधिक कठिनाई महसूस होती है उन्हें अत्यधिक भूमिका संघर्ष के द्वारा दर्शाया गया है। वे उत्तरदात्री जिन्हें भूमिका निर्वाह के समय थोड़ी बहुत परेशानियाँ होती हैं उन्हें सामान्य भूमिका संघर्ष के द्वारा दर्शाया गया है। इसी प्रकार बहुत कम कठिनाई महसूस करने वाली महिला पुलिस कर्मियों को न्यूनतम भूमिका संघर्ष के द्वारा दर्शाया गया है।

तालिका संख्या–1

महिला पुलिस कर्मियों में भूमिका संघर्ष

क्रं.सं.	महिला पुलिस कर्मियों में भूमिका संघर्ष की स्थिति	महिला पुलिस कर्मियों की संख्या	प्रतिशत
1.	अत्यधिक भूमि का संघर्ष	138	69
2.	सामान्य भूमि का संघर्ष	43	21.5
3.	न्यूनतम भूमि का संघर्ष	19	9.5
	कुल योग	200	100

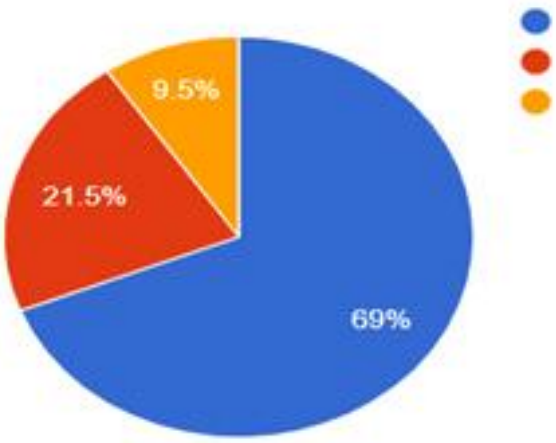

वृत आरेख संख्या–1

प्रस्तुत तालिका एवं वृत आरेख संख्या 1 द्वारा स्पष्ट होता है कि पुलिस विभाग में कार्यरत कुल 200 महिला पुलिस कर्मियों में से 138 अर्थात 69 प्रतिशत महिला पुलिसकर्मी कार्यस्थल तथा विभाग के कार्यों के निर्वाह में अत्यधिक भूमिका संघर्ष का सामना करना पड़ता है, इसी प्रकार 43 अर्थात 21.5 प्रतिशत सामान्य भूमिका संघर्ष का सामना करती है। वहीं 19 अर्थात 9.5 प्रतिशत महिला पुलिसकर्मी न्यूनतम भूमिका संघर्ष का सामना करती है।

अतः स्पष्ट होता है कि अधिकतर महिला पुलिसकर्मी कार्यस्थल तथा विभाग के कार्यों के निर्वहन में भूमिका संघर्ष की स्थिति का सामना करती हैं। इसी संदर्भ में भूमिका संघर्ष के परिणाम स्वरूप उत्पन्न कठिनाईयों को कम करने तथा हल करने हेतु सुझाव दिए गए हैं।

भूमिका संघर्ष के परिणाम स्वरूप उत्पन्न समस्याएँ –

अधिकतर महिला पुलिस कर्मियों के अनुसार कार्यों की अधिकता व कार्य करने का समय निश्चित न होने कारण कर्मचारी स्वयं को तथा अपने परिवार को उचित समय नहीं दे पाते हैं, जिसके परिणाम स्वरूप वे शारीरिक, मानसिक एवं पारिवारिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इसी संदर्भ में 86 अर्थात 43 प्रतिशत उत्तर दात्रियों के अनुसार कार्य के घण्टे निर्धारित ना होने के कारण परिवार को उचित समय नहीं दे पाती हैं जिसके परिणाम स्वरूप 68 अर्थात 34 प्रतिशत महिलाएं शारीरिक एवं मानसिक तनाव से ग्रस्त रहती हैं। इसी संदर्भ में 35 अर्थात 17.5 प्रतिशत पुलिस कर्मियों के अनुसार अत्यधिक कार्यभार के कारण उन्हें स्वयं के लिए भी समय नहीं मिलता। समय के अभाव के कारण 11 अर्थात 5.5 प्रतिशत महिला पुलिस कर्मी काम के प्रति संवेदन हीनता को अनुभव करती हैं। अतः स्पष्ट होता है कि भूमिका संघर्ष अनेक समस्याओं को उत्पन्न करता है।

महिला पुलिस कर्मियों के तनाव एवं संघर्ष को कम करने हेतु कुछ सुझाव –

पति द्वारा दैनिक कार्यों में सहयोग–आधुनिक काल में जब नारी धनोपार्जन हेतु व्यवसाय कर पुरुषों के कार्य में सहयोग देती है तो निश्चित ही पुरुषों का यह नैतिक कर्तव्य हो जाता है कि, वह भी नारियों को गृहकार्य में सहयोग प्रदान करें।

परिवार एवं कार्य स्थल पर मिलने वाला सहयोग–जब तक सामाजिक–सांस्कृतिक बाधायें समाप्त नहीं होंगी तब तक महिलाओं का सर्वागीण विकास असंभव है। कर्त्तव्यों के निर्वहन के साथ कार्य स्थल के कर्त्तव्यों का समान रूप से पालन करना प्रत्येक महिला के जीवनवृत्ति विकास हेतु महत्वपूर्ण होता है। ऐसे में परिवार और कार्य स्थल पर मिलने वाला सहयोग उन्हें आगे बढ़ने के लिए उत्साहित करता है।

महिला पुलिस और जनता के बीच सहयोग–पुलिस विभाग एक ऐसा विभाग है जहाँ केवल पुलिस कर्मियों की भूमिका ही महत्वपूर्ण नहीं है, इस विभाग की कार्य शैली को सुचारू रूप से चलाने में देश की जनता का बहुत बड़ा योगदान होता है।

पुरुष सहकर्मियों का महिला सहकर्मियों के प्रति सकारात्मक व्यवहार की आवश्यक–पुरुष पुलिस कर्मियों का महिला पुलिस कर्मियों के प्रति व्यवहार उनके कार्य कुशलता एवं कर्त्तव्य निष्ठा को प्रभावित करती है। यदि पुरुष पुलिसकर्मी महिला पुलिस कर्मियों के कार्य, निष्ठा एवं कुशलता को स्वीकार करते हैं तो यह उनके लिए उत्प्रेरक का काम करता हैं जिससे उनकी कर्तव्य परायणता बढ़ती है।

निष्कर्ष :–

महिलाओं को प्रत्येक क्षेत्र चाहे घरहो या कार्य स्थल दोहरी भूमिकाओं का निर्वहन करना पड़ता है। महिला पुलिस कर्मियों की परिवार के प्रति भूमिका सम्बन्धी तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट होता है। कि एक गृहिणी के रूप में वे पूर्ण निष्ठा के साथ अपनी भूमिका नही निभा पाती हैं। अपने बच्चों के उचित पालन पोषण में पूर्ण रूप से योगदान नही दे पाती है, जिसके परिणाम स्वरूप उनका सुखमय दाम्पत्य जीवन प्रभावित होता है एंव पारिवारिक कलह की स्थिति उत्पन्न हो जाती है, जिसके परिणाम स्वरूप अधिकांश महिला पुलिस कर्मी शारीरिक

एवं मानसिक तनाव से ग्रस्त हो जाती हैं। इसी संदर्भ में कुछ सुझाव महिला पुलिस कर्मियों के पारिवारिक एवं कार्य स्थल से संबंधित तनाव को कम कर सकते हैं जैसे पति द्वारा दैनिक कार्यों में सहयोग, परिवार एवं कार्य स्थल पर मिलने वाला सहयोग, महिला पुलिस और जनता के बीच सहयोग कार्य स्थल पर पुरुष सहकर्मियों का महिला सहकर्मियों के प्रति सकारात्मक व्यवहार महिला पुलिस कर्मियों के लिए उत्प्रेरक का काम करता हैं जिससे उनकी कर्तव्य परायणता बढती है।

References :-

1. Ghosh S. K.,1981, Women in Policing,Light& Life Publishers, New Delhi.
2. Aleem Shamim.,1991, Women police and Social Change, Ashish Publishing House, New Delhi.
3. Bhardwaj, Aruna , 1999, Women in Uniform : Emergence of Women police in Delhi, New Delhi : Daya Books Regency.
4. Sergeant Corey Haines Madison,2003, Police stress and the effects on the family E.M.U. School of police staff and command Heights Police Department Madison Heights, MI An applied research project submitted to the Department of Interdisciplinary Technology as part of the School of Police Staff and Command Program 19 September.
5. Padma, S., & Reddy, S, 2013 Work Life Balance: Women Police Constables. SCMS Journal of Indian Management, 10(4).

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 157-160

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यासों में समाज दर्शन

नसिमा गुलामरसूल तांबोली, शोध छात्रा
प्रा. डॉ. विनायक खरटमल, शोध निर्देशक
पुण्यश्लोक अहिल्यादेवी होलकर सोलापूर विश्वविद्यालय, सोलापूर (महाराष्ट्र)

स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय जन–जीवन में सर्वाधिक परिवर्तन हमें व्यक्ति के सामाजिक पक्ष में दिखाई देता है। व्यक्ति और समाज का एक–दूसरे से घनिष्ठ संबंध है। व्यक्ति के बिना समाज और समाज के बिना व्यक्ति का कोई अलग अस्तित्व नहीं हो सकता। क्योंकि व्यक्ति और समाज दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। समय के साथ–साथ समाज में व्यक्ति के सामाजिक संबंध में बदलाव आने लगा। पुरातन मान्यताओं का विरोध होने लगा और नवीन के प्रति आग्रह बढ़ा। फलतः व्यक्ति का मानस बदला और स्वतंत्रता पूर्व और स्वतंत्रता के बाद में भी व्यक्ति के परिवर्तन के साथ–साथ समाज में कई तरह के बदलाव आये। व्यक्ति का रहन–सहन, खान–पान आदि बदल हुआ नजर आया। यह परिवर्तन बहुत पहले से ही प्रारंभ हो गया था किन्तु उसका मुखर रूप स्वातंत्रता प्राप्ति के पश्चात ही लक्षित हुआ। आज इसका ज्यादातर प्रभाव समाज पर पड़ा है।

अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अपने उपन्यास साहित्य में समाज में प्रचलित प्रथा, परंपरा, अंधविश्वास, रूढ़ि, नियम, पारिवारिक समस्या, नारी की समस्या, जातिवाद, तलाक, विवाह, संयुक्त परिवार, टूटते–बिखरते परिवार, बुनकर समाज की समस्या, उनको रहन–सहन, गरीबी, अर्थाभाव, उच्च वर्गीय सेठों द्वारा निम्न वर्गीय लोगों का शोषण, परिवार का विघटन आदि का विषयगत विवेचन किया है।

साहित्य समाज का दर्पण होता है। साहित्यकार जिस समाज में रहता है उसका प्रभाव उसके साहित्य पर पड़ता है। अब्दुल बिस्मिल्लाह एक सामाजिक लेखक है। उनके उपन्यास–साहित्य में मुस्लिम समाज और हिन्दू समाज के उत्सव, त्योहार उनमें प्रचलित रूढ़िया, पाखंड एवं अंधविश्वास आदि का यथार्थ चित्रण हुआ है। अब्दुल बिस्मिल्लाह अपने साहित्य लेखन के माध्यम से एक नये समाज की रचना करना चाहते हैं जो एक शोषण–विरहीत धर्म संप्रदाय और निरपेक्ष समाज हो। उन्होंने सामान्य जन–समुदाय को अपने लेखनी का विषय बनाया। वे अपने उपन्यास 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' में बुनकर समाज के बारे में लिखते हैं– ''एक समाज दुनिया का है। एक समाज भारत का है। एक समाज हिन्दुओं का है, एक समाज मुसलमानों का है और एक समाज बनारस के जुलाहों का है। यह समाज कई अर्थो में दुनिया के हर समाज से अलग है। इस समाज में कई खण्ड हैं। पाँचो हैं, चौदवहो हैं, बाइसी और बावनों हैं। अब एक नई बाईसी भी बन गई है।''[1] इस उपन्यास में अब्दुल बिस्मिल्लाह ने बुनकर समाज के सामाजिक समस्याओं को बारिकी से समाज के सामने लाने का प्रयास किया है।

अब्दुल बिस्मिल्लाह ने इस उपन्यास में मुस्लिम समाज में तलाक के समस्या को चित्रित किया है। मुस्लिम समाज में तलाक तो आम बात हो गई है। लतीफ ताड़ी के नशे में कमरून को तलाक दे देता है। अब वह बगैर 'हलाला' किये उसे अपने घर में नहीं रख सकता। अन्त में 'हलाला' के निषेध को तोड़कर जिस तरह लतीफ और कमरून एक–दूसरे को अपना लेते हैं, उसे बड़े कुशलता से निरूपित किया गया है। इसके विपरीत मतीन की बीवी अलीमुन टी. बी. की मरीज है। वह अपने पति को नजबुनिया से दूसरे विवाह के लिए कहती है। दरअसल मतीन और नजबुनिया एक–दूसरे को चाहते हैं लेकिन अलीमुन के जीते जी मतीन दूसरा विवाह नहीं करना चाहता। उधर नजबुनिया का पति उसे तलाक देता है, तो मतीन उससे शादी कर लेता है। तलाक और दूसरी तीसरी शादी के प्रसंग अत्यंत मार्मिक हैं। तलाक को सामाजिक बुराई दर्शाया गया है, तो विशेष परिस्थिति में दूसरे विवाह को उचित ठरहराया गया है।

'झीनी झीनी बीनी चदरिया' इस उपन्यास में मतीन मजदूरों की एक सोसायटी बनाकर उनकों अपने पैरो पर खड़ा करना चाहता है। वह सोसायटी के लिए तीस मेम्बर और एक चेअरमन के जुगाड़ के लिए जी तोड़ मेहनत करना चाहता है। लेकिन बैंक में जाने पर उसे मालूम होता है कि हाजी अमीरूल्ला ने इन्हीं लोगों के नाम एक फर्जी नाम की सोसायटी बनाई है और मैनेजर से लोन भी लिया है। वह बैंक मैनेजर से कहता है– ''लेकिन साहब इस कागज पर हम लोगन ने दस्तखत करवा नहीं गोवा।''[2] उसकी बात बैंक में कोई नहीं सुनता और बेचारे मतीन को लगता है कि फिर से वह हाजी अमीरूल्ला से हार गया है। इस प्रकार उच्च वर्गीय गिरस्ता लोग निम्नवर्गीय लोगों को आगे बढ़ने नहीं देते। वे उनका आर्थिक शोषण करते हैं। इस उपन्यास में लेखक ने केवल बुनकरों के जीवन का ही नहीं, बल्कि आज के पूरे अर्थतंत्र और प्रशासन तंत्र में फैले भ्रष्टाचार एवं उनसे जुड़े जन–विरोधी चिरत्रों का पर्दाफाश अत्यंत स्वाभाविक ढंग से किया है।

अब्दुल बिस्मिल्लाह ने 'समर शेष है' इस उपन्यास में जाति प्रथा और छुआछुत का कड़ा विरोध किया है। उनके इस आत्मकथानायक उपन्यास का नायक 'मैं' अपनी पेट की भूख से बेहाल है। उसका कोई घर–परिवार नहीं हैं। भाई के घर भाभी उसके साथ घृणा पूर्ण व्यवहार करती है। साथ ही उसके सौतेली बहन तथा उसके ससुराल वाले उसके साथ बुरा सलूक करते हैं और उसे घर से निकाल देते हैं। उसी समय वह भूख से परेशान था। अतः वह नौटंकी में काम करने वाले चमरौटी के साथी छोटू के घर जाता है। छोटू की बहन खाना बना रही थी। छोटू से वह कहता है– ''मुझे रोटी खिलाओ, भूख लगी है।––– वह मेरा मुँह ताकने लगा और उसकी बहन के हाथ रूक गए।––– हम लोगों का छुआ खाओगे?''––– क्यों? क्या हुआ? क्या तुम लोग मनुष्य नहीं हो?'––– मैंने उत्तेजित होकर यह बात कही और छोटू का चेहरा खिल उठा।''[3] छोटू पिता भी उसे कहते है कि बेटा, हमारे पास गरीबी में जो चटनी–रोटी जुटेगी वहीं खाना और पढ़ाई करना।

अब्दुल बिस्मिल्लाह ने उपन्यासों में पारिवारिक विघटन के साथ–साथ समाज में होने वाले अनेक समस्याओं को चित्रित किया है। 'जहरबाद' उपन्यास में पति–पत्नी में होने वाले झगड़ों के कारण परिवार का विघटन होने का मार–पीट गाली–गलौज, आपसी झगड़े अर्थिक समस्या, फुलझर और लोखरी का अवैध प्रेम–संबंध, कथानायक के पिता का पत्नी पर शक करना आदि समस्यों का चित्रण है। इस उपन्यास के अन्त में कथानायक के पिता चरित्रहीनता के आरोप में पत्नी को तलाक देते हैं और पैसे के अभावों एवं कठिनाईयों से संघर्ष करता हुआ एक परिवार अन्त में बहुत ही हृदय भेदी होता है। इस उपन्यास का अन्त बहुत ही दुःखद

है। कथानायक की अम्माँ की एक घाटी में पकरी के पेड़ के नीचे मृत्यु हो जाती है। अम्माँ की यह दर्दनाक मृत्यु देखकर नायक जोर–जोर से रोता है और वह अपने आप से कहता है––''मेरे गालों पर जो बह रहा है, वह आँसू नहीं है, जहर है–––अभिशप्त और उपेक्षित जिंदगी का।''[4]

'दंतकथा' उपन्यास में अब्दुल बिस्मिल्लाह ने मुर्गे के आत्मकथा के माध्यम से यह दिखाने की कोशिश की है कि पशु–पक्षियों के तुलना में मनुष्य निम्न तथा तुच्छ प्राणी है। नाबदान फॅसा मुर्गा इन्सानों के बारे में सोचता है तथा कहता है–– ''मुर्गे–मुर्गियों के समाज में इस तरह का अन्याय नहीं था। यहाँ नर होने के नाते कोई भी मुर्गा किसी भी मुर्गे पर निर्भर नहीं था। इस तरह कोई भी बूढी मुर्गी किसी भी जवान मुर्गी से अपनी सेवा टहल नहीं कराती थी। सबको अपना काम खुद करना पड़ता था। हमें बचपन से ही आत्मनिर्भर होना सिखाया जा था, जब कि मनुष्य तो स्वभाव से ही मानो पराश्रयी होते हैं। हर कोई किसी ओर पर निर्भर।''[5] अब्दुल बिस्मिल्लाह ने मुर्गे के आत्मकथा के माध्यम से धरती पर व्याप्त भय, असुरक्षा, आतंक, हत्या, शत्रुत्व, भूख, गाँव और शहरों की जीवनशैली में अन्तर, उसमें पनपते मनुष्य की नियति, परिंदो का जीवन, मुर्गे–मुर्गियों का रहन–सहन, उनकी आदतें, उनके प्रेम–प्रसंग, मनुष्य का उनके साथ व्यवहार आदि बातों का चित्रण इस उपन्यास में किया है।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने मनुष्य के इस प्रवृत्ति को रेखांकित किया है कि वह अपने से कमजोर को मारता है। मुर्गे को अपने माँ के मौत की याद आती है। वह कहता है– ''जिस तरह मेरी माँ को जिबह् किया गया अगर उसी तरह लोग किसी शेर को पटककर उसकी टाँगों को अपने पाँवो से दबाकर और उसकी गर्दन की माँस को अपने बच्चे से पकड़वाकर उसकी खास रग पर छुरी चलाता तो मुझे बेहद अच्छा लगता। तब शायद मैं अपने माँ की मृत्यू को एक सहज मृत्यू के रूप में महसूस करता और उस घटना को भूल जाता।''[6]

अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अपने उपन्यास साहित्य में जन–सामान्य के जीवन को विषय–वस्तु बनाया है। समाज के प्रत्येक वर्ग के जातियों के परिवार का उल्लेख उनके उपन्यासों में हुआ है। उपन्यास में एक तरफ ब्राम्हण परिवार है तो दुसरी तरफ उसी गाँव में कायस्थ, अहीर, चमार, बनिया, मुसलमान, हलवाई, लुहार, कुम्हार आदि जातियों के भी परिवार है। 'मुखड़ा क्या देखे' उपन्यास में एक उदाहरण दृष्टव्य है– ''ब्राम्हणों के अलावा जो अन्य जातियां उस गाँव में थी उनमें कायस्थ, अहीर, चमार और पासियों को संख्या अधिक थी। बनिया, मुसलमान, हलवाई, लोहार और काछी–कुम्हार के घर कम ही थे। मगर गाँव काफी बड़ा था। किसी एक गाँव में इतनी सारी जातियों को एक–साथरहते हुए देखकर ही किसी ने शायद ही कहा होगा कि हिन्दुस्थान तो यहाँ के गाँवों में बसता है। बलापुर भी एक छोटा–मोटा हिन्दुस्तान था।''[7]

'अपवित्र आख्यान' मौजूदा अर्थकेंद्रित समाज और उसके सामने खड़े मुस्लिम समाज के अन्तर्बाह्य अवरोधों की कथा के बहाने देश और समाज के मौजूदा सामाजिक और राजनीतिक स्थिति का गहन चित्रण करता है। यह उपन्यास एक मुसलमान के अपवित्र होने की इसी पीड़ा का आख्यान है।

इसके बारे में सुंदरम शांडिल्य लिखते हैं– ''क्या मुसलमान होना इतना 'अपवित्र' है कि उसके प्रति लोगों के दिलों–दिमाग में मौजूद राग–द्वेष, ईर्ष्या, घृणा, प्रतिशोध आदि कुत्सित भावनाऐं कभी नहीं मिट सकेंगी? मिली–जुली संस्कृति का वास्ता देने वाले धर्म निरपेक्ष देश में मुसलमान क्या सामाजिक राजनीतिक भेदभाव का शिकार होता रहेगा। आखिर कब तक वह बाहरी विदेशी अथवा आतंकवादी ठहराये जाने का दंश सहेगा? यह उपन्यास एक मुसलमान के 'अपवित्र' होने की इसी पीड़ा का आख्यान है।''[8]

'रावी लिखता है' यह उपन्यास मुस्लिम समाज के एक साधारण से परिवार की चार पीढियों की कहानी है। इस उपन्यास में लेखक ने पुरानी पीढ़ियों अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं, बल्कि यथार्थपूर्ण चित्रण किया है। इसी प्रकार अपने देश का भी साथ ही एक मुस्लिम परिवार की जीवनशैली को सुरूचीपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है।

'कुठाँव' उपन्यास में लेखक ने मुस्लिम धर्म के भीतर समाहित जातिगत ताने–बाने को प्रस्तुत किया है। आज समाज में धर्मो के भीतर अनेक जातियाँ, जातियों के भीतर अनेक प्रथाएँ, अनेक प्रथाओं के भीतर अनगिनत कुप्रथाएँ कब उपजी इसको समाज ने समझा ही नहीं। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने 'कुठाँव' उपन्यास में सलमान कहता है– ''हिन्दुस्तानी समाज में जितनी जातियां हिन्दू समाज में हैं लगभग उतनी जातियाँ मुस्लिम समाज में भी हैं। क्या आपको पता है कि मैं नाई हूँ, और रफीक धोबी है। मुसलमानों में कुंजडे हैं, धुनियाँ हैं, चुड़िहार हैं, मनिहार हैं, कसाई हैं और तो और हेला भी हैं–– यानी पाखाना साफ करनेवाले, जिन्हें पहले 'मेहत्तर' कहा जाता था और बाद में 'हलालखोर' कहा जाने लगा। हिन्दोस्तान में जब मुसलमान आए तो यहां की हर उस जाति की लोगों ने इस्लाम धर्म अपनाया जो हिन्दू समाज में उपेक्षित थे। क्योंकि इस्लाम के हाथ में मसावत का झुनझुना जो था। मगर यह झुनझुना सिर्फ बजाने में अच्छा लगता था––।''[9] इस प्रकार इस उपन्यास में अब्दुल बिस्मिल्लाह ने मुस्लिम समाज के जातिवाद पर कड़ा प्रहार किया है। साथ–ही–साथ उच्चवर्गीय लोगों द्वारा निम्नवर्गीय स्त्रियों के शोषण का यथार्थ चित्रण इस उपन्यास में दिखाई देता है। अब्दुल बिस्मिल्लाह श्रेष्ठ साहित्य उसे मानते हैं जो पाठक को सोचने–समझने के लिए विवश करे। इस दृष्टि से उनका उपन्यास साहित्य अत्यंत श्रेष्ठ है।

संदर्भ संकेत –

1. अब्दुल बिस्मिल्लाह, 'झीनी झीनी बीनी चदरिया', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, नौवाँ संस्करण, 2018 पृष्ठ 10
2. वही, पृष्ठ 103
3. अब्दुल बिस्मिल्लाह, 'समर शेष है', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण, 2016, पृष्ठ 57
4. अब्दुल बिस्मिल्लाह, 'जहरबाद', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण, 2016, पृष्ठ100
5. अब्दुल बिस्मिल्लाह, 'दंतकथा', राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, तीसरा संस्करण, 2019, पृष्ठ 32
6. वही, पृष्ठ 20
7. अब्दुल बिस्मिल्लाह, 'मुखड़ा क्या देखे', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहली आवृत्ति, 2003, पृष्ठ 11
8. संपादक डॉ. एम. फीरोज खान, डॉ. ए. के पाण्डेय, 'कथाकार अब्दुल बिस्मिल्लाह मूल्यांकन के विविध आयाम', अनुसंधान पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स कानपुर प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2017, पृष्ठ 58–59
9. अब्दुल बिस्मिल्लाह, 'कुठाँव', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2019, पृष्ठ 22–23

Email - nasimatamboli2018@gmail.com

Mobile No. 9665274464

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 161-163

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ਰਾਜਸਥਾਨ ਦੀ ਪੰਜਾਬੀ ਕਹਾਣੀ ਵਿੱਚ ਨਾਰੀ ਮਨ ਦੀ ਬਹੁਪਰਤੀ ਪੇਸ਼ਕਾਰੀ

ਨਵਰਾਜ ਸਿੰਘ
(ਪ੍ਰਿੰਸੀਪਲ, ਸਰਕਾਰੀ ਸੀਨੀਅਰ ਸੈਕੰਡਰੀ ਸਕੂਲ 9 ਢਢ ਬੜੋਪਲ ਬਲਾਕ ਸ੍ਰੀਕਰਨਪੁਰ)

ਸਮਾਜ ਵਿੱਚ ਵਾਪਰਦੀਆਂ ਛੋਟੀਆਂ- ਵੱਡੀਆਂ ਘਟਨਾਵਾਂ ਨੂੰ ਸਾਹਿਤ ਵਿੱਚ ਵਿਸ਼ੇ ਵਸਤੂ ਵਜੋਂ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਕਰਕੇ ਹੀ ਸਾਹਿਤ ਨੂੰ ਸਮਾਜ ਦਾ ਬਿੰਬ ਮੰਨਿਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਰਾਜਸਥਾਨ ਦੇ ਪੰਜਾਬੀ ਕਹਾਣੀਕਾਰਾਂ ਨੇ ਭਾਵੇਂ ਬਹੁ-ਭਾਂਤੀ ਵਿਸ਼ਿਆਂ ਨੂੰ ਲੈ ਕੇ ਕਹਾਣੀ ਰਚਨਾ ਕੀਤੀ ਹੈ ਪਰੰਤੂ ਉਹਨਾਂ ਦੀਆਂ ਕਹਾਣੀਆਂ ਵਿੱਚ ਨਾਰੀ ਮਨ ਦੀ ਬਹੁ-ਪਰਤੀ ਪੇਸ਼ਕਾਰੀ ਪ੍ਰਮੁੱਖਤਾ ਨਾਲ ਹੋਈ ਹੈ।

ਹਰਪਾਲ ਸਿੰਘ ਲੱਖੀਆਂ, ਪ੍ਰੀਤਮ ਲੱਖੀਆਂ, ਕ੍ਰਿਸ਼ਨ ਸਿੰਘ ਅਤੇ ਰੂਪ ਸਿੰਘ ਰਾਜਪੁਰੀ ਆਪਣੀਆਂ ਕਹਾਣੀਆਂ ਵਿੱਚ ਨਾਰੀ ਮਨ ਨੂੰ ਬਹੁ ਕੋਨਾਂ ਤੋਂ ਚਿਤਰਦੇ ਹਨ। ਇਹਨਾਂ ਕਹਾਣੀਕਾਰਾਂ ਨੇਂ ਆਪਣੇ ਨਾਰੀ ਪਾਤਰਾਂ ਰਾਹੀਂ ਸਾਡੇ ਸਮਾਜ ਵਿੱਚਲੀ ਔਰਤ ਦੇ ਹਰ ਚੰਗੇ ਮਾੜੇ ਪੱਖ ਦੀ ਪੇਸ਼ਕਾਰੀ ਕਰਨ ਦੀ ਕੋਸ਼ਿਸ਼ ਕੀਤੀ ਹੈ।

ਵਿਆਹ ਇੱਕ ਸਮਾਜਕ ਬੰਧਨ ਹੈ ਜੋ ਮੌਤ ਤੱਕ ਤੀਵੀਂ ਅਤੇ ਮਰਦ ਨੂੰ ਇੱਕ ਸੂਤਰ 'ਚ ਪ੍ਰੋ ਕੇ ਰੱਖਦਾ ਹੈ। ਸਮਾਜਕ ਮਰਿਆਦਾ ਦਾ ਪਾਲਣ ਕਰਨ ਵਾਲੀ ਨਾਰੀ ਤਾ-ਉਮਰ ਇਸ ਬੰਧਨ ਨੂੰ ਨਿਭਾਉਂਦੀ ਹੈ। ਕੁਲਜੀਤ ਕੌਰ ਅਨੁਸਾਰ:

"ਵਿਆਹ ਕੇਵਲ ਸਰੀਰਕ ਜਾਂ ਸਮਾਜਕ ਬੰਧਨ ਹੀ ਨਹੀਂ ਸਗੋਂ ਆਤਮਕ ਸੰਜੋਗ ਤੇ ਦੋ ਰੂਹਾਂ ਦਾ ਮਿਲਨ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਨਾਤੇ ਪਤੀ- ਪਤਨੀ 'ਏਕ ਜੋਤ ਦੋਏ ਮੂਰਤੀ' ਮੰਨੇ ਜਾਂਦੇ ਹਨ।"[1]

ਰਾਜਪੁਰੀ ਦੀ ਕਹਾਣੀ 'ਚਾਰ ਲਾਵਾਂ' ਦੀ 'ਚਰਨਜੀਤ' ਅਤੇ ਹਰਪਾਲ ਲੱਖੀਆ ਦੀ ਕਹਾਣੀ 'ਇਕ ਔਰਤ' ਦੀ ਫ਼ਲ ਵੇਚਣ ਵਾਲੀ ਇਸ ਮਰਿਆਦਾ ਨੂੰ ਵਪਰੀਤ ਪ੍ਰਸਥਿਤੀਆਂ ਹੋਣ ਦੇ ਬਾਵਜੂਦ ਵੀ ਨਿਭਾਉਂਦੀਆਂ ਹੋਈਆਂ ਵਿਖਾਈ ਦਿੰਦੀਆਂ ਹਨ। ਹੇਠਲੇ ਵਾਰਤਾਲਾਪ ਇਸ ਗੱਲ ਦੀ ਪੁਸ਼ਟੀ ਕਰਦੇ ਪ੍ਰਤੀਤ ਹੁੰਦੇ ਹਨ:-
ਚਰਨਜੀਤ ਨੂੰ ਪੈਰਾਂ 'ਚੋਂ ਚੁੱਕ ਕੇ ਜਗਰੂਪ ਬੋਲਿਆ, "ਤੂੰ ਇਸ ਪਾਪੀ ਕੋਲ ਕਿਉਂ ਪਰਤ ਆਈ ?"ਜਗਰੂਪ ਦੇ ਹੰਝੂ ਆਪਣੀ ਚੁੰਨੀ ਨਾਲ ਪੂੰਝਦਿਆਂ ਉਹ ਬੋਲੀ, ਹੋਰ ਕਿੱਥੇ ਜਾਵਾਂ? ਚਾਰ ਲਾਵਾਂ ਤਾਂ ਤੁਹਾਡੇ ਨਾਲ ਹੀ ਲਈਆਂ ਨੇ।[2]

ਮੂੰਹ ਆਈ ਗੱਲ ਹੁਣ ਕੀ ਰੱਖਣੀ ਏ ਜਦੋਂ ਮੇਰਾ ਘਰਵਾਲਾ ਪੂਰਾ ਹੋਇਆ ਸੀ ਤਾਂ ਇਹਨੇ ਮੈਨੂੰ ਆਪਦੀਆਂ ਰੋਟੀਆਂ ਪਕਾਉਣ ਲਈ ਕਿਹਾ ਸੀ, ਪਰ ਮੈਂ ਸਾਫ਼ ਨਾਂਹ ਕਰ ਦਿੱਤੀ ਸੀ। ਇਸ ਨੂੰ ਉਦੋਂ ਦਾ ਗੁੱਸਾ ਏ ਤੇ ਇਹ ਮੈਨੂੰ ਮਨਾਉਣਾ ਚਾਹੁੰਦਾ ਏ। ਜੇ ਮੈਂ ਇਸ ਨਾਲ ਰਲ ਜਾਵਾਂ ਤਾਂ ਮੇਰੇ ਬੱਚੇ ਰੁਲ ਜਾਣ। ਉਹ ਮਰ ਗਿਆ ਪਰ ਮੈਂ ਉਹਦੀ ਅਮਾਨਤ ਕਿਸੇ ਨੂੰ ਕਿਵੇਂ ਦੇ ਦਿਆਂ?[3]

ਰਾਜਪੁਰੀ ਚਰਨਜੀਤ ਵਰਗੀ ਉੱਚੀ- ਸੁੱਚੀ ਔਰਤ ਨੂੰ ਪੇਸ਼ ਕਰ ਰਿਹਾ ਹੈ ਜੋ ਆਪਣੇ ਪਤੀ ਵੱਲੋਂ ਕੀਤੇ ਗਏ ਸਾਰੇ ਅਮਾਨਵੀ ਵਰਤਾਰਿਆਂ ਨੂੰ ਤਨ-ਮਨ ਤੇ ਹੰਢਾਉਣ ਦੇ ਬਾਵਜੂਦ ਵੀ ਪਤੀ- ਪਤਨੀ ਦੇ ਸਮਾਜਿਕ ਰਿਸ਼ਤੇ

ਨੂੰ ਜਿਉਂਦਾ ਰੱਖਦੀ ਹੈ। ਇਸੇ ਤਰ੍ਹਾਂ ਹਰਪਾਲ ਲੱਖੀਆਂ ਫ਼ਲਾਂ ਵਾਲੀ ਔਰਤ ਰਾਹੀਂ ਆਦਰਸ਼ਕ ਭਾਰਤੀ ਨਾਰੀ ਦਾ ਬਿੰਬ ਪੇਸ਼ ਕਰਦਾ ਹੈ, ਜੋ ਜਵਾਨੀ 'ਚ ਪਤੀ ਦੀ ਮੌਤ ਹੋ ਜਾਣ ਦੇ ਬਾਵਜੂਦ ਵੀ ਪਰਾਏ ਮਰਦ ਦਾ ਪਰਛਾਵਾਂ ਆਪਣੇ ਉੱਪਰ ਨਹੀਂ ਪੈਣ ਦਿੰਦੀ।

ਹਰਪਾਲ ਲੱਖੀਆਂ ਅਤੇ ਰਾਜਪੁਰੀ ਨੇ ਆਪਣੀਆਂ ਕਹਾਣੀਆਂ ਵਿੱਚ ਸਮਾਜਿਕ ਹੱਦਬੰਦੀਆਂ ਨੂੰ ਉਲੰਘਣ ਵਾਲੇ ਔਰਤ ਪੱਤਰ ਬੇਬਾਕੀ ਨਾਲ ਪੇਸ਼ ਕੀਤੇ ਹਨ। ਇਹ ਔਰਤ ਪਾਤਰ ਦੇਹ ਦੀ ਭੁੱਖ ਦੀ ਤ੍ਰਿਪਤੀ ਲਈ ਤਾਂਘਦੇ ਹਨ ਅਤੇ ਮੌਕਾ ਮਿਲਣ ਤੇ ਸਮਾਜਿਕ ਬੰਧਨਾਂ ਤੋਂ ਬੇਪ੍ਰਵਾਹ ਹੋ ਜਾਂਦੇ ਹਨ। ਬਦਲਾ ਕਹਾਣੀ ਵਿੱਚ ਰਾਜਪੁਰੀ ਨੇ ਯਥਾਰਥਵਾਦੀ ਨਜ਼ਰੀਏ ਤੋਂ ਮਨਜੀਤ ਰੂਪੀ ਤੀਵੀਂ ਦਾ ਚਰਿੱਤਰ ਉਘਾੜਿਆ ਹੈ ਜੋ ਆਪਣੇ ਪਤੀ ਦੁਆਰਾ ਕੀਤੀ ਜਾਂਦੀ ਬੇਕਦਰੀ ਦਾ ਬਦਲਾ ਅਨੈਤਿਕ ਸਬੰਧ ਬਣਾ ਕੇ ਲੈਂਦੀ ਹੈ। ਇਹ ਪਾਤਰ ਨਾਰੀ ਮਨ ਦੀ ਤ੍ਰਿਸ਼ਨਾ, ਲੋਚਾ ਅਤੇ ਬਦਲਾ ਲਊ ਪਰਵਿਰਤੀ ਦਾ ਸੂਚਕ ਹੈ। ਜੋ ਸਥਿਤੀਆਂ- ਪ੍ਰਸਥਿਤੀਆਂ ਕਾਰਨ ਪ੍ਰੰਪਰਾਗਤ ਵਿਆਹ ਸਬੰਧਾਂ ਨੂੰ ਪਾਸੇ ਰੱਖ ਕੇ ਆਪਣੀ ਕਾਮਵਾਸ਼ਨਾ ਦੀ ਪੂਰਤੀ ਵੀ ਕਰਦੀ ਹੈ ਅਤੇ ਆਪਣੇ ਪਤੀ ਦੀ ਈਗੋ ਨੂੰ ਸੱਟ ਵੀ ਮਾਰਦੀ ਹੈ:

ਮਨਜੀਤ ਚਾਹ ਫੜਾਉਣ ਆਈ ਤਾਂ ਗੁਰਜੰਟ ਨੇ ਇੱਕ ਹੱਥ ਨਾਲ ਉਸ ਦੀ ਬਾਂਹ ਅਤੇ ਦੂਜੇ ਨਾਲ ਮੂੰਹ ਘੁੱਟ ਲਿਆ ਅਤੇ ਤੂੜੀ ਵਾਲੀ ਸਵਾਤ ਚ ਲੈ ਗਿਆ।----------ਮਨਜੀਤ ਨੇ ਵਿਰੋਧ ਨਹੀਂ ਕੀਤਾ।----------ਗੁਰਜੰਟ ਨੇ ਮਨਜੀਤ ਨੂੰ ਬਾਹਾਂ ਚ ਘੁੱਟ ਲਿਆ। ਤਿਉਹਾਰ ਦਾ ਹੁਕਮ ਸਿਰ ਮੱਥੇ, ਕਹਿ ਕੇ ਮਨਜੀਤ ਨੇ ਆਪੇ ਹੀ ਬਲਬ ਬੁਝਾ ਦਿੱਤਾ।[4]

ਹਰਪਾਲ ਲੱਖਿਆਂ ਦੀ ਕਹਾਣੀ ਕੀਮਤ ਦੀ ਔਰਤ ਪਾਤਰ ਕਰਮੋ ਵੀ ਔਰਤ ਮਨ ਅੰਦਰ ਦੱਬੀਆਂ ਭਾਵਨਾਵਾਂ ਨੂੰ ਪ੍ਰਤੱਖ ਕਰਦੀ ਹੈ ।ਮੌਨ ਸਵੀਕ੍ਰਿਤੀ ਰਾਹੀਂ ਉਸ ਦੁਆਰਾ ਕੀਤੀ ਗਈ ਹਾਣ ਦੀ ਲੋਚਾ ਔਰਤ ਮਨ ਦੀਆਂ ਅੰਦਰਲੀਆਂ ਪਰਤਾਂ ਨੂੰ ਉਧੇੜਦੀ ਹੈ:

ਉਹ ਬਾਹਰੋਂ ਆਇਆ ਸੀ ।ਉਹਦੀ ਭਰਜਾਈ ਅੰਦਰ ਆਟਾ ਛਾਣ ਰਹੀ ਸੀ।ਘਰ ਵਿੱਚ ਹੋਰ ਕੋਈ ਵੀ ਨਹੀਂ ਸੀ। ਉਸ ਨੂੰ ਪਤਾ ਨਹੀਂ ਕੀ ਸੁੱਝਿਆ, ਉਸ ਪਿੱਛੋਂ ਦੀ ਜਾ ਕੇ ਕਰਮੋ ਦੀਆਂ ਅੱਖਾਂ ਮੀਟਣੀਆਂ ਚਾਹੀਆਂ ਸਨ। ਪਰ ਅੱਖਾਂ ਮੀਟਣ ਦੀ ਥਾਂ ਉਹਦੇ ਦੋਹਾਂ ਹੱਥਾਂ ਨੇ ਉਹਦੀਆਂ ਛਾਤੀਆਂ ਮਸਲ ਸੁੱਟੀਆਂ ਸਨ। ਉਸੇ ਹੀ ਪਲ ਉਸ ਨੂੰ ਲੱਗਾ ਸੀ ਕਿ ਉਹ ਉਸ ਨਾਲ ਲੜੇਗੀ ਤੇ ਉਸ ਦੇ ਭਰਾ ਅੱਗੇ ਸ਼ਿਕਾਇਤ ਲਾਏਗੀ।

ਕਰਮੋ ਨੇ ਅੱਗੋਂ ਇੰਨਾ ਹੀ ਕਿਹਾ ਸੀ, ਕੋਈ ਵੇਖੂ ਤਾਂ ਕਿ ਆਖੂਗਾ?

ਤੇ ਉਸ ਤੋਂ ਪਿੱਛੋਂ ਬਲਦੇਵ ਨੇ ਜਦੋਂ ਉਹਨੂੰ ਇੱਕ ਵਾਰ ਫੇਰ ਛੇੜਿਆ ਸੀ ਤਾਂ ਉਹ ਕੁਝ ਆਖਣ ਦੀ ਥਾਂ ਅੱਗੋਂ ਹੱਸ ਪਈ ਸੀ।[5]

ਹਰਪਾਲ ਲੱਖੀਆਂ ਦੀ ਕਹਾਣੀ ਮਾਂ ਵਿਚਲੀ ਇਸਤਰੀ ਪਾਤਰ ਇੱਕ ਧੀ ਦੀ ਮਾਂ ਹੈ ਪਰੰਤੂ ਆਪਣੇ ਪਤੀ ਦੀ ਮੌਤ ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਆਪਣੀਆਂ ਦੇਹੀ ਲੋੜਾਂ ਦੀ ਤ੍ਰਿਪਤੀ ਲਈ ਬੀਰੇ ਨਾ ਦੇ ਆਦਮੀ ਨਾਲ ਨਿਕਲ ਜਾਂਦੀ ਹੈ। ਸਮਾਂ ਪਾ ਕੇ ਜਦੋਂ ਉਸ ਦੀ ਧੀ ਉੱਪਰ ਸੰਕਟ ਦੇ ਬੱਦਲ ਪਸਰਦੇ ਹਨ ਤਾਂ ਉਹ ਕਮਜ਼ੋਰ ਨਾਰੀ ਦਾ ਬਿੰਬ ਨਹੀਂ ਬਣਦੀ, ਸਗੋਂ ਨਾਰੀਵਾਦੀ ਸੋਚ ਦਾ ਪ੍ਰਤੀਨਿਧ ਬਣ ਕੇ ਆਪਣੇ ਪਤੀ ਨੂੰ ਅਸਾਵੇ ਰਿਸ਼ਤੇ ਤੋਂ ਰੋਕਦੀ ਵੀ ਹੈ ਅਤੇ ਵੰਗਾਰਦੀ ਵੀ ਹੈ। ਇੱਥੇ ਨਾਰੀ ਦਾ ਮਮਤਾ ਮਈ ਕਿਰਦਾਰ ਸਾਹਮਣੇ ਆਉਂਦਾ ਹੈ। ਜੋ ਮਾੜੀ ਆਰਥਿਕਤਾ ਅੱਗੇ ਮਮਤਾ ਦਾ ਗਲ੍ਹਾ ਨਹੀਂ ਘੁੱਟਣ ਦਿੰਦਾ:

ਉਹ ਤਾਂ ਥੋਡੀ ਗੱਲ ਸਿਆਣੀ ਐ ਜੀ, ਇਹ ਤਾਂ ਪੈਸੇ ਦਾ ਲਾਲਚ ਕਰਦੈ। ਇਹਨੇ ਜਿਹੜਾ ਥਾਂ ਵੇਖਿਆ ਸੀ ਉਹ ਵੀ ਬੁੱਢਾ ਈ ਐ। ਬੁੱਢੇ ਨਾਲ ਮੈਂ ਆਪਦੀ ਧੀ ਨੂੰ ਵਿਆਹੁਣ ਨਹੀਂ ਦੇਣਾ, ਭਾਵੇਂ ਕੁਸ਼ ਹੋ ਜਾਵੇ। ਉਹਦੇ

ਵਿੱਚੋਂ ਮਾਂ ਦੀ ਮਮਤਾ ਝਲਕਦੀ ਸੀ, ਜੋ ਮੇਰੇ ਨਾਲ ਹੋਈ ਐ ਉਹ ਮੇਰੀ ਧੀ ਨਾਲ ਤਾਂ ਨਾ ਹੋਵੇ।[6]

ਰਾਜਪੁਰੀ ਨੇ ਭੁੱਖੀ ਮਹਾਰਾਣੀ ਕਹਾਣੀ ਵਿੱਚ ਆਪਣੀਆਂ ਰੀਝਾਂ, ਉਮੰਗਾਂ,ਇੱਛਾਵਾਂ ਅਤੇ ਸਰੀਰਕ ਭੁੱਖ ਦੀ ਬਲੀ ਦੇਣ ਵਾਲੇ ਨਾਰੀ ਪਾਤਰ ਦੀ ਥਾਂ ਆਪਣੀਆਂ ਜ਼ਰੂਰਤਾਂ ਤੇ ਕਾਮ ਭੋਗ ਦੀ ਤ੍ਰਿਪਤੀ ਲਈ ਤਾਂਘਦੇ ਨਾਰੀ ਪਾਤਰ ਨੂੰ ਸਿਰਜਿਆ ਹੈ। ਜੋ ਪਰੰਪਰਕ ਕੀਮਤਾਂ ਦਾ ਵਿਰੋਧ ਕਰਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਦਵੰਦਮਈ ਤ੍ਰਾਸਦਕ ਜੀਵਨ ਨਹੀਂ ਗੁਜ਼ਾਰਨਾ ਚਾਹੁੰਦਾ। ਇਹ ਪਾਤਰ ਗੈਰ ਸਬੰਧਾਂ ਨੂੰ ਪ੍ਰਵਾਨਗੀ ਦਿੰਦਾ ਹੈ। ਇਹ ਮਾਤਹਿਤਾਂ, ਪਰਿਵਾਰ ਅਤੇ ਸਮਾਜ ਦੀ ਪ੍ਰਵਾਹ ਕੀਤੇ ਬਿਨਾਂ ਘਰ ਆਏ ਮਹਿਮਾਨਾਂ ਰਾਹੀਂ ਆਪਣੀ ਕਾਮ ਹਿਰਸ ਦੀ ਪੂਰਤੀ ਕਰਨਾ ਲੋਚਦਾ ਹੈ। ਪਰੰਪਰਕ ਸਮਾਜਿਕ ਹੱਦਬੰਦੀਆਂ ਨੂੰ ਤੋੜਦਾ ਹੋਇਆ ਮਹਾਰਾਣੀ ਦਾ ਪਾਤਰ ਪਤੀ ਦੀ ਮੌਤ ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਪਰਿਵਾਰਕ ਜ਼ਿੰਮੇਵਾਰੀਆਂ ਤਾਂ ਪੂਰੀ ਤਨਦੇਹੀ ਨਾਲ ਨਿਭਾਉਂਦਾ ਹੈ ਪਰੰਤੂ ਆਪਣੀ ਵਿਧਵਾ ਦੇਹ ਦੀਆਂ ਲੋੜਾਂ ਅੱਗੇ ਹਾਰ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਕਾਮ ਦੀ ਤ੍ਰਿਪਤੀ ਲਈ ਬਾਗੀ ਸੁਰ ਅਪਨਾਉਂਦਾ ਹੈ:

ਪ੍ਰੰਪਰਾ ਦੀ ਐਸੀ ਦੀ ਤੈਸੀ------- ਕਿਹੜੀ ਪਰੰਪਰਾ------ ਨਥਿੰਗ -------ਪਤੀ ਤੋਂ ਬਿਨਾਂ ਔਰਤ ਜਾਤ ਕਿਵੇਂ ਰਹਿ ਸਕਦੀ ਹੈ? ਜਵਾਨ ਔਰਤ---- ਮੱਚ ਜਾਂਦੀਆਂ ਸਨ ਜਿਉਂਦੇ ਜੀਅ ------ਉਸਦੀ ਆਵਾਜ਼ ਤੇਜ਼ ਹੋ ਗਈ ਸੀ, ਅਸੀਂ ਰਾਜ ਪਰਿਵਾਰਾਂ ਦੀਆਂ ਔਰਤਾਂ ਦੋਹਰਾ ਜੀਵਨ ਜਿਉਂਦੀਆਂ ਹਾਂ ,ਰਾਜਕੁਮਾਰੀ, ਦੇਵਰਾਣੀ, ਰਾਣੀ, ਮਹਾਰਾਣੀ, ਪਟਰਾਣੀ ਅਤੇ ਰਾਜ ਮਾਤਾ ਤੇ ਲਬਾਦੇ ਹੇਠ ਹੁੰਦੀਆਂ ਤਾਂ ਅਸੀਂ ਵੀ ਔਰਤਾਂ ਹੀ ਹਾਂ------ ਸਾਡੇ ਅੰਦਰ ਦੀ ਔਰਤ ਰਸਮਾਂ- ਰਵਾਇਤਾਂ ਦੇ ਫ਼ਾਲਤੂ ਬੋਝ ਹੇਠਾਂ ਦੱਬੀ ਰਹਿੰਦੀ ਹੈ------ ਸਾਡੀਆਂ ਭਾਵਨਾਵਾਂ ਪਿਸਦੀਆਂ ਰਹਿੰਦੀਆਂ ਨੇ ਮਰਿਆਦਾ ਅਤੇ ਲਾਜ ਦੇ ਪੁੜਾਂ ਵਿਚਾਲੇ------ ਉਸ ਦੀ ਆਵਾਜ਼ ਭਿੱਜੀ ਹੋਈ ਸੀ, ਅੱਖਾਂ ਗਿੱਲੀਆਂ ਸਨ।[7]

ਇਹ ਕਹਾਣੀ ਸਿਰਫ਼ ਮਹਾਰਾਣੀ ਦੀ ਭੁੱਖ ਦੀ ਗੱਲ ਹੀ ਨਹੀਂ ਕਰਦੀ ਸਗੋਂ ਸਮੁੱਚੀ ਨਾਰੀ ਜਾਤੀ ਦੀ ਹੋਂਦ ਨੂੰ ਦਰਸਾਉਂਦੀ ਹੋਈ, ਨਾਰੀ ਜਾਤ ਦੇ ਸੰਤਾਪ ਨੂੰ ਅਗਰਭੂਮਿਤ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਇਸਦੇ ਨਾਲ ਨਾਲ ਇਹ ਕਹਾਣੀ ਕਾਮ-ਸਬੰਧਾਂ ਦੀਆਂ ਨਵੀਆਂ ਅਤੇ ਘਟੀਆ ਪਰਤਾਂ ਵੀ ਸਾਡੇ ਸਾਹਮਣੇ ਰੱਖਦੀ ਹੈ। ਅਜਿਹੀਆਂ ਪਰਤਾਂ ਨੂੰ ਭਾਰਤੀ ਸੰਸਕ੍ਰਿਤੀ ਕਦੇ ਵੀ ਸਵੀਕਾਰ ਨਹੀਂ ਕਰਦੀ।

ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਅਸੀਂ ਵੇਖਦੇ ਹਾਂ ਕਿ ਰਾਜਸਥਾਨ ਦੇ ਪੰਜਾਬੀ ਕਹਾਣੀਕਾਰ ਨਾਰੀ ਦੀ ਮਾਨਸਿਕਤਾ ਅਤੇ ਦੇਹੀ ਸਰੋਕਾਰਾਂ ਨੂੰ ਆਪਣੀਆਂ ਕਹਾਣੀਆਂ ਵਿੱਚ ਪੇਸ਼ ਕਰਕੇ ਇਨ੍ਹਾਂ ਸਰੋਕਾਰਾਂ ਨਾਲ ਨਿਆਂ ਕਰਨ ਦੀ ਕੋਸ਼ਿਸ਼ ਕਰਦੇ ਹਨ। ਮਨੋ-ਵਿਗਿਆਨਕਤਾ ਅਤੇ ਮਨੋ-ਸਥਿਤੀ ਨੂੰ ਸਾਹਮਣੇ ਰੱਖ ਕੇ ਪੇਸ਼ ਕੀਤੇ ਗਏ ਇਹ ਸਰੋਕਾਰ ਨਾਰੀ ਮਨ ਦੀਆਂ ਲੁਕਵੀਆਂ ਪਰਤਾਂ ਨੂੰ ਸਾਹਮਣੇ ਲਿਆਉਣ ਵਿੱਚ ਸਫ਼ਲ ਹੋਏ ਹਨ।

ਹਵਾਲੇ -

1. ਕੁਲਜੀਤ ਕੌਰ, ਪੰਜਾਬੀ ਨਾਟਕ ਵਿੱਚ ਨਾਰੀ ਦਾ ਸਰੂਪ, ਵਾਰਸ਼ ਸ਼ਾਹ ਫਾਊਂਡੇਸ਼ਨ, ਅੰਮ੍ਰਿਤਸਰ, 2009, ਪੰਨਾ-12
2. ਰਾਜਪੁਰੀ, ਰੂਪ ਸਿੰਘ, ਚਾਂਚੂਆ, ਪੈਂਤੀ ਅੱਖਰੀ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਨ, ਬਠਿੰਡਾ, 2018, ਪੰਨਾ-47
3. ਲੱਖੀਆਂ, ਹਰਪਾਲ ਸਿੰਘ, ਰੁੱਤ ਆਵੇ ਰੁੱਤ ਜਾਵੇ, ਰਵੀ ਸਹਿਤ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਨ, ਅਮ੍ਰਿਤਸਰ, 1973, ਪੰਨਾ-81
4. ਰਾਜਪੁਰੀ, ਰੂਪ ਸਿੰਘ,ਪੈਂਤੀ ਅੱਖਰੀ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਨ, ਬਠਿੰਡਾ, 2018, ਪੰਨਾ -52
5. ਲੱਖੀਆਂ, ਹਰਪਾਲ ਸਿੰਘ, ਰੁੱਤ ਆਵੇ ਰੁੱਤ ਜਾਵੇ, ਰਵੀ ਸਾਹਿਤ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਨ, ਅੰਮ੍ਰਿਤਸਰ, 1973, ਪੰਨਾ-13
6. ਲੱਖੀਆਂ, ਹਰਪਾਲ ਸਿੰਘ, ਪਿਓਂਦ ਕੀਤੀ ਬੇਰੀ, ਸੰਗਮ ਪਬਲੀਕੇਸ਼ਨ, ਪਟਿਆਲਾ,2015, ਪੰਨਾ-56
7. ਰਾਜਪੁਰੀ, ਰੂਪ ਸਿੰਘ, ਚਾਂਚੂਆ, ਪੈਂਤੀ ਅੱਖਰੀ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਨ, ਬਠਿੰਡਾ, 2018, ਪੰਨਾ-127

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 164-169

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

श्यौराज सिंह 'बेचैन' की कहानियों का दलित चेतना में योगदान

नीलम

शोधार्थिनी (हिन्दी), ए–1 टाइप–2 महात्मा ज्योतिबा फुले रूहलेखण्ड विश्वविद्यालय कैम्पस, बरेली उ0प्र0–243006

सारांश :–

हिन्दी साहित्य में जारी दलित–विमर्श को श्यौराज सिंह 'बेचैन' ने अपने लेखन से धारदार अभिव्यक्ति प्रदान की है और यह सिद्ध किया है कि यथार्थ की जमीं से उपजा दलित साहित्य असल में मानवीय सरोकार साहित्य है। अगर साहित्य को समाज का दपर्ण माना जाता है तो दलित साहित्य शत–प्रतिशत उस दपर्ण का हिस्सा सिद्ध होता है, यह भोगे हुए यथार्थ का प्रमाणिक दस्तावेज है जो अनुभव की आँच पर तपकर हिन्दी साहित्य पटल पर अवतरित हुआ है। दलित साहित्य में जो यथार्थ सत्य का ताप मिलता है वैसा किसी अन्य साहित्य में परिलक्षित नहीं होता है। दलितों के साथ अमानवीय व्यवहार, संघर्ष, उत्पीड़न, अछूतपन, प्रतिकार, चेतना आदि को उजागर कर दलितों को उनके अधिकार, सामाजिक न्याय, दोहरे व्यवहार से मुक्ति प्रदान करना दलित साहित्य का मुख्य ध्येय है। श्यौराज सिंह 'बेचैन' ने अपनी विभिन्न कहानियों के माध्यम से दलित साहित्य को एक नया आयाम प्रदान किया है।

मुख्य शब्द :– दलित साहित्य, सामाजिक न्याय, दलितों के संघर्ष।

प्रस्तावना :–

दलित कहानियाँ अस्मितावादी लेखन पर आधारित रहीं है जिसमें दलितों द्वारा भोगे हुए अत्याचार एवं उनके विरूद्ध सामन्तवादी सोच को मुख्य रूप से प्रदर्शित किया गया है। दलित कहानियों के मुख्य प्रेरणास्रोत बाबा साहब डा0 भीमराव अम्बेड़कर तथा महात्मा ज्योतिबा फुले के क्रान्तिकारी दलित हितकारी विचार रहे हैं जिनका अनुसरण करते हुए दलित आन्दोलन परवान चढ़े हैं। बहुत से दलित आलोचकों ने दलित चेतना को सर्वोपरि माना है और कहा है कि दलित चेतना से सम्बन्धित कहानी दलितों की गुलाम से गुलामी का जीवन्त परिचय कराती है। यह दलित साहित्य का मुख्य अंश हैं। दलित चेतना ही अन्य लेखकों से दलित साहित्य की पृथकता रेखांकित करती है। दलित चेतना बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर के संघर्षो एवं विचारों से उत्पन्न हुई है जिसने वर्तमान समय में एक दलित चेतना का मुख्य रूप धारण कर लिया है। गुलाम भारत में दलितों को उनके अस्तित्व का अहसास, उनमें मानवीय अधिकारों के प्रति जागृति और समाज में उनकी भूमिका की महत्वता जैसे विचारों को बाबा साहब ने ही दिशा प्रदान की है। भारत को 1950 ई0 में आजादी मिलने के पश्चात् बाबा

साहब द्वारा निर्मित भारतीय संविधान लागू होने के पश्चात देश के समस्त नागरिकों को समान अधिकार प्राप्त हुआ तथा छुआ–छूत अस्पृश्यता, जाति–भेद, लिंग–भेद जैसी अनेक कुरीतियों को अपराध घोषित किया गया। इसके बाद दलित समाज के बीच डॉ0 अम्बेड़कर के विचारों का प्रसार बहुत तेजी से होने लगा। डॉ0 अम्बेडकर के आह्वान ''शिक्षित बनो'' ''संगठित रहो'' एवं ''संघर्ष करो' से दलित चेतना में एक व्यापक प्रसार हुआ तथा दलितों का शिक्षा से नाता तीव्र गति से स्थापित हुआ।

साठ के दशक में दलित चेतना की व्यापक झलक हिन्दी कहानियों में खूब देखने को मिलने लगी। साठ के दशक से पूर्व दलितों की कहानियाँ सहानुभूतियुक्त एवं करूणा से भरी होती थीं परन्तु साठ के दशक के पश्चात् की दलित साहित्य में उग्र तेवर दिखाई देते हैं। विरोध, विद्रोह, संघर्ष, क्रान्ति इत्यादि की आवाज दलित साहित्य में साठोत्तरी अवधि में ही हुई है। आधुनिक दलित कथाकारों में मोहन दास नैमिशराय, ओमप्रकाश बाल्मिकी, सूरजपाल सिंह चौहान, जयप्रकाश कर्दम, कालीचरण स्नेही आदि के बीच श्यौराज सिंह 'बेचैन' ने एक नये विषय वस्तु को दलित साहित्य में पिरोया है।

इनकी दो कहानियाँ संग्रह प्रमुखतः से प्रकाशित हुई हैं–1. ''भरोसे की बहन'' 2. मेरी प्रिय कहानियाँ। श्यौराज सिंह 'बेचैन' की कहानियों में सामाजिक व्यवस्था को हाशिए पर रखे गये दलित वर्ग की पीड़ा को बड़ी ही गम्भीरता से अभिव्यक्त किया गया है। इनकी कहानियों के पात्र यथार्थ की जमीं से उपजे दलित जीवन की कड़वी सच्चाई को सहजता से प्रस्तुत करते हैं। श्यौराज सिंह 'बेचैन' की सहजता, निड़र एवं स्पष्ट स्वभाव अन्य कहानीकारों से उनको पृथक बनाता है। इन्होने अपनी कहानियों में दलितों के साथ हुए अत्याचारों को जमीनी रूप से प्रदर्शित करते हुए अपने साहित्य के माध्यम से समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया है। इनकी अधिकांश कहानियाँ समसामायिक समस्याओं तथा सामाजिक सरोकार से जुड़े मुद्दों पर आधारित रहीं हैं जिस कारण दलित चेतना की प्रांसगिकता और बढ़ जाती है।

श्यौराज सिंह 'बेचैन' की सन्देश कहानी अन्तरजातीय विवाह का यथार्थ उकेरती है। दलित युवक भीम सिंह और जमींदार खानदान की युवती विनीता के प्रेम विवाह के परिणति को कथा पटल पर रखकर कहानीकार स्पष्ट करता है कि प्रेम भी जातीय अभिमान को ध्वस्त करने में नाकाम सिद्ध होता है। उसी समय सवर्ण कुल की नायिका विनीता जब अफसर बन जाती है तो दलित प्रेमी पति भीमसिंह से कह उठती है–'तुम अपनी जाति में आना–जाना छोड़ दो। वे इंसान नहीं हैं। वे गटर के कीड़े हैं। वे सब स्लमडॉग हैं, शिडयुलकास्ट मतलब स्लमडॉग।'' अपनी कौम की इस शर्मनाक परिभाषा को सुनकर नायक भीमसिंह क्रोधित हो जाता है और विनीता के गाल पर थप्पड मार देता है जिससे सवर्ण पत्नी भी अपने पति से भिड़ जाती है। दोनों अलग हो जाते हैं और सवर्ण पत्नी दलित पति से तलाक ले लेती है। तब दलित नायक पश्चताप करता है कि सवर्ण लड़की से प्रेमविवाह करके उसे क्या प्राप्त हुआ। विवाह करते ही उसके परिवार पर सवर्ण लोगों ने कहर बरपाया। इतना ही नहीं सवर्ण पंचों ने दलित भीमसिंह की पूरी कौम को ही तबाह कर दिया।

कथा नायक सोचता है कि 'इधर मैने शहर में शादी की थी, उधर उसी रात मेरे गाँव में मेरे घर में आग लगा दी गयी थी। मेरी बहन का अपहरण किया गया था। मेरी माँ को गाय का गोबर चटाया गया था। मेरे पिता को नंगा कर गाँव भर में घुमाया गया था।' इस कहानी में जैसा यथार्थ दर्शन लेखक श्यौराज सिंह 'बेचैन' कराते हैं वैसी घटनायें आज भी हमारे समाज में आये दिन घटित हो रही हैं।

इसी संग्रह की 'क्या करे लड़की' कहानी में भी प्रेम संबध के परिणाम को कथानक लेखक ने बनाया है। अर्न्तजातीय प्रेम सम्बन्ध के उजागर होते ही कैसे माँ–बाप अपने बच्चों के शत्रु बन जाते हैं, कैसे समाज के डर से मुहब्बत का दंभ भरने वाले प्रेमी पलायन कर जाते है और प्रेम गीत गाने वाले जोड़े कब लाशों में तब्दील हो जाते हैं, पता ही नहीं चलता। इन सब का यथार्थ दिखाते हुए कहानीकार डा0 'बेचैन' लिखते हैं कि :–

कौन बना है, किस का साथी,
देखी सब ने अपनी जाति ?

इसी तरह इस कथा संग्रह की मुख्य कहानी 'भरोसे की बहन' के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि इसके माध्यम से लेखक दलितों के उत्थान हेतु नव–चिंतन का सृजन करता है। कहानी का नायक रामभरोसे जीवन की तमाम बुनियादी सुविधाओं से वंचित है फिर भी वो अपने पारिवारिक दायित्वों, दुख–दर्द को परे कर दलित उत्थान हितार्थ राजनीति कार्यकर्ता की भूमिका निभाता है। रामभरोसे को पूरा विश्वास है कि राजनीति बदलेगी और दलितों के सत्ता प्राप्त करते ही उनका विकास होगा, परन्तु रामभरोसे की पत्नी के विचार इसके विपरीत है और वे पूरी कहानी में अपने पति के राजनीतिक कार्यकर्ता होने पर व्यंग्य कसती है– 'अपनी हालत देखो। गैर जात तुम्हें जानवर से हूँ गयौ–गुजरो समझत हैं, के नांय ? तुम अपने मन में चाहे जो बने फिरौ, पार्टी में जाइकैं तो न तुम भैन जी के रहे न गैर कौम के। तुम्हारी गति धोबी के कुत्ते जैसी हो गयौ, न घर के रहे न घाट के .....' पर नायक रामभरोसे का विश्वास अपनी भैन जी (बहन) में अटूट है। वो दलितों को भैन जी के समर्थन में एकजुट करता है। दलित सत्ता में आये इसके लिये वो हर कुर्बानी देने को तैयार है। फीस जमा न होने के कारण उसके बच्चे भीमा का नाम स्कूल से कट जाता है परन्तु वो अपने राजनीतिक कार्यकर्ता की जिम्मेदारियों से विमुख नहीं होता है।

भैन जी रैली में सभी दलितों को तैयार कर लखनऊ लेकर जाता है और 'कायमसिंह मुर्दाबाद, छायावती जिंदाबाद, बहन जी तुम संघर्ष करो, हम तुम्हारे साथ हैं।' जैसे नारे लगाता है। रैली सफल होने के क्रम में रेलवे जंक्शन पर भगदड़ मच जाती है। अफरा–तफरी में सैकड़ो लोग घायल होते हैं और दर्जनों लोग मौत की भेंट चढ़ जाते हैं। भरोसे भी मरणासन्न अवस्था में अस्पताल पहुँचता है तभी अचानक उसको सुनाई देता है कि कितनी खुदगर्ज है बहन जी, इन्हीं के लोग मर रहे हैं। अस्पतालों में पड़े हुए है और वे खुद दिल्ली उड़ गयीं। क्या ऐसे बेदर्द नेता अछूत बहुजनों का कल्याण कर पायेगें? इस कहानी संग्रह को पढ़ने के बाद आसानी से जानकारी हो जाती है कि इसकी पृष्ठभूमि लखनऊ में आयोजित बसपा की वह विशाल रैली है जिसमें सैकड़ों दलितों की जान चली गयी। श्यौराज सिंह 'बेचैन' भी एक सक्रिय कार्यकर्ता रहे हैं और उन्होने इस सत्य घटना को 'भरोसे की बहन' कहानी के आधार पर निर्मित किया है परन्तु बाकी कथानक कथाकार की अपनी सामाजिक दृष्टि से उपजी है और जो इसे विशिष्ठता प्रदान करती है। यह कहानी यथार्थ को बयाँ करती है कि वर्तमान में कैसे आम कार्यकर्ता समाज हित में बलि चढ़ जाता है और नेता सत्ता की मलाई चाटने में तल्लीन हो जाते हैं।

लेखक ने भारतीय शिक्षा–व्यवस्था और दलित समुदाय की आड़ में होने वाले शोषण–उत्पीड़न का बडा ही यथार्थ चित्रण किया है। उच्च शिक्षा में दलितों एवं नारियों की जो दयनीय स्थिति है उसका जीवन्त दर्शन 'शोध प्रबन्ध' शीर्षक कहानी में होता है। शोध प्रबन्ध की नायिका 'रीना' अपने सवर्ण शोध–निदेशक की वासना

का शिकार होती है। यह कहानी सामाजिक व्यवस्थाओं में व्याप्त उन बिडम्बनाओं की ओर भी इशारा करती है जिसके कारण दलित महिलाओं को दोहरी मार झेलनी पडती है। प्रथम दलित होने की और दूसरी स्त्री होने की। पढ़ी–लिखी होने बाबजूद भी नायिका रीना को दलित होने के चलते कोई सवर्ण प्राध्यापक उसका निदेशक बनने को तैयार नहीं होता है और उसे न चाहते हुए भी दर–दर की ठोकरें खानी पड़ती हैं। किसी तरह से जब सवर्ण प्रो0 प्रताप सिंह, रीना का शोध निदेशक बनता भी है तो उसकी कुदृष्टि रीना के जिस्म पर पडने लगती है। भोग्या बनी रीना गर्भवती हो जाती है और कुकर्मी प्रोफेसर उसे गर्भपात की सलाह देता है। रीना कहती है कि 'सर आप कोर्ट मैरिज कर लीजिए? मेरा आपका यही समाधान हो सकता है.....।'

'देखो रीना माँस खाने वाले गले में हड्डियाँ लटका कर नहीं घूमते। ये इंसानी कमजोरियाँ है जिसे कुदरत ने ज्यादातर स्त्री–पुरूषों के व्यक्तित्व में समाहित की है।.....'बेटी समान छात्रा से जो गुरूजी शारीरिक संबध स्थापित करते समय यह दुहाई देता है कि 'प्रेम मे न उम्र देखी जाती है, न रंग–रूप न जाति और न धर्म। बस एक मात्र दिल की दिलदारी देखी जाती है।' वहीं गर्भवती छात्रा से पिंड छुडाने के लिये बताता है कि तुम 26 साल की हो गयी हो और मैं 50 से ऊपर हूँ। मेरे साथ शादी करोगी तो तुम्हारे यौवन की बगिया में पतझड़ का बीजारोपण हो जायेगा। प्रेम वासना नहीं है और न ही वासना प्रेम की जगह कभी ले पायेगा। वासना शान्त होते ही ऐसे संबधों का सच पटल पर स्वतः सामने आ जाता है।

'नॉन रिफंडेबल' कहानी शिक्षा के व्यापार बन जाने और शिक्षा जगत से गायब होते नैतिक मूल्यों की परत खोलता है। भारतीय संस्कृति में जिस सादगी, नैतिकता का सबक निर्धारित किया गया है वो सब कॉन्वेंट मॉडल शिक्षा पद्धति से गायब है। इससे ऐसी संस्कृति का निर्माण हो रहा है कि गरीब बच्चे का अच्छी शिक्षा ग्रहण करने का स्वप्न दिवास्वप्न बनकर रह गया है। कहानी में लेखक ने दिखाया है कि कॉन्वेंट स्कूल में अपने बच्चे को पढ़ाने की हसरत एक दलित को कैसे चुकानी पड़ती है। चंदन अपनी जमीन बेचकर स्कूल को डोनेशन के नाम पर सम्पूर्ण धनराशि दे देता है, पर बाद में उस स्कूल में अपने बच्चे सूरज का एडमिशन नहीं कराने का फैसला लेता है तो स्कूल प्रबन्धन बताता है कि डोनेशन की राशि 'नॉन रिफंडेबल' है। चंदन का बेटा सूरज बीमार पड़ जाता है तो प्राइवेट अस्पताल का डॉक्टर भी उसका खून चूसने के लिये तत्पर रहता है। बेटे की बीमारी और डोनेशन के 'नॉन रिफंडेबल' के बीच व्यवस्था का शिकार बने चंदन के प्राण पखेरू उड़ जाते हैं। पत्नी सुक्खो मृत पति और बीमार बेटे के बीच द्वन्द्व में सोचती है– 'दुखों–संतापों और अभावों के अलावा कुछ भी तो रिफंडेबल नहीं था वहाँ। एक बार कूं जकदूत के हाथनु तें प्राण लौट सकत है। पर स्कूल के मैनेजर प्राइवेट डॉक्टर के हाथ गए डोनेशन और फीस के पैसा नांय लौटि सकत'। समाज के निचले पायदान पर रहने वाले लोगों की मुश्किलें कितनी बढ गयी हैं और कैसे मूलभूत आवश्यकताओं की चीजों को कैसे व्यवसाय बना लिया है उसी का यथार्थ श्यौराज सिंह 'बेचैन' इस कहानी के माध्यम से प्रकट करते हैं। बाजारीकरण से उपजी व्यवसायिक सोच के कारण शिक्षा के मंदिर और धरती के भगवान का भी चरित्र बदल गया है। इस चारित्रिक गिरावट में सुधार लाने तथा इस तरह की व्यवस्था को बदलने के उद्देश्य से लेखक ने लोगों को जागृत किया है।

इसी तरह से संग्रह की कहानी 'रावण' भी सामाजिक व्यवस्था के क्षरण को उजागर करती है कि कैसे चमार जाति का मूलसिंह सारी प्रतिभा रहने के बाद भी रामलीला का 'रावण' इसलिये बनने से वंचित रह जाता है कि वे दलित है, अछूत है। भले ही खलनायक का किरदार हो पर अंगद का अभिनय करने वाला सवर्ण उसके

पाँव को कैसे हाथ लगा सकता है। गाँव में जातीय प्रताड़ना से आहत मूलसिंह शहर में बसेरा बना लेता है। रामलीला मे 'रावण' नहीं बनने देने के लिये पीटने वाले सवर्णो को जब मूलसिंह से जमीन लिखवाने की जरूरत पड़ती है तो वे उसे दिल्ली से मिट्टी का वास्ता देकर गाँव बुला ले आते हैं। लेखक इस कहानी के माध्यम से धनलोपु, स्वार्थी सवर्णो और भोले–भाले दलितों के चरित्र का यथार्थ उजागर करता है कि समाज में जो समस्या व्याप्त है उसके लिये ये वही दोहरे चरित्र वाले व्यक्ति ही जिम्मेदार हैं जो निजी स्वार्थ के लिये सामाजिक नियम, पाबन्दी, उसूल और सामाजिक मर्यादा को खण्डित करते हैं।

मानवीय त्रासदी के इस दौर में 'ओल्ड एज होम' की प्रांसगिकता दिन–प्रतिदिन बढ़ रही है परन्तु श्यौराज सिंह 'बेचैन' ने 'ओल्ड एज होम' कहानी में एक अलग ही यथार्थ से अवगत कराया है। अपनी बची–खुची जिंदगी को किसी तरह 'ओल्ड एज होम' में काटने वाले व्यक्तियों में भी जातिवाद, ऊँच–नीच की भावना कूट–कूट कर भरी हुई है। तभी तो तेजगुलाम अपनी जाति छुपाने, हीनताबोध से बचने के लिये माँ–बाप को 'ओल्ड़ एज होम' भेज देता है पर ज्यों ही तेजगुलाम के पिता की जाति 'ओल्ड एज होम' के बूढें लोगों को पता चलती है सब उससे दूरी बनाने लगते हैं। दलित बूढ़ा अपनी डायरी में लिखता है 'आज तो देश की आजादी का दिन है। आज आश्रम में झंडा फहराया गया। तय था कि जो सबसे सीनियर सिटीजन होगा वही झंडा फहराएगा। सो वह तो मैं ही था। पर चूँकि जाति जाहिर हो चुकी थी। इसलिये झण्डा फहराने की तो नौबत ही नहीं आयी। बल्कि आज मुझे प्रसाद भी दूर ही से पकड़ाया गया था। आज देश की आजादी मुझ अछूत को गुलामी सी क्यों महसूस हुई? कौन मानेगा कि इन बूढ़ो में जातिभेद सबसे ज्यादा होता है।'[3] दलित होने की प्रताड़ना झेलनी पड़ती है और मौजी खुदकुशी कर लेता है। 'ओल्ड एज होम' जैसी जगह जहाँ लोग उम्र के आखरी पड़ाव पर है वहाँ भी जाति–भेद इस तरह से होगा इसकी कल्पना करना भी कठिन है। क्योंकि उस उम्र तक सभी लोग जीवन की हर सच्चाई से अवगत हो चुके होते हैं।

इस संग्रह की 'रावण', 'ओल्ड एज होम' और होनहार बच्चे शीर्षक कहानी भले ही अलग–अलग हैं परन्तु इन तीनों कहानियों के माध्यम से लेखक श्यौराज सिंह 'बेचैन' भारतीय समाज में जड़े जमायें बैठे 'कुण्डली मारे नाग सदृश्य' वर्ग–जाति, भेद, छूत–अछूत जैसी धारणा का सम्पूर्णता के साथ अहसास कराते हैं। सामान्य तौर पर निचली जाति के लोगों को जाल बिछाकर फंसाया जाता है और सवर्ण कैसे अपना उल्लू सीधा करते हैं, लेखक ने इस यथार्थ को भलि–भाँति समझाते हुए दलितों को सचेत किया है।

निष्कर्ष :-

कुल मिलाकर देखें तो श्यौराज सिंह 'बेचैन' की कहानियाँ भारतीय समाज की समकालीन यथार्थ को उजागर करती हैं। इसमें सामाजिक क्रूरता है, विषमता है, मानवता एवं बंधुत्व का हनन है तो संघर्ष का सजीव चित्रण भी है, समाज की जड़ता दूर करने वाली चेतना भी तीव्रतम स्वरूप में मौजूद है। इससे यह दलित चेतना भी प्रतिध्वनित होती है कि यदि स्थितियाँ नहीं बदलती हैं तो विद्रोह एवं आक्रोश रूपी संघर्ष को हथियार बनाकर परिवर्तन का सूत्रपात किया जा सकता है। इनकी कहानियाँ दलित विमर्श के दायरे को विस्तृत रूप प्रदान करती हैं और इस चेतना का विकास करती है कि दलित महिलायें सबसे अधिक विषमता का शिकार होती हैं। शिक्षित दलित महिलायें ही नये समाज के विकास का सृजन करेगीं।

संदर्भ :–

1. 'दलित नाटक की आलोचना' लेखक–सर्वेश कुमार मौर्य, प्रकाशक–स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 1997, पृ0–135
2. 'हँस', संपादक–संजय सहाय, अंक–04, नबम्वर–2019, प्रकाशक–अक्षर प्रकाशन प्रा0 लि0, नई दिल्ली, पृ0–75
3. 'भरोसे की बहन' लेखक–श्यौराज सिंह 'बेचैन', प्रकाशक–वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2010, पृ0–05
4. 'मेरी प्रिय कहानियाँ' लेखक–श्यौराज सिंह 'बेचैन', प्रकाशक–राजपाल एण्ड संस प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष–2019, पृ0–09
5. वही, पृ0–24

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 170-174

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

दलित साहित्य में चित्रित नारी संघर्ष

नीलू सिंह, शोध छात्रा
डॉ. सेन्थिल कुमार (सह आचार्य) शोध निर्देशक
हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

हिन्दी साहित्य में दलित साहित्य ने अपनी एक विशेष पहचान बनायी है। साहित्य की विभिन्न विधाओं में, समाज में शिक्षा से वंचित हुए समूहों ने अपनी अनोखी दस्तक दी है। गद्य और काव्य में अनेक भावों को पिरोकर उन्होंने मानवीय प्रताड़नाओं को जग जाहिर किया है। मानवाधिकारों के नजरिये से उन प्रताड़नाओं की जाँच की जाए तो उनके विरुद्ध हुए पाशविक हमले, भेदभाव, पूर्वाग्रहों की झाड़ियों को अपराधिक श्रेणी माना जाएगा परन्तु हमारे अर्द्ध विकसित देश और समाज में इस तरह के व्यवहार सामाजिक मान्यता प्राप्त है। न केवल दलित आदिवासी अल्पसंख्यक समूहों के प्रति बल्कि देश की आधी आबादी महिलाओं के विरुद्ध भी यह भेदभाव बदस्तूर जारी है।

दलित साहित्य में स्त्री लेखन एक नयी रोशनी लेकर उपस्थित हुआ है। साहित्य की विभिन्न विधाओं में, विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं में उनकी साहित्यिक अभिव्यक्ति निरन्तर बढ़ रही है। गद्य से काव्यों तक उनकी अनूठी अभिव्यक्ति हुई है। दलित चेतना की साहित्यिक अभिव्यक्ति के केन्द्र में आत्मकथा विधा महत्त्वपूर्ण रही है। और इसकी शुरुआत भी आत्मकथा से हुई है। यह विधा 'अपने–अपने पिजरे', 'जूठन' से शुरू होकर 'शिकंजे का दर्द' तक अपनी व्यथा की दस्तक दे रही है। दलित स्त्री लेखन के फलक पर हम 'दोहरा अभिशाप' व 'शिकंजे का दर्द' आदि आत्मकथाएँ अपने लिए अपने पन की आस लिए मानवाधिकारों की माँग करती है तो विद्रोह की चिंगारी बन कर जातिवादी और पितृसत्ता को उखाड़ फेंकने हेतु संघर्ष पथ की राह पर चलने को प्रेरित करती है।

हिन्दी में दलित स्त्री लेखन की शुरुआत मराठी साहित्य की प्रेरणा से हुई। कुमुद पावड़े, उर्मिला पवार, रमा पांचाल जैसे बड़े नाम हमें मराठी साहित्य से ही प्राप्त होते हैं जिनके न केवल साहित्य ने हिन्दी जगत को प्रभावित किया बल्कि दलित परिवेश में उनके कार्यकर्ता वाले रूप को भी काफी प्रेरणादायक माना जाता है।

दलित स्त्री लेखन के भीतर सबसे तीव्र अनुभूति दलित होने के अनुभव को लेकर है। स्त्री होने के अनुभव को लेकर है। जब बात दलित स्त्री के उन अनुभवों पर आती है जो उसने स्त्री और वह भी दलित स्त्री होने के कारण भोगे तो वह अपने अनुभवों को सवर्ण स्त्री के अनुभवों से कुछ अलग पाकर भी सवर्ण स्त्री के उन अनुभवों से किनारा नहीं करती जो उन्होंने भी स्त्री होने के कारण भोगे। वहाँ दोनों का सुख–दुख साझा है। रजनी तिलक अपनी एक कविता में सम्पूर्ण औरत जाति को सर्वहारा मानती है। ''औरत एक विरादरी है। वह

स्वयं सर्वहारा है। एक सी प्रसव पीड़ा झेलती है। उसके हृदय में एक सा वात्सल्य ममता–स्रोत फूटते हैं। औरत तो औरत है, सबके सुख–दुख एक है। दलित स्त्री लेखन में स्त्री होने के कारण प्राप्त अनुभव दो प्रकार के हैं। जहाँ तक सवाल प्रकृति–प्रदत्त उन अनुभूतियों का है जो उसके शरीर के साथ जुड़ी हुई है वहां तो वे अन्य महिला लेखिकाओं के जैसे ही है परन्तु दूसरी ओर वह मध्यमवर्गीय, उच्च मध्यमवर्गीय स्त्रियों के एकाकीपन, संस्कारों और मर्यादा के बोझ को, घर की चारदीवारी की घुटन और घर, परिवार और समाज भर की नाक के बोझ को अपने ऊपर उस तरह नहीं ढोती जैसे सवर्ण स्त्री अपना दिन–रात धर्म और मर्यादा की पहरेदारी में बिताती है। नीरजा माधव की कहानी 'पंथ–दंश' की नायिका छिपुनी हो या सुशीला जी की 'दमदार' की सुमन, वे अपनी जीवन की मालिक स्वयं है। उनका भविष्य किसी पति नामक पुरुष से बँधा नहीं है। छिपुनी एक परित्यक्ता स्त्री है जो अपनी पसन्द के दूसरे पुरुष से विवाह करके रह रही है जो उसे बीच मझदार ईसाई बनकर छोड़ जाता है। तभी से छिपुनी को चिढ़ हो जाती है धर्म परिवर्तन कराने वाले उन पादरियों से जो उनकी हीन जाति का बोध कराकर उनका धर्म बदलकर उन्हें उनकी जड़ों से काट रहे हैं। ''करो मेरे दुख दूर ––– मेरे नन्हकी के बाबू को लौटाओ। क्यों डंसते है हमारे लोगों को ..... ढोंगी कही के ..... जब बिना धरम बदले तुम्हारा परभू भी कृपा नहीं करता तो वह कैसा परभू?'' 'दमदार' की सुमन पुरुष के शरीर पर से कपड़ों के समान हमेशा रहने वाले उन पूर्वाग्रहों को उतार फेंकती है। जो स्त्री को कमजोर और पुरुष के दमदार होने का भ्रम पैदा करते हैं। इन पूर्वाग्रहों के तार–तार होते ही नजर आता है कि इनके बिना पुरुष कितना दुबला, मरियल और कमजोर है।

दलित साहित्य की जीवन्त झांकी हम दलित स्त्री लेखन में विशेष तौर पर अपने आस–पास के परिवेश और उनके आत्मवृत्तों और कहानियों में देख सकते हैं। हालाँकि अब सभी भारतीय भाषाओं में भी दलित स्त्री लेखिकाएँ आत्मकथा तथा अन्य विधाओं में स्वयं को अभिव्यक्ति कर रही है। इस प्रकार महाराष्ट्र में ही कुमुद पावड़े, वेवी काम्बले, मल्लिका अमर शेख, शान्ताबाई कांबले व अनेक अन्य दलित लेखिकाओं ने आत्मकथा विधा में सम्मानीय स्थान बनाया है।

बेबी ताईकांबले की आत्मकथा 'जीवन हमारा' निजी सुख–दुःख, उतार–चढ़ाव का चित्र मात्र नहीं है बल्कि यह एक दलित स्त्री की दृष्टि और भेगे हुये यथार्थ के माध्यम से भरे हुए डोरडोगरो के जीवन के साथ–साथ पशु से भी बदतर जीवन जीने के लिए विवश होना पड़ा समुदाय के जीवन का प्रमाणित साक्ष्य है इसे हम दलित स्त्री की टेस्टी मोनी की संज्ञा दे सकते हैं। जीवन हमारा में स्त्रियां विशेषतया दलित स्त्री जीवन विविध प्रसंगों जीवन स्थितियों के साथ बिखरे हुए हैं जो एक ढंग से पाठक के समक्ष दलित समुदाय के जीवन स्थितियों के आंकड़े उपस्थित करते हैं।

हिन्दी में कौशल्या वैसंती की आत्मकथा महत्त्वपूर्ण है। 1882 में हिन्दी में एक अज्ञात नारी की आत्मकथा 'सीमन्तनी उपदेश' भी भारतीय समाज में भारतीय स्त्री की दशा के यथार्थ को प्रस्तुत करती है। सुशीला टाक भौरे, रजनी तिलक, विमल खांडेकर, रजत रानी 'मीनू' सुमित्रा महरोल, कावेरी आदि अन्य दलित लेखिकाओं ने भी समकालीन हिन्दी साहित्य में अपनी उपस्थिति दर्ज करवाई है।

दलित स्त्रियाँ तिहरे शोषण की शिकार होती है। जबकि दलित पुरुष दोहरा दमन झेलते हैं– आर्थिक शोषण व भारतीय जाति व्यवस्था में कथित निम्न जाति होने का सामाजिक दमन, जो कई बार हिन्दू धार्मिक

नियमों के अनुसार तो अस्पृश्यता तक चला जाता है। दलित स्त्रियों को ये दोनों दमन तो दलित पुरुषों के साथ झेलने पड़ते ही हैं। सामंती मूल्य व्यवस्था के चलते वे घरों के भीतर पुरुष दमन का शिकार भी होती है दलित पुरुष भी अपने घरों व सामाजिक सांस्कृतिक में स्त्रियों को दोयम दर्जा देते हैं। कई बार तो दलित स्त्रियाँ भी सास–बहू सम्बन्धों पर दलित स्त्रियों का दमन करती है क्योंकि दलित की पारिवारिक संस्कृति भी अभी भारतीय सामंती मूल्य व्यवस्था द्वारा ही परिचालित है, जिसमें ससुराल में बहू पर हर तरह के अत्याचार किए जाते हैं।

सबसे पहले 'सीमन्तनी उपदेश' पर विचार करते हैं जिसके लेखक रूप में एक अज्ञात हिन्दी औरत का उल्लेख है। यह आत्मकथा एक फरवरी 1882 को पहली बार लुधियाना के मुंशी कन्हैया लाल अलखधारी ने प्रकाशित की। यह पुस्तक सामान्यतः–समाज के व विशेषतः स्त्रियों में शिक्षा के प्रसार के उद्देश्य से लिखी गई थी। डॉ. धर्मवीर के अनुसार, ''यह पुस्तक भारत में स्त्री जागरण का महान दस्तावेज है और उनके अनुसार यह पुस्तक आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी उन्नीसवीं सदी में थी।''

इस पुस्तक के दो अध्याय काव्य रूप में लिखे गए हैं, जो प्रार्थना के शिल्प में है, दूसरी प्रार्थना में लेखिका ने भारत में स्त्रियों की दयनीय दशा पर ध्यान केन्द्रित किया है। जो लेखिका के अनुसार दस हजार वर्ष से चली आ रही है। गद्य में लिखी एक अध्याय की प्रार्थना में लेखिका ने ईश्वर से भारत का अज्ञानता से मुक्ति दिलाने की प्रार्थना की है; ताकि मनुष्य एक–दूसरे की ओर करुणा से देख सके। लेखिका ने भारतीय समाज में स्त्रियों की वास्तविक दशा पर ध्यान केन्द्रित किया है।

1999 में हिन्दी में प्रकाशित 'दोहरा अभिशाप' 73 वर्षीय दलित स्त्री कौशल्या वैसंत्री की आत्मकथा है, जो अपने वैवाहिक जीवन के चन्द्र दशकों में निष्क्रिय रही और फिर अपने पति से अलग होकर बड़ी उम्र में सक्रिय हुई है। यह आत्मकथा दलित स्त्री के सामाजिक यथार्थ को बड़े सादे, लेकिन प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करती है। भूमिका में ही लेखिका ने स्पष्ट कर दिया है कि यद्यपि उनके पति स्वतन्त्रता संग्रामी व भारत के बड़े अधिकारी रहे। अपने चंद दशक के वैवाहिक जीवन में उन्होंने अपनी पत्नी की ओर कोई ध्यान नहीं दिया और वे विवाह के चार दशक बाद अलग हो गए। अपने पुत्र के साथ मद्रास में रहते हुए लेखिका ने अपने अनुभवों को हिन्दी में लिखने का फैसला किया ताकि वे पाठकों के बड़े वर्ग तक पहुँच सके।

हिन्दी साहित्य में दलित प्रवृत्ति को स्थापित करने की प्रक्रिया में नागपुर में सुशीला टाकभौरे ने भी कविता, कहानी व लेखों की कुछ पुस्तकें लिखी है। सुशीला टाक भौरे का लेखन यद्यपि ईमानदार है, प्रकृति और शैली में सरल है। उनकी अधिकांश कविताओं–कहानियों में आत्मकथात्मक स्पर्श है। 'परिवर्तन जरूरी है।' पुस्तक में सुशीला ने परिवर्तन की जरूरत को समझने के लिए स्त्रियों की शिक्षा व आत्मनिर्भरता पर जोर दिया है। 'दलित स्त्री और साहित्य' लेख में सुशीला जी ने शिकायत की है कि पुरुष लेखक स्त्री लेखक का पूरा महत्त्व स्वीकार नहीं करते। उनके अनुसार स्त्री लेखन प्रायः पुरुष लेखकों की उपेक्षा का शिकार हुआ है। उन्होंने दलित स्त्री लेखिकाओं से आह्वान किया है कि वे वे आगे आएँ और साहित्य लेखन में नेतृत्व ले। डॉ. अम्बेडकर पर एक लेख में लेखिका ने दलित समाज के भीतर की गलत प्रवृत्तियों की आलोचना की है। उन्होंने कहा है कि ''दलित चमार स्वयं को दलित भंगी से श्रेष्ठ समझता है और उससे घृणा करता है, इस प्रकार दलित अछूत आपस में ही नीच–ऊँच का व्यवहार करते हैं।'' दलित लक्ष्य के प्रति अपनी ईमानदारी और सहृदयता से सुशीला टाकभौरे आने वाले वर्षों में प्रौढ़ व महत्त्वपूर्ण दलित लेखिका बन गई है।

'टूटे पंखों से परवाज तक' साहित्यकार और पेशे से प्रोफेसर सुमित्रा महरोल की हाल में ही प्रकाशित आत्मकथा है। सन् 1965 ई. को दिल्ली में पैदा हुई सुमित्रा महरोल सम्प्रति दिल्ली के ही श्यामलाल महाविद्यालय शाहदरा के हिन्दी विभाग में अध्ययन और शोध के पेशे से जुड़ी हुई है। शारीरिक विकलांगता के बावजूद उन्होंने खुद को दुनिया के सामने साबित किया कि इंसान अगर ठान ले तो कुछ भी असंभव नहीं है। सुमित्रा अपनी आत्मकथा में बताती है कि दिल्ली के फिरोजशाह रोड स्थित एक कमरा, रसोई साधारण घर जहाँ सुमित्रा महरोल अपने माता–पिता और दो बड़े भाइयों के साथ रहती थी। पिता डेसू में क्लर्क की मामूली नौकरी पर अपना गुजारा करते थे। सुमित्रा जी आत्मकथा में शहरी ताप को कुछ इस तरह से रेखांकित करती हैं। ग्रामीण समाज में धनवानों द्वारा दलित पर किया जाने वाला शोषण आसानी से परिलक्षित किया जा सकता है चाहे वह श्रम से संबंधित हो आर्थिक हो अथवा सामाजिक हो पर तथाकथित शहरी शिक्षितों द्वारा किया जाने वाला भेदभाव इतना अप्रत्यक्ष और महीन होता है कि पीड़िता के अलावा अन्य को दृष्टिगत नहीं होता है। स्टाफ रूम में बैठने वाला ग्रुप यह चाहता है कि आप अपने स्वजातीय से ही सम्बन्ध बनाये। आज के विभागों का ग्रुप कुछ इसी हिसाब का दिखाई देता है। यह शहरी जातिवाद का जीवन्त उदाहरण है। इस आत्मकथा में बड़े नगरों में बसे हुए बहुत से अधिकारी, कर्मचारी, डॉक्टर, वकील, प्रोफेसर और उद्यमी गाँव की गंदी मानसिकता को शहरों में ढोते हुए दिखाई देते हैं।

हिन्दी दलित आत्मकथा लेखिकाओं में कावेरी का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है कावेरी की आत्मकथा 'टुकड़ा टुकड़ा जीवन' में अपनी कथा के साथ–साथ परिवार और समाज का चित्रण किया है यह आत्मकथा सन् 2017 में लिखी गई चार टुकड़ों में बँटी है। आत्मकथाएँ दलित जीवन लेखकों के अदम्य जीवन संघर्ष के साथ आगे बढ़ने का संदेश देती है। क्योंकि दलित आत्मकथाकार यह बताना चाहते हैं कि जो नारकीय और दस्तावेज पूर्ण जीवन उन्हें मिला, उसमें व्यक्ति विशेष का अपराध नहीं बल्कि व्यवस्था विशेष का है। इसीलिए दलित आत्मकथाएँ व्यवस्था परिवर्तन की मांग करती है।

कावेरी का जीवन बहुत संघर्षशील रहा है वह कहती है ''मैंने जिन्दगी से हार मानना नहीं सीखा। संघर्ष तो मेरे जीवन में हमेशा ही रहा आरक्षण के नाम पर जो माहौल उड़ाया जाता है उसे हासिल करना है।''

दलित साहित्य भारतीय साहित्य का अंग बन कर उभर रहा है। दलित स्त्री लेखन भी अपनी उपस्थिति महसूस करता रहा है। दलित साहित्य की धारा जवान हो चुकी है परन्तु इसमें स्त्री स्वर अभी अपने जन्म के मंगल गीत ही गा रहा है। यद्यपि मात्रा की दृष्टि से यह भले ही उँगलियों पर गिना जाने वाला हो पर गुणवत्ता की दृष्टि से बराबर टक्कर लेने वाला है। फिर भी आज उन कारणों की जाँच अब होनी ही चाहिए जिनके कारण दलित स्त्री के अनुभव पर्याप्त मात्रा में सामने नहीं आ पा रहे। जिस प्रकार हिन्दी साहित्य के भीतर दलित साहित्य को प्रोत्साहन करने का काम कितने ही प्रगतिशील साहित्यकारों ने किया वैसा प्रोत्साहन दलित स्त्री को नहीं मिला। उसके लिए विशेष प्रयास न तो दलित पुरुषों ने स्वयं किए और यदि बाहर से ऐसे प्रयास होते तो उन पर नाकाबन्दी करने के लिए जारकर्म की थीसिस उन्होंने इतिहास के तौर पर तैयार कर ली, जिसके तहत अपनी ही स्त्री को बदनाम कर उसके बढ़ते कदमों पर दलित ब्राह्मणवाद की बेड़ियाँ डालने का काम किया गया। जब कोई भी स्त्री अपनी आवाज बुलन्द करती है तो उसकी आवाज पहले–पहल उन्हीं दीवारों से टकराती है जो उस स्त्री को दीन–हीन बनाए रखना चाहती है। प्रायः पढ़ा–लिखा उच्च शिक्षा प्राप्त दलित पुरुष का दिमाग

स्त्रियों के मामले में और संकीर्ण हो जाता है, जबकि पढ़ी–लिखी उच्च शिक्षा प्राप्त दलित स्त्री का दिमाग अधिक प्रगतिशील हो जाता है। ऐसे में दलित पुरुष स्त्री को घर के भीतर उसे उसके शरीर के भीतर बाँधना चाहता है वही दलित स्त्री घर और देह के सारे बन्धन खोल देश और समाज के निर्माण में भी अपने व्यक्तित्व को साकार करना चाहती है। इस स्थिति में दो परिणाम होते हैं या तो स्त्री पति द्वारा छोड़ दी जाती है या घर की चार दीवारी में सिमट कर भाषा और स्वतन्त्र विचार पर अपना अधिकार ही को बैठती है। उसके अनुभव उसके अपने न होकर पति प्रदत्त होते हैं जिनमें अनुभूति की तीव्रता नहीं होती। वह बाहर की दुनिया को पति की आँख से ही देखती है या देखना ही छोड़ देती है।

संदर्भ सूची :-

1. 'दोहरा अभिशाप', कौशल्या वैसंत्री 2012, परमेश्वरी प्रकाशन।
2. 'शिकंजे का दर्द', सुशीला टाकभौरे, 2014 वाणी प्रकाशन।
3. 'टूटे पंखों से परवाज' तक सुमित्रा महरोल, 'द मार्जिन लाइट पब्लिकेशन, दिल्ली।
4. 'टुकड़ा–टुकड़ा जीवन', कावेरी 2017 ईशा ज्ञानदीप प्रकाशन।
5. समकालीन भारतीय दलित महिला लेखन आत्मकथा–– सम्पादक रजनीतिलक : 2017 (खण्ड––3)
6. दलित स्त्री विमर्श एवं पत्रकारिता, रजनी तिलक 2016, श्री नटराज प्रकाशन।
7. डॉ. अम्बेडकर और महिला आंदोलन 2012 बुक्स इण्डिया नई दिल्ली।

नाम–नीलू सिंह
पिता–स्व. प्रेमचन्द्र सिंह
पता–अन्दावा, मझिलेपुर,
सराय इनायत, प्रयागराज (उ.प्र.)
पिन नं. 221505
मो.नं. 9198264696
Email : neelusingh2488@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 175-180

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भगवती चरण वर्मा के उपन्यासों में नारी विमर्श वर्तमान संदर्भ में

निर्मला पुरसवानी
शोधार्थी, राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा।

ईश्वर ने ऐसी अद्भुत सृष्टि की रचना की है जिनमें हमें कहीं ऊँचे–ऊँचे पर्वत, हरे–भरे पेड़–पौधे, सघन वन, कलकल करती हुई नदियाँ, निरन्तर प्रवाहित सागर, लहलहाते खेत, चहकते हुए पक्षी, रंग–बिरंगे सुगन्धित पुष्पों पर मँडराते हुए भंवरे दिखाई देते है। ऐसी प्रकृति के निराले रंग रूप से युक्त इस सृष्टि में जब पहला मानव आया तो विधाता ने उसको नारी के रूप में एक ऐसा साथी प्रदान किया जो उसकी भावनाओं को समझकर उसके सुख–दुःख का भागीदार बन सके और परस्पर प्रेम भाव द्वारा मिलकर अपनी संतति और सृष्टि के विकास क्रम को बढ़ा सके। वस्तुतः नारी न केवल पुरूष की चिर सहायिका रही है बल्कि वह समाज में पुरूष के समान एक महत्वपूर्ण अंग के रूप में भी उपस्थित है। सदियों से ही नारी भारतीय समाज में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती आई है चाहे वह पत्नी के रूप में सीता, सावित्री, उर्मिला, यशोधरा हो या फिर माँ के रूप में देवकी, यशोदा, अनुसूया, जीजाबाई हो या फिर अपने अधिकारों के लिए लड़ने वाली झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई अथवा देश में शासन तंत्र में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली सरोजिनी नायडू, इंदिरा गाँधी, प्रतिभा पाटिल, द्रोपदी मुर्म या फिर बेटी के रूप में देश को पदक दिलाने वाली गीता फोगाट और कृष्णा पूर्णिया हो, अंतरिक्ष यात्रा में उड़ान भरने वाली कल्पना चावला, सुनिता विलियम्स या चंद्रयान 3 की अध्यक्ष ऋतु कारेधाल, अथवा स्वामी भक्त पन्ना धाय या फिर शत्रुओं से स्वयं के सतीत्व की रक्षा के लिए उसे भंग होने से बचाने के लिए रानी पद्मिनी जैसी वीरांगनाएँ हो। इतनी महत्वपूर्ण भूमिकाओं के बाद भी नारी को समाज में वह दर्जा नहीं मिला जिसकी वह अधिकारी है। सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था का निर्माण पुरूष द्वारा होने के कारण नारी की भूमिका दोयम दर्ज की रही है। नारी विमर्श नारी के प्रति समाज की इस सोच पर व्यंग्य करता है।

हिन्दी साहित्य में भले ही नारी विमर्श की गूंज 1960 ई. से सुनाई देती है जिनमें उषा, महादेवी वर्मा, प्रियवदा, कृष्णा सोबती, मन्नू भण्डरी इत्यादि का नाम उल्लेखनीय है लेकिन आज के दौर में भी नारी विमर्श, आदिवासी विमर्श और दलित विमर्श इत्यादि की भाँति साहित्य का केन्द्र बिन्दु रहा है। नारी विमर्श की चर्चा अधिकांशतः उपन्यासों और कहानियों के संदर्भ में अधिक देखी जाती है।

नारी विमर्श और भगवती चरण वर्मा के उपन्यास–हिन्दी साहित्य के ख्याति प्राप्त भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में नारी विमर्श पर प्रकाश डालने से पूर्व नारी विमर्श को जानना आवश्यक है। नारी विमर्श में नारी की चर्चा वस्तु रूप से हटकर व्यक्ति रूप में अर्थात् जीवंत रूप में की जाती है। नारी विमर्श से तात्पर्य नारी के विषय में लेखक और लेखिकाओं का सोच विचार अथवा चिंतन है लेकिन अक्सर नारी विमर्श को लेखिकाओं से ही जोड़ा जाता है जो कि एक संकुचित दृष्टिकोण है। ऐसा क्यों माना जाता है कि नारी द्वारा लिखित साहित्य में ही स्त्री विमर्श पर प्रामाणिक ढंग से लिखा गया है जबकि पुरूष लेखकों द्वारा लिखित साहित्य नारी विमर्श से शून्य है और लेखिकाएँ समझती है कि नारी ही नारी की समस्याओं को समझ सकती है जबकि ऐसा नही है। नारी पर और उसकी समस्याओं पर पुरूष लेखकों ने भी प्रमाणिक रूप से लिखा है और आज के दौर में भी लिख रहे है। आधुनिक काल में भारतेन्दु हरिश चन्द्र के साहित्य में समाज सुधार, देश प्रेम के साथ नारी विमर्श भी है।

मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत' महाकाव्य में उर्मिला की पीड़ा का और अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिओध' के महाकाव्य 'वैदेही वनवास' में सीता आदि नारी पात्रों की मनोदशा का मर्मस्पर्शी चित्रण किया गया है। प्रेमचन्द, जैनेन्द्र यशपाल इत्यादि के साहित्य में भी नारी से जुड़ी हुई समस्याओं व भावनाओं का हृदयानुभूति चित्रण किया गया है, जो नारी विमर्श नहीं तो क्या है? जबकि महिला लेखिकाओं ने तो बाद में लिखना शुरू किया। यहाँ एक बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि समाज में जितनी भी बुरी प्रथाएँ थी चाहे वह दहेज प्रथा, सती प्रथा, बाल विवाह, पर्दा प्रथा, विधवा प्रथा हो, उन सभी का विरोध सबसे पहले समाज सुधारको के रूप में पुरूषों ने ही किया है क्योंकि उन्होने स्त्रियों पर लगे हुए इन अभिशापों की करूण पुकार को सुना था। इसलिए नारी विमर्श को केवल महिला लेखिकाओं से जोड़कर देखा जाना स्त्री मानसिकता का संकीर्ण व अनुपयुक्त दृष्टिकोण है। इस कारण पुरूष लेखकों द्वारा किये गए नारी विमर्श की आज के दौर में अवहेलना नही की जा सकती। जिन पुरूष लेखकों ने नारी की समस्याओं पर प्रामाणिक ढंग से प्रकाश डाला है, उनके लेखन को भी नारी विमर्श का आवश्यक अंग माना जाए।

भगवती चरण वर्मा भी उन पुरूष लेखकों में अग्रणी है जिन्होने अपने साहित्य में नारी विमर्श पर अपनी लेखनी चलाई विशेषतः उपन्यासों में। उन्होने अपने प्रत्येक उपन्यास में नारी विमर्श को यथेष्ट स्थान दिया है। उन्होने अपने उपन्यासों में स्त्री के प्रति भेदभाव, स्वतंत्र अस्तित्व, भावनात्मक, समर्पण शीलता, उसकी शिक्षा, उसके सशक्त रूप व उसकी समस्याओं को अपनी लेखनी की विषय वस्तु बनाया है। रचनाकार ने नारी को सौंदर्य, विलासिता की वस्तु न मानकर देवी, दुर्गा व शक्ति के रूप में माना है। वे इस संदर्भ में कहते भी है 'स्त्री शक्ति है, वह दुर्गा है, वह काली है।'[1] उपन्यास राजनीतिक पृष्ठभूमि पर रचित एक सफल उपन्यास है। भारत पर अंग्रेजी शासन के हुकूमत का विरोध इस उपन्यास की नायिका वीणा करती है जो क्रांतिकारी है, जो पराधीन देश के नवयुवकों पर कटु प्रहार करती है 'यह इसलिए कि हमारे देश के नवयुवक नपुंसक और कायर है, न उसमें साहस है और न उनमें स्वाभिमान है।'[2] उपन्यास में वीणा को नारी सुकोमलता व नारी सौदर्य के स्थानपर शत्रुओं का सहांर करने वाली काली के रूप में रचनाकार ने चित्रित किया है। उपन्यास का नायक

प्रभानाय वीणा के क्रांतिकारी रूप को देखकर नारी के सम्बन्ध में आत्म चिंतन करता है 'नारी मिटना जानती है, मरना जानती है पर वह मारना कब से जान गई है।'[3] उपन्यास के अंत में सब इंस्पेक्टर विशम्भर लाल की हत्याकर अपने पति प्रभा नाथ को जहर देकर जेल की यंत्रणा से मुक्ति दिलाती है जो नारी सशक्तिकरण को प्रकट करता है।

हमारे समाज में स्त्री से ही पति व्रत धर्म और एकनिष्ट प्रेम की अपेक्षा की जाती रही है। प्राचीन समाज से लेकर वर्तमान समाज तक बहुपति विवाह के उदाहरण अंशतः ही देखने को मिलेंगे लेकिन बहुपत्नी विवाह के उदाहरण हमारे समाज में न जाने कितनी संख्या में विद्यमान है जिनकी गणना भी मुश्किल है। हमारे इतिहास में न केवल राजा महाराजा एक से अधिक विवाह करते हुए दिखाई देते है और विशेष परिस्थितियों में धार्मिक ग्रन्थों में भी बहुपत्नी विवाह को मान्यता दी गई है, स्वयं देवी–देवता भी इससे अछूते नहीं रहे है। भगवती चरण वर्मा अपने 'चित्रलेखा' उपन्यास में नारी की इसी समस्या को अपने विमर्श का केन्द्र बिन्दु बनाते है। उपन्यास में चित्रलेखा एक नर्तकी थी, समाज से च्युत् थी लेकिन फिर भी वह नारी स्वातंत्र्य की चेतना का आभास देती हुई प्रतीत होती है। उपन्यास में योगी कुमारागिरि द्वारा पूछे पर 'क्या तुम्हारा दो व्यक्तियों से एक साथ प्रेम करना सम्भव है?'[4] तब चित्रलेखा का प्रतिक्रिया स्वरूप कहा गया कथन नारी द्वारा पुरूष की स्वतंत्रता पर आक्षेप करता हुआ रचनाकार द्वारा नारी स्वातंत्रयता की चेतना का प्रबल समर्थन करता हुआ प्रतीत होता है, साथ ही नारी विमर्श का भी। 'गुरूदेव पुरूष दो विवाह कर सकता है और वह दोनो पत्नियों से प्रेम कर सकता है फिर स्त्री क्यों ऐसा नहीं कर सकती?'[5] पुरूष को तो हर जन्म में सीता ही चाहिए चाहे स्वयं का चरित्र कितना ही कलुषित हो जो आज के दौर के वर्तमान शिक्षित समाज में भी देखी जा सकती है।

हमारे समाज में देखा गया है कि असफल वैवाहिक जीवन स्त्री के सम्पूर्ण जीवन को बिखेरकर रख देता है और इसका जितना अधिक प्रभाव नारी के जीवन पर पड़ता है, उतना पुरूष के जीवन पर नहीं क्योंकि वैवाहिक जीवन में बंधने पर स्त्री को अपना परिवार छोड़कर दूसरे परिवार को अपनाना पड़ता है लेकिन यदि उसका वैवाहिक जीवन किसी कारणवश सुखद नहीं हो पाता और वह तंग होकर ससुराल छोड़ने पर विवश हो जाती है तब उसके लिए पीहर में भी जगह नहीं रहती और समाज भी उसे अलग नजरों से देखता है। वह स्वयं को भी बोझ महसूस करती है। असफल वैवाहिक जीवन के कारण उसकी जो मनःस्थिति होती है वह पुरूष की नहीं। यहाँ तक कि वह दुबारा वैवाहिक जीवन में बंधने से कतराती है और उसे शारीरिक व मानसिक रूप से तैयार होने में काफी कठिनाई आती है। रचनाकार ने नारी की इस मनोदशा को महसूस कर इस पर प्रकाश डाला है । 'भूले बिसरे चित्र' मेंविद्या के सम्बन्ध में ज्ञान प्रकाश का कथन दृष्टत्य है 'जी आप कभी थे लेकिन अब नही है क्योंकि आप उसका हाथ उन पिशाचों के हाथ में सौंप चुके है। उसका कोई नहीं है, दुनिया मे भैया किसी पर उसका अधिकार नहीं, किसी का उसको सहारा नहीं।'[6] वर्तमान समाज में भी नारी की इस स्थिति को देखा जा सकता है जबकि वह शिक्षित है।

हमारे समाज ने स्त्री का कार्य क्षेत्र केवल घर की चार दीवारी तक सीमित माना जाता था, उसे बाहर

की दुनिया से दूर रखा जाता था। वर्तमान समाज में भी नारी की इस स्थिति को देखा जा सकता है। इसे भी रचनाकार ने अपने नारी विमर्श का आधार बनाया है। 'भूले बिसरे चित्र' में गंगा प्रसाद स्वाधीनता आंदोलन के दौरान आंदोलनकारियों के रूप में पकड़ी गई महिलाओं को कहता है।[7]' तुम दोनो महिलाएँ हो, तुम्हारा स्थान घरों में है।'[7] आज के दौर में भी हम समाज की इस संकीर्णवादी सोच को देख सकते है। यद्यपि वह नौकरी कर रही है लेकिन फिर भी घर गृहस्थी की जिम्मेदारी उस पर है। कामकाजी महिला पर दोहरी जिम्मेदारी आ जाती है जिससे वह शारीरिक और मानसिक रूप से व्यथित हो जाती है। जबकि पुरूष के साथ ऐसा नहीं है। उसे तो स्वयं ही टिफिन बनाना है, स्वयं का, बच्चों का और पति का जबकि पुरूष को इस तरह का कोई काम करना नहीं होता, उस पर केवल एक ही जिम्मेदारी होती है जो नारी विमर्श का केन्द्र बिन्दु है जिसे भगवतीचरण वर्मा ने अपने उपन्यासों में व्यक्त किया है। 'भूले बिसरे चित्र' उपन्यास में विद्या ऐसी नारी पात्र है जो सामाजिक विडम्बना और आडम्बरों को तोड़कर नारी पराधीनता के अंत और नारी स्वातन्त्रय की शुरूआत करती है। रचनाकार ने बेमेल विवाह और दहेज प्रथा की शिकार विद्या का चरित्र आदर्शवाद से अधिक यथार्थवाद के रूप में पाठक के समक्ष उपस्थित किया है जो पारिवारिक व सामाजिक विसंगति को तोड़कर पति की प्रताड़ना को सहते–सहते एक दिन यह कहती हुई घर छोड़ देती है। 'तुम लोगो का घर नरक है। अब अगर इस पर में पैर रखूँ तो अपने बाप की बेटी नहीं।'[8] वह नारी निकेतन में अध्यापिका की नौकरी कर आत्मनिर्भर बनती है। अब उसे समाज की कोई चिन्ता नहीं है। इसी दहेज के कारण लड़कियाँ विवाह व्यवस्था को नकार रही है। 'थके पाँव' उपन्यास में माया विवाह व्यवस्था को नकार कर आत्म निर्णय के रूप में नारी के अस्तित्व की चेतना को प्रकट करती है।[9]' मुझमें भी भावना है मुझमें भी व्यक्तित्व है, मैं अपना हित–अहित समझ सकती हूँ।'[9]

विवाह हमारे समाज में लड़की के प्रेम विवाह, अन्तर्जातीय विवाह, सिविल मैरिज करने पर लड़की के परिवार वालों को सामाजिक आलोचना का शिकार बनना पड़ता है जबकि लड़के के घरवालों को नहीं। 'प्रश्न और मरीचिका' उपन्यास में लता द्वारा प्रेम विवाह किये जाने पर उसके पिता के चेहरे की हँसी तो गायब ही हो जाती है जबकि वह स्वयं अपने पुत्र उदयराज को सिविल मैरिज करने की सलाह देते है। रचनाकार ने इसे भी नारी विमर्श का आधार बनाया है कि आज के शिक्षित समाज में क्यों लड़कियों के प्रेमविवाह या अन्तर्जातीय विवाह करने पर आपत्ति उठाई जाती है?

आज के दौर में भी महिला, उत्पीड़न और घरेलु हिंसा का शिकार हो रही है। महिला उत्पीड़न के अन्तर्गत रचनाकर ने बलात्कार, अपहरण, ऑनर किलिंग, जैसी समस्याओं को अभिव्यक्ति दी है। 'भूले बिसरे चित्र' में गंगा प्रसाद रानी संतवत कुंवर की सुन्दरता को देखकर दंग रह जाता है जिससे उसके अन्दर एक भयानक पशुता उत्पन्न हो जाती है और वह एक हिंसक पशु की तरह उस पर टूट पड़ता है। संतवत कुंवर उससे करूण और विवश भरे शब्दों में कहती है 'मैं तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ, पैर छूती हूँ, मुझे छोड़ दो, मुझे छोड़ दो।'[10] लेकिन उसके हाथ जोड़ने का, गिड़गिड़ाने का गंगा प्रसाद पर कोई असर नहीं होता और गंगा प्रसाद उसे अपनी वासना का शिकार बना लेता है जो रानी संतवत कुंवर को मेजर वाट्स के साथ सम्बन्ध बनाने के लिए प्रेरित करती है।

इस तरह वह पतन के गर्त में गिरती ही चली गई। आज के दौर में सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि समाज आज शिक्षित है, महिला के समान अधिकारों की बाते हो रही है लेकिन फिर भी वह उत्पीड़ित हो रही है। उपन्यास में पर्दा प्रथा से पीड़ित नारी को भी रूक्मिणी और यमुना के माध्यम से चित्रित किया है लेकिन रचनाकार नारी के लिए पर्दा प्रथा की इस समस्या को जंगलीपन की संज्ञा देता है। वह गंगा प्रसाद के माध्यम से कहता है 'अरे घूंघट काढ़ने की क्या जरूरत है? यह सब पुराना दकियानूसी पन छोड़ भी।'[11]

रचनाकार ने सामाजिक परिवेश को ध्यान में रखते हुए नारी की वेश्यावृति के रूप की मनःस्थिति का चित्रण किया है। हमारे समाज में व्यक्ति वेश्या के साथ शारीरिक सम्बन्ध तो बना लेते है लेकिन उससे विवाह नहीं करते क्योंकि विवाह करने पर उसे समाज का विरोध सहना पड़ता है। 'भूले बिसरे चित्र' में गंगा प्रसाद मलका नामक वेश्या से शारीरिक सम्बन्ध तो बना लेता है लेकिन मलका द्वारा विवाह की बात कहने पर अपने परिवार और सामाजिक प्रतिष्ठा के बारे में सोचने लगता है। मलका का निकाह अपने मित्र के साथ करवाने का तैयार हो जाता है ताकि वह अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा को बचा सके व उसके साथ सम्बन्ध कायम रख सके लेकिन गंगा प्रसाद ने मलका की भावनाओं को अपने पैरों तले कुचल दिया क्योंकि वह वेश्या थी जबकि उसने अपनी पत्नी रूक्मिणी के बारे में ऐसा कभी नहीं सोचा था। यहीं पर आकर एक वेश्या नारी की सामाजिक स्थिति का पता चलता है।

हमारे समाज में धार्मिक क्षेत्र में भी रचनाकार ने नारी विमर्श को अभिव्यक्ति दी है। धर्म भारतीय समाज का अभिन्न अंग है जिसने हमारे भारत देश को दो भागों में बाँट दिया। इस धर्म की बात की जाए तो स्त्री का सौन्दर्य, उसका प्रेम व्यक्ति को सामाजिक बंधनों में बांध देता है जो पुरूष की आध्यात्मिक साधना में बाधक है। हमारा इतिहास इसका प्रमाण है कि अनेक तपस्वी ऋषि–मुनियों ने स्त्री से दूर रहकर अपनी साधना में सफलता प्राप्त की और अनेक ऋषिमुनियों की तपस्याभीनारीसौन्दर्य के कारणभंगहुईलेकिनवास्तवमेंनारीविमर्श की दृष्टि से देखा जाए तो इसमें स्त्री का सौंदर्य बाधक नहीं बल्कि स्वयं पुरूष की कमजोरी और उसमें अपने लक्ष्य के प्रति एक निष्ठा का अभाव है जो नारी पर दोषारोपण करने में देर नहीं लगाता। 'चित्रलेखा उपन्यास में योगी कुमारा गिरि अपनी कुटिया में चित्रलेखा के प्रवेश करने पर संकोच करता हुआ कहता है 'स्त्री अंधकार है, मोह है, माया है और वासना है। ज्ञान के आलोकमय संसार में स्त्री का कोई स्थान नहीं।'[12] इसके प्रति उत्तर में चित्रलेखा कहती है 'और रही स्त्री के अन्धकार तथा माया होने की बात, योगी वहाँ भी तुम भूलते हो स्त्री शक्ति है, वह सृष्टि है।'[13] यहाँ तक कि रजोस्वला के समय में भी स्त्री को अछूत मानकर पूजा पाठ से दूर रखा जाता है जो नारी विमर्श के रूप में 'आज के दौर को अभिव्यक्ति देता है।

निष्कर्ष रूप में रचनाकार अपने उपन्यासों में स्त्री को पुरूषों की तुलना में उच्च स्थान देते है। उनके उपन्यासों में नारी पात्र सिर्फ काल्पनिक ही नहीं बल्कि आज के दौर की भारतीय नारी समाज के प्रतिनिधि के रूप में भी है। उनके उपन्यासों में नारी पात्रों ने नारी से जुड़ी हुई विविध समस्याओं को भोगा है और उस पर प्रश्न चिह्न लगाकर विरोध करती हुई दिखाई देती है। उनके उपन्यासों में नारी माता, परिणीता, वेश्या, कामकाजी,

विधवा इत्यादि के रूप में अपनी अमिट छाप छोड़ती है। उनके उपन्यासो में नारी के सम्बन्ध में तत्कालीन समाज की विषम स्थिति के दर्शन होते है बल्कि आज के दौर में पाठक और समाज को झकझोरते है और भविष्य की दिशा निर्धारित करते है। अतः उनके उपन्यासो में नारी पात्र स्त्री विमर्श का ज्वलंत उदाहरण प्रस्तुत करने में सक्षम सिद्ध होते है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. टेढे मेढे रास्ते, भगवती चरण वर्मा, पृ.सं. 49
2. वही, पृ.सं. 51
3. वही, पृ.सं. 49
4. चित्र लेखा, भगवतीचरण वर्मा, पृ.सं. 96
5. वही
6. भूले बिसरे चित्र, भगवती चरण वर्मा, पृ.सं. 462
7. वही, पृ.सं. 349
8. वही, पृ.सं. 459
9. थके पांव, भगवती चरण वर्मा, पृ.सं. 100
10. भूले बिसरे चित्र, भगवती चरण वर्मा, पृ.सं. 207
11. वही, पृ. सं. 202
12. चित्र लेखा, भगवती चरण वर्मा, पृ.सं. 28
13. वही, पृ.सं. 45

पता – म.नं. 217, नन्दनगर, ब्यावर, जिला : अजमेर (राजस्थान) 305901

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 181-185

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

विश्वकल्याणाय सनातन संस्कृतेः प्रासङ्गिकता

डॉ. पङ्कज कुमार शर्मा

पाण्डुलिपि विशेषज्ञ, माद्री इण्डस्ट्रल एरिया उदयपुर 313001

अस्यां परब्रह्मणा निर्मिता वसुन्धरायां मानवजन्मातीव दुर्लभं वर्तते। मानवानां अस्मिन् जन्मनि प्रमुखं लक्ष्यं वर्तते यद्धर्मार्थकाममोक्षपूर्वकं सम्यक्तया परिवारेण समाजेन विश्वेन च सह जीवनं यापनम्। धर्मार्थकाममोक्षपूर्वकं जीवनयापनाय वेदेषु प्रतिप्रादितानि प्रशस्ताप्रशस्तश्रेष्ठश्रेष्ठतमेषु चतुर्षु कर्मसु श्रेष्ठतमकर्माणि आचरणियानि। श्रेष्ठतमकर्माचरयित्वैव समग्रभूमण्डलस्य राष्ट्रस्य समाजस्य स्वकीयोन्नतिं च कर्तुं वयं सर्मर्थाः।

उक्तञ्च काण्वसंहितायाम् –

इषेत्वोर्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणऽ आ प्यायध्वम् अघ्न्या ऽइन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा ऽअयक्ष्मा मा व स्तेनऽ ईशत माघशंसो ध्रुवा ऽअस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीः। यजमानस्य पशून् पाहि।

श्रेष्ठतमकर्माचरणेन वयं विश्वकल्याणं कर्तुं समर्थाः। अस्माकं पूर्वजैः विशिष्टाचरेण विश्वकल्याणाय निर्मिता आचरिता संस्कृतिः सनानतसंस्कृतिः।

उक्तञ्च –

अच्छिन्नस्य ते देव सोम सुवीर्यस्य रायस्पोषस्य ददितारः स्याम।
सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा स प्रथमो वरुणो मित्रो ऽ अग्निः।।

सनातनशब्दस्य व्युत्पत्तिः – सनातन इति शब्द एव सदा इति शब्दात् नत्वादेशे कालवाची ट्युल् प्रत्यये कृते निष्पद्यते सदा एव सदातनः सदातन एव सनातनः यस्तिष्ठते सदा सर्वदा स सनातना भारतीया संस्कृतिः।

सा संस्कृतिः या ब्रह्माण्डस्य आद्या सर्वोत्कृष्टा, समुन्नता, सुशिष्टा, सुविनियोग्या, सुस्पष्टा च वरीवर्ति। आम्नायपरम्परातः पर्यागता गुर्वन्तेवासिभिरनुभूता सहस्रैः वर्षैः कोटिभिश्च ऋषिभिः प्राणापण्येन सुरक्षिता संस्कृतिरस्माकं भारतीया सनातनसंस्कृतिः इत्युदीर्यते पूर्वजैः मुनिभिः ऋषिभिश्चावधीर्यते।

या प्रथमा संस्कृतिर्यज्ञे अस्मिन् यः परमो बृहस्पतिश्चिकित्वान्।।

सनातन संस्कृतेः प्रादुर्भावः आम्नाय परम्परातः सञ्जाता। तस्याः च आधारभूता अपौरुषेयावेदाः। प्राक्कालेऽस्मिन्वेदएकएव इति आसीत्। तंवेदज्ञानं महर्षिः कृष्ण द्वैपायनः मन्दमति मनुजानां हिताय सौकर्यायचऋग्यजुस्सामाथर्व भेदेन चतुर्धा बिभेद। वेदाज्ञान राशित्वात् शाश्वत स्थायिनः, ज्ञाननिधयः, मानवहितप्रापकाः, मनुज कर्तव्य–बोध का इति विविध धात्वर्थग्रहणाद्ज्ञायते।

कथं वेदाः सनातनसंस्कृतिमाध्यमेन विश्वकल्याणाय उपयुक्ताः भवन्तिः –

मानवजीवनस्योद्देश्यं वर्तते "इष्टप्राप्तिरनिष्टपरिहारः" अर्थात् ये ये शुभकामनाः सन्ति ताः साधनीयाः प्राप्तव्याः। ये ये चअनिष्टा अनिष्टकारकाः तेषां परिहारः अपि भवतु इति।

इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं वेदयति स वेदः।

सनातन संस्कृतेः वैशिष्यम् – अस्यां संस्कृतौ विश्वकल्याणाय विश्वेऽस्मिन् विद्यमान प्रचलिता प्रचलित समस्त धर्म–आचार–विचार परम्परा–शिक्षा–भाषा–नैतिकता–सामाजिक–भौतिक–राजनीतिक–आर्थिक–युद्धादिविषये तथा च संसारे आगत समस्या समाधानाय स्पष्टतया च वर्णनं प्राप्यते। एषा संस्कृतिः विविधज्ञान–विज्ञान राशिभूता, संस्कृतेराधाररूपाः, कर्तव्याकर्तव्याजबोधकाशुभाशुभनिदर्शका, जीवनस्योनायका, विश्वहितसंपादका, आचारसंचारका, सुखशान्तिसाधका, ज्ञानालोकप्रसारकासत्यतायाःसरणयः, कलाकलापप्रेरका, आशायाआश्रयाः, नैराश्यविनाशका चास्ति। वयं क्रमेण नानाविधक्षेत्रे विश्वकल्याणाय सनातनसंस्कृतेः प्रासङ्गिकता विषये चर्चां कुर्मः।

धार्मिकक्षेत्रे सनातनसंस्कृते विश्वकल्याणाय प्रासङ्गिकता : एषा प्रथमा संस्कृतिर्वर्तते तत्र धर्मविषये विशेषरूपेण वर्णनं प्राप्यते। संस्कतौ धर्मविषये एतावत्पर्यन्तं नीतिशास्त्रेषु निगदितं धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः। वेदामन्वादिभिः ऋषिभिः परमप्रमाणत्वेनोपन्यस्ताः। 'वेदोऽखिलोधर्ममूलम्'। इतिसमुद्घोषयतामनुनासमग्रस्यापिवेदनिधि धर्माधाररूपेण प्रतिष्ठा विहिता। मानवस्याखिलेकृत्यजातंकर्तव्याकर्तव्यंवा वेदेषु विशदतया निरूप्यते। अतएव वेदा आचार–संहिता––रूपेण प्रमाणी क्रियन्ते।

यःकश्चित्कस्यचिद्धर्मोमनुनापरिकीर्तितः।
ससर्वोऽभिहितोवेदेसर्वज्ञानमयोहिसः।।

सर्वेऽपिविद्वत्तल्लजा भारतीयाः दार्शनिकाः, आचार शिक्षण प्रवणाः स्मृतिकाराः। शब्द तत्त्व मीमांसा दक्षा वैयाकरणाः, अन्येचशास्त्रकारा वेदानां परम प्रामाण्यं उद्घोष यन्ति। अतएव महर्षिणा पतञ्जलिना कर्तव्यत्वेन समा दिश्यतेयत् ब्राह्मणेननिष्कारणोधर्मः षडङ्गोवेदोऽध्येयोज्ञेयश्च।

स्मृतिकारैर्न एतावतैवविरम्यते, अपितु निर्दिश्यतेयत् ब्राह्मणेन एकनिष्ठया वेदाध्ययनंसंपाद्यम्। एतद् ब्राह्मणस्य परमंतपः। यश्चवेदाध्ययनम् अवमत्यशास्त्रान्तरकृतमतिः सजीवन्नेवसपरिवारः शूद्रत्वम् उपयाति।

वेदमेवसदाऽभ्यस्येत्तपस्तप्यन्द्विजोत्तमः।
वेदाभ्यासोहिविप्रस्यतपःपरमिहोच्यते।।
योऽनधीत्यद्विजोवेदमन्यत्रकुरुतेश्रमम्।
सजीवन्नेवशूद्रत्वमाशुगच्छतिसान्वयः।।

मानवाणां प्रमुखः धर्मः वर्तते सत्यसङ्कल्पः। मानवजन्म अनृतं वर्तते। तत् देवत्वं सत्यत्वं च प्राप्तुं च वयं प्रयासः करणीयः।

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयन्तन्मेराध्यताम्।
इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि।
मनुष्यान् सदैव सत्यकर्मरता भवेयुः।
कस्त्वा युनक्ति सत्वा युनक्ति कस्मै त्वा युनक्ति तस्मै त्वा युनक्ति।
कर्म्मणे वां वेषाय वाम्।।

आचार-विचार क्षेत्रे सनातन संस्कृतेः प्रासङ्गिकता – अस्यां संस्कृतौ मानवाणां कृते निर्देशो वर्तते

यच्छरीरस्य अङ्गप्रत्यङ्गेन सर्वेषां स्वकीयं च कल्याणं शुभकर्माणि च आचरेत्।

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः।।

आचार एव परमो धर्म इति वर्णितम्। विना आचारस्य जीवनं नास्ति।

आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च।
तस्मादस्मिन् सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान् द्विजः।।
फलभावना त्यक्त्वा शतवर्षपर्यन्तं जीवनं यापनीयम्।
कुर्वन्नेवेह कर्माणि जीजिविषेच्छतं शमाः।

शिक्षाक्षेत्रे सनातनसंस्कृतेः प्रासङ्गिकता – अस्यां संस्कृतौ सर्वे मानवाः सुशिक्षिताः भवेयुः इति वर्णनं प्राप्यते। उक्तञ्च तैतिरीयोपनिषत्: अथ शीक्षां व्याख्यास्यामः। एतस्यां परम्परायां शिक्षामेव मनुष्यस्य प्रथमं धनमस्ति।

तया माध्यमेन मनुष्यः सर्वत्र पूज्यते।
उक्तञ्च दृ विद्वान् सर्वत्र पूज्यते।

ये अज्ञानं त्यक्त्वा ज्ञानविषये चिन्तयन्ति ते परं पदं प्राप्नुवन्ति।

तत्रैव –

अन्धंतमः प्र विशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते।
ततो भूय ऽ इव ते तमो य ऽ उ संभूत्यां रताः।।
संभूतिं च विनाशं च यस् तद् वेदोभयं सह।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा संभूत्यामृतमश्नुते।।
अन्धं तमः प्र विशन्ति ये ऽविद्यामपासते।
ततो भूय ऽ इव ते तमो य ऽ उ विद्यायां रताः।।
प्रत्येकं क्षणं अध्ययनं कर्त्तव्यं सर्वैः।
तत्रैव शतपथे – अहरहः स्वाध्यायमधीयित।

मनुना–

सर्वेषांतुसमानानिकर्माणिचपृथक्पृथक्।
वेदशब्दभ्यएवादीपृथक्संस्थाश्चनिर्मम।।

नैतिकता क्षेत्रे सनातन संस्कृतेः प्रासङ्गिकता– अस्यां संस्कृतौ आचार शिक्षा–दृष्ट्या, नैतिक–दर्शन रूपेणचातीव महत्त्वं वर्तते। कर्तव्योद्बोधन रूपेण तेषां परमं प्रामाण्यं वर्तते। किंकर्म, किम् अकर्मेति चिन्तायां एषा संस्कृतिःएतादर्शरूपेण प्रस्तूयन्ते। अतएव मनुनोच्यते –

वेदःस्मृतिःसदाचारःस्वस्यचप्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधंप्राहःसाक्षात्धर्मस्यलक्षणम्।।
श्रुतिस्मृत्युदितंधर्मम्अनुतिष्ठन्हिमानवः।
इहकीर्तिमवाप्नोतिप्रेत्यचानुत्तमंसुखम्।।

धर्मचिन्तायांकर्तव्यविचारणेचवेदाः परम प्रमाणभूताः सन्ति।

धर्मजिज्ञासमानानांप्रमाणंपरमंश्रुतिः।।

सत्यमेव नैतिकतायाः मूलम्। अस्यां संस्कृतौ सत्यमेव परं धर्मः मानवानाम्।

सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः।

येनाक्रमंत्यृषयो ह्याप्तकामो यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम्।।

महर्षिणा व्यासेन जीवनस्य आधारभूतं धनं परोपकारं वर्णितम्। परोपकारः एव नैतिकतायाः आधारोस्ति।

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।

परोपकाराय पुण्याय पापाय परपीडनम्।।

तैतिरोयपनिषत् – सत्यं वद। धर्मं चर। अतिथि देवो भव। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव।

सामाजिक क्षेत्रे सनातन संस्कृतेः प्रासङ्गिकता – समाजशास्त्रीयदृष्ट्याऽपिएषा संस्कृति अत्यन्तं महत्त्वपूर्णा अस्ति। समाजस्य विकासस्य, सभ्यतायाः समुन्नतेः, वर्णानां विविधवृत्ति पराणांनराणांचकर्म–कलापस्य, सामाजिक्या व्यवस्थायाश्चम हत्त्वपूर्णम् इतिवृत्तंवेदेषुपलभ्यते। प्राक्तनस्य समाजस्य किस्वरूपमासीदित्यपिततएवाप्तुंपार्यते। वयं जीवने सर्वेषां प्रति रागद्वेषहीनभावनां त्यक्त्वा समानरूपेण जीवनं आचरामः।

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।

समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।

जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम्।।

सामाजिके जीवने नारीणां विषये अद्भुता संस्कृति वर्तते।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।

आर्थिक क्षेत्रे सनातन संस्कृतेः प्रासङ्गिकता –

अस्यां संस्कृतौ अर्थशास्त्रदृष्ट्याऽपिवेदानां महत्त्वम् अस्ति। वेदेषुप्रणीत्वाअर्थव्यवस्थायाःस्वरूपंस्फुटेसमवाप्यते। असआदान–प्रदानस्य, क्रय–विक्रयस्य, व्यापारस्यवाणिज्यस्यच, गवादिपशूनाम्कृषि–धान्यादीनांचका व्यवस्थाऽवस्थाचासोदित्यपितत्र प्राप्तुंशक्यते। आदान–प्रदानुस्यमहत्त्वंयजुर्वेदे अवतिष्ठते।

देहिमेददामिते, निमेधेहिनितेदधे।

निहारंचहरासिमे, निहारंनिहराणिते स्वाहा।।

एतदेव सनातनसंस्कृतेः विश्वकल्याणाय सर्वत्र चिकित्सा–विज्ञान–राजनीतिक्षेत्रेष्वपि प्रासङ्गिकता वर्तते। एतदेव अस्याः सनातनसंस्कृतेः वैशिष्ट्यं महत्वञ्चास्ति।

'इति शम्।।

सन्दर्भ ग्रन्थाः –

1. महाभारतम्।
2. मनुस्मृतिः।
3. मैत्रायणि संहिता।
4. ऋग्वेदसंहिता।

5. माध्यन्दिनंसहिता।
6. 'वेदरहस्य' लेखक : बाल गंगाधर तिलक।
7. 'वेदान्त प्रवचन–सार' लेखक : स्वामी विवेकानंद।
8. 'वेदों का आध्यात्मिक रहस्य' लेखक : प्रमहंस।
9. 'वेद और मानव समृद्धि' लेखक : डॉ. नाथमल।
10. 'वेदाध्ययन और मानवजीवन' द्वारा स्वामी विवेकानंद।
11. 'वेदों का भारतीय संस्कृति में महत्व' द्वारा डॉ. देवीशंकर विश्वेश्वर।
12. 'वेद और मानव जीवन' द्वारा डॉ. राजेन्द्र मिश्र।
13. 'वेदों का मानवजीवन पर प्रभाव' द्वारा डॉ. आनंद कुमार।
14. 'वेद और मानवीय समृद्धि' द्वारा डॉ. रामविलास शर्मा।
15. निबन्धशतकम् कपिलदेव द्विवेदी।
16. काण्वशाखा
17. हितोपदेश
18. नीतिशतकम्
19. तैत्तिरीयोपनिषत्

ग्रन्थाः –

1. काण्व संहिता 1.1
2. माध्यन्दिन संहिता 7.13
3. मैत्रायणी संहिता (1.3.12 अनुवाकः12)
4. सायणभाष्य भूमिका
5. हितोपदेशः
6. मनुस्मतिः 2.6
7. मनुस्मृतिः2.7 (महाभाष्य, आह्निक 1)
8. मनुस्मृतिः 2.166,168
9. माध्यन्दिन संहिता 1.5
10. माध्यन्दिन संहिता 1.6
11. माध्नन्दिन संहिता 25.18
12. मनुस्मृतिः 1.108
13. ईशावास्योपनिषत् 2
14. ईशावास्योपनिषत् 13–15
15. ऋग्वेद 10.191.4
16. अथर्ववेद 3.30.2
17. माध्यन्दिन शाखा 3.48

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 186-188

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में कवि मंगलेश डबराल की कविताओं का मूल्यांकन

पायल पानेरी

शोधार्थी, JRN RajasthanVidyapeeth, Udaipur

आज के सजग संवेदनशील कवि को ऐसा अनुभव होने लगा है कि कवि–कर्म कोई सरल कार्य नहीं है। आज के कवियों का उद्देश्य मात्र पाठक के हृदय को आह्लादित करना नहीं है। आज कविता भी मात्र 'रमणीय अर्थ प्रतिपादक' नहीं रह गई है। आज के कवि व उनकी कविताएँ तो नवीन विचारधारा, सामाजिक संलग्नता और संघर्ष चेतना को लिए हुए है। उसी प्रकार 'पहाड़ पर लालटेन' के कवि मंगलेश डबराल उन कवियों में से है जिन्हें कवि–कर्म की उत्तरोत्तर बढ़ती कठिनाइयों का निरन्तर एहसास है। यही कारण है कि मंगलेश डबराल की कविताएँ अपने समय और परिवेश के राग–दुःख, संक्रमण और तनाव से गहरे जुड़ी हुई है।[1] 1980 के आस–पास हिन्दी में स्थापित हुए कवियों की वरिष्ठ पीढ़ी में मंगलेश डबराल प्रमुख है, अभी तक इनकी कविता यात्रा में छः संग्रह प्रकाशित हुए हैं जिनमें 'पहाड़ पर लालटेन', 'घर का रास्ता', 'हम जो देखते है', 'आवाज भी एक जगह है', 'नये युग में शत्रु', और 'स्मृति एक दूसरा समय है'।

इन सभी कविता संग्रहों में कवि मंगलेश डबराल ने ज्वलंत सामाजिक मुद्दों को उठाया है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य के आधार पर आज की समस्याओं पर लेखनी चलाई है। आज की सामाजिक समस्याएँ, समाज में आ रहे बदलाव को रेखांकित करते है। यह विडबनात्मक क्रूरता समाज के रूप में हमें एक ऐसी स्थिति में पहुँचा देता है, जहाँ सामाजिक या तो लगभग निरपेक्ष हो गये है या व्यवस्था की नकारात्मक शक्तियों के साथ जुड़कर अपने लिए कुछ सुविधाएँ चाहते है। भारत जैसे देश में जहाँ अमीरी–गरीबी की खाई बहुत बड़ी है, साथ ही जनसंख्या का बहुत बड़ा हिस्सा गरीब है उनमें भी एक बड़ा हिस्सा ऐसा है, जिसके पास खा–पी सकने भर संसाधन भी नहीं है।[2]

इनकी कविताओं में दुःख और थकान के, उदासी और निराशा के अनुभव अनेक रूपों में मौजूद है। मंगलेश उन कवियों में नहीं है जो एक तरह के आत्ममोह के रंग है में इन अनुभवों को ग्रहण करते हैं। इनके पीछे जो ठोस सामाजिक कारण–तर्क का काम कर रहे है, मंगलेश उनके प्रति भी अधिक सूक्ष्म स्तर पर समीक्षा शील दिखाई देते हैं। यथास्थिति के टूटने की सम्भावना उनकी कविता के समग्र प्रभाव के ऊपर अर्थ रखती है। 'पहाड़ पर लालटेन' कविता संग्रह की आखिरी कविता की ये आखिरी पंक्तियाँ इस दिशा में स्पष्ट संकेत है–

''इस खिड़की के बाहर,

मेरा इंतजार हो रहा है
रात के स्याह पानी से उभरते
घरों की खिड़कियाँ खुल रही है
आँखों की तरह
मुझे यह खिड़की खोलनी चाहिए
जो तमाम खिड़कियों के
खुलने की शुरुआत है।''

मंगलेश डबराल की कविता अन्ततः यही काम करती है– खिड़की खोलने की कोशिश–जिसमें से उनके अनुभवों की एक पूरी जीवित सच्चाई, प्रकृति के ऐन्द्रिक अनुभव, अतीत और स्मृतियाँ, समकालीन संघर्ष के क्षण और स्थल एक तीखी चमक के साथ दिखाई देते है। ऊपर–ऊपर से शांत दिखाई देने वाली मंगलेश की कविता में भीतर अनेक तकराहटें मौजूद है।

गाँवों से लोग रोजगार की तलाश में शहर में आते हैं और फिर वही बस जाते है। पर शहरों में उन्हें गाँवों सी आत्मीयता, भोलापन नहीं मिलता पर वहाँ रहना उनकी मजबूरी होती है। अपनी कविता शहर–1 में कवि यही भाव व्यक्त कर रहे हैं–

''मैंने शहर को देखा और मैं मुस्कराया
वहाँ कोई कैसे रह सकता है
यह जानने मैं गया
और वापस न आया।[3]

मंगलेश डबराल की कविता 'वर्णमाला' में इन्होंने आज की अनेक समस्याओं को बड़े ही अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया है वे कहते हैं कि–

''एक भाषा में अ लिखना चाहता हूँ
अ से अनार अ से अमरूद
लेकिन लिखने लगता हूँ अ से अनर्थ अ से अत्याचार
कोशिश करता हूँ कि क से कलम या करूणा लिखूँ
लेकिन मैं लिखने लगता हूँ क से क्रूरता क से कुटिलता
अभी तक ख से खरगोश लिखता आया हूँ
लेकिन ख से अब किसी खतरे की आहट आती है।
मैं सोचता था फ से फूल ही लिखा जाता होगा
बहुत सारे फूल
घरों के बाहर घरों के भीतर मनुष्यों के भीतर
उनकी आत्मा में
लेकिन मैंने देखा तमाम फूल जा रहे थे
हत्यारों के गले में माला बनकर डाले जाने के लिए

कोई मेरा हाथ जकड़ता है और कहता है
भ से लिखो भय जो अब हर जगह मौजूद है
द दमन का और प पतन का प्रतीक है
आततायी छीन लेते हैं हमारी पूरी वर्णमाला
वे भाषा की हिंसा को बना देते है
एक समाज की हिंसा
ह को हत्या के लिए सुरक्षित कर दिया गया है
हम कितना ही हल और हिरन लिखते रहें
वेह से हत्या लिखते रहते हैं हर समय।''[4]

उनकी 'साम्राज्ञी', 'अत्याचारियों की थकान', 'तानाशाह कहता है', आदि का कविताएँ व्यंग्य और सीधे कथन के बीच सहज रिश्ता बनाती है। 'तानाशाह कहता है' में समकालीन भारतीय मनुष्य की दुःखद परिस्थितियों पर प्रकाश डाला गया है। तानाशाह चाहता है–

''तुम सिर्फ उसके दुःखों के बारे में सोचो
और कुछ करना ही है
तो इतना करो
कि जब वह मरने लगे
तो खोज लाओ एक नया तानाशाह।[5]

अंत में कह सकते है कि वर्तमान परिप्रेक्ष्य के संदर्भ में मंगलेश डबराल की कविताएँ सजग ऐन्द्रिक संवेदना केवल बिम्ब नहीं रचती, वह बिम्ब में विचार और विचार में नया आवेग भी रख पाती है। अत्यन्त परिचित अनुभव भी इनकी कविताओं में न जाने कब चमत्कार–सा लगने लग जाएगा, यह कहना कठिन है। पहाड़ों के अनुभव, सुख–दुःख, संघर्ष, यातना, आदि सभी अनुभवों को वे घाटी की घास, पिंघलती हुई बर्फ पत्तों के हिलने, काली काठ की दीवालों के माध्यम से प्रस्तुत कर देने में सक्षम है। यह उनकी अनुपम सृजन शक्ति ही है जो उन्हें आज के परिप्रेक्ष्य में कविता सृजन की प्रेरणा देती है, जिससे वे आदिम और समकालीन अनुभवों को उजागर कर सकें। आज भी उनकी क्रान्तिकारी कविताएँ समाज के लिए एक अमूल्य धरोहर है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. समकालीन कविता का यथार्थ, लेखक–परमानन्द श्रीवास्तव, हरियाणा, साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़ (1988)
2. सेतु समग्र : कविता–मंगलेश डबराल, प्रकाशक–सेतु प्रकाशन प्रा.लि. (2021)
3. 'पहाड़ पर लालटेन' : (कविता संग्रह) मंगलेश डबराल, पेज नं. 32, 68
4. स्मृति एक दूसरा समय है (सेतु समग्र), पेज नं. 454
5. पहाड़ पर लालटेन (सेतु समग्र) –मंगलेश डबराल, पेज. नं. 75

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 189-193

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

किन्नर विमर्श – किन्नर समाज का जीवन

डॉ. पूजा चौहान

प्रवक्ता – श्री साईं बाबा इंटर कॉलेज, अमरोहा।

नर और नारी के अलावा भी एक और जेंडर हमारे समाज में निवास करते है। जिनको समाज में रहने वाले लोग अनेक अलग–अलग नामों से जानते है जैसे– छक्का, हिजड़ा, किन्नर, मामू, थर्ड जेंडर, उभयलिंगी और तृतीय लिंगी आदि। यह थर्ड जेंडर समाज अपनी सीमा के दायरे में रहकर जीवन व्यतीत करते हुए, अपने गर्व और जीवन को बचाने के लिए बहुत अधिक जंग लड़ रहा है। कई वर्षों से हिन्दी साहित्य में भी किन्नर समाज के जीवन पर लिखा हुआ मिलता है। वर्तमान कुछ वर्षों से तो किन्नर समाज को मुख्य बिन्दु बनाकर बहुत अधिक लिखा गया है और अभी भी लिखा जा रहा है। यदि आज तक जितने भी हिन्दी में किन्नर समाज के जीवन यापन पर साहित्य को जांचा जाए, तो इस समाज की छवि बहुत साफ दिखाई पड़ती है। और समाज में अपनी सीमा में रहकर जीवन व्यतीत करने वाले थर्ड जेंडर समाज को साहित्य में पहचान और साथ ही कुछ हद तक आज इन्हें हमारे समाज में भी सम्मान मिला है, परन्तु आज भी इनका जीवन कठनाईयों से घिरा हुआ है। ये आज भी बहुत संघर्ष करते है कहीं सड़कों, बस स्टॉप और ट्रेनों में पैसे मांगते हुए नजर आते है, तो वही ये एक समूह या टोली बनाकर अपने साथियों के साथ नाचने–गाने हर किसी के घर–घर जाकर बधाई मांगते हुए भी इनको देखा जाता है। यह कह सकते है कि एक समाज का हिस्सा होने के बाद भी यह समाज यह जीवन यापन करने पर मजबूर है। ये कुछ बोल जो "श्री सुरेश चन्द्र" 'सर्वहारा' वरिष्ठ कवि द्वारा लिखित कविता के है :–

किन्नर भी हैं इस धरती पर
मानव का ही सुन्दर रूप,
क्यों फिर इनकी हंसी उड़ा हम
मानवता करते विद्रूप?
रखते हैं ये भी समाज में
जीने का पूरा अधिकार
साथ नहीं हो इन दुखियों के
भूले से भी दुर्व्यवहार।
युगों युगों के पुर्वाग्रह से
अब समाज हो अपना मुक्त,

किन्नर भी पहचान बनाएं
मदद सभी की पा उपयुक्त।
साथ किन्नरों के कुदरत ने
जो भी की है भारी भूल,
सहज भाव से उसको ले हम
दें विकार को अधिक न तूल।

आज हम 21सवीं सदी में जी रहे है,जिसको मशीनी दुनिया ओर जाता है जहां अधिक से अधिक कार्य हम मशीनों कर देते है, वहीं दूसरी ओर हमारे समाज की और हमारी सोच कहीं ना कहीं आज भी पुरानी रुढीवादी है, किन्नर समाज को लेकर। देखा जाए तो आज भी तृतीयलिंगी समाज की दशा बहुत बुरी और खराब है। जिससे समाज आज भी अनजान है। अगर हम इतिहास की बात करे तो 1871 के पहले किन्नर को ट्रांसजेंडर का अधिकार भारत में मिला में था और सन् 1871 में ही अंग्रेजो ने इनको क्रिमिनल ट्राइब्स यानी एक जनजाति की श्रेणी में रखा था, परन्तु जब भारत 14 सन् 1947 मे आजाद हुआ और उसके बाद संविधान बना तो सन् 1951 में किन्नरों को जनजाती श्रेणी से (क्रिमिनल ट्राइब्स) निकाल दिया और उनको कोई हक नहीं दिया गया। मुख्य चुनाव आयुक्त टी. एम. शेषन ने 1994 में किन्नर समाज को मताधिकार प्रदान किया। 15 अप्रैल 2014 में सर्वोच्च न्यायालय के एस. राधाकृष्णन और ए. के. सीकरी ने थडर्जेंडर को ध्यान में रखते हुए एक बहुत बड़ा और ऐतिहासिक निर्णय सुनाया कि किन्नर समाज की बहुत समय से चलती आ रही मांग को अदालत स्वीकार करती है और इस समाज को संवैधानि अधिकार प्रदान किया और सरकार को इन अधिकारों को लागू करने का आदेश दिया। ये "विपिन दिलवरिया" द्वारा रचित 'किन्नर का दर्द' से ली गई कुछ पंक्तियाँ :–

मैं आदमी नहीं, औरत भी नहीं,
किन्नर हूं तो क्या हुआ,
क्यों मैं कोई इंसान नहीं?
पुरुष–स्त्री से मेरी तुलना नहीं,
किन्नर है मगर इंसान है हम,
इस समाज में,
इंसान से बढ़कर तो कुछ नहीं।
तुम्हारी खुशियों में सरींख होते,
दिल से देते दुआ और देते हैं बधाई,
फिर क्यों तुच्छ नजर से देखते हो,
मैं कोई छुआ छूत की बीमारी नहीं?
तुमसे इतनी सी उम्मीद है
समाज में मिल जाए बस
थोड़ी सी इज्जत और सम्मान ही?

किन्नरों को चार भाग में विभाजित किया है– बुचरा, नीलिमा, मनसा और हंसा। इस समाज को घरानों

में भी विभाजित किया गया है, जो सात है। हर एक घराने को एक मुखिया रहता है और वो ही गुरु को चुनता है।

बुचरा – बुचरा वे किन्नर होते हैं जो जन्म के साथ ही किन्नर पैदा होते है।

नीलिमा – जो स्वयं ही किन्नर बनते हैं, उनको नीलिमा कहते हैं।

मनसा – जो अपनी इच्छा से किन्नर बनते है, उनको मनसा कहते है।

हंसा – जो शारीरिक रूप के कारण किन्नर बनते है, उनको हंसा कहते है।

कितनी अजीब बात है कि इतिहास में आदिकाल, द्वापर युग, और त्रेतायुग (महाभारत और रामायण) में भी किन्नरों के होने का प्रमाण मिलता है और फिर भी समाज मनुष्य के रूप में किन्नरों को स्वीकार ही नहीं कर पा रहा है और समाज में स्थान भी नही दे पा रहा हैं।

इस किन्नर समाज का इतिहास बहुत पुराना है सालों–साल पुराना जब मनुष्य की रचना भगवान ने की थी तब ही से इनका भी जन्म हुआ था। भगवान ब्रह्मा जी ने नर और नारी की रचना की है और जब ब्रह्मा जी ने शिव जी से निवेदन किया जो शिव जी ने अर्धनारीश्वर का रूप धारण कर लिया जो आधा शरीर नर का और आधा शरीर नारी का था, न वे पूरे पुरुष थे और ना ही पूरी स्त्री। बस यही से किन्नर की रचना हुई और भगवान शिव ही किन्नरों को सृष्टि में लेकर आये। माना जाता है कि बुध ग्रह नपुंसक होता है, इसी कारण किन्नरों में बुध ग्रह का वास होता है। हिमालय के शिव निवास कैलाश को किन्नरों का निवास स्थान माना जाता था। ये वहां रहकर शिव जी की सेवा करते थे इनको देवताओं का भक्त तथा ये अप्सराओं और गन्धर्वो के जैसे ही नृत्य और संगीत में निपुण थे। पुराणों में माना गया है कि ये द्वारका भगवान कृष्ण का भी दर्शन करने आए थे।

शान्ति पर्व में भी किन्नरों के सदाचारी होने का भीम ने वर्णन किया है। अजंता के भित्तिचित्रों मंर भी किन्नरों का चित्रण मिलता है। महाभारत में भी इस समाज ने भाग लिया था, जिसको शिखंडी के नाम से जाना जाता है। इनको महाभारत भी मुख्य महारथियों में गिना जाता है। और 'अर्जुन' को भी एक श्राप के कारण कुछ समय तक अज्ञात वास में एक किन्नर के रूप में रहना पड़ा था। जो 'बृहन्नला' बनकर एक राजकुमारी को शिक्षा प्रदान कर रहे थे। कहा जाता है कि जब भगवान राम जी वनवास के लिए जा रहे थे तो उनके पीछे अयोध्या के सभी निवासी भरत जी के साथ चित्रकूट पर आए तब भगवान राम ने बड़े आदर के साथ निवेदन करके सभी नर–नारी को अयोध्या वापस लौट जाने के लिए बोला परन्तु उन्होंने किन्नर समाज का सम्बोधन नहीं किया इसी कारण वे 14 वर्ष तक उनकी वापसी तक वही प्रतीक्षा करते रहे और जब श्री राम 14 वर्ष के बाद वापस लौटे तो प्रभु राम ने उनके प्रेम और निश्छल भक्ति को देखते हुए उनको एक वरदान दिया और कहा कि तुम जिसको भी अपना आशिर्वाद और दुआ दोगें तो वो कभी विफल नहीं होगा। इसीलिए यह कहां जा सकता है कि जब से सृष्टि (दुनिया) है, तभी से इस दुनिया में किन्नर हैं जिसका उल्लेख पुराणों और पौराणिक कथाओं में भी मिलता है। ''अनिता रोहलन'' द्वारा लिखित कविता 'हां मैं एक किन्नर हूं' से ली है ये पक्तियाँ :–

न लड़की हूं, न लड़का हूं, मै हूं इस सृष्टि की एक सुन्दर कृति,
समाज की बंदिशो में बंधी मैं अर्धनारीश्वर का रूप हूं,
छक्का, हिजड़ा, किन्नर न जाने क्या–क्या नाम मिले मुझे,
मैं भी माँ की कोख से जन्मा हूँ फिर क्या दोष है मेरा

मैं भी हूँ इस समाज का एक हिस्सा,
फिर क्यो बना दिया तुमने मुझे अभिशाप।

अनेक साहित्यकारों ने भी अपने लेख, पुस्तकों और अपनी कविताओं में कन्नौर में रहने वाले किन्नर समाज का और किन्नर देश का वर्णन किया है। इसी प्रकार कालिदास जी के कुमारसम्भव ग्रन्थ में भी पहले सर्ग के 11 और 14 श्लोक में किन्नरों का वर्णन किया है। मुगलकाल में भी मुस्लिम शासकों की रानियों के हरम की और रानियों की पहरेदारी भी किन्नर ही करते थे। महान चाणक्य जी ने भी कई जगह अपनी रचनाओं में किन्नर समाज का वर्णन किया है उदाहरण के लिए अर्थशास्त्र में किया है। आज वर्तमान समय में इस समाज के लिए अनेक प्रकार की सुविधा कर दी गई है। सरकार ने थर्ड जेंडर को मान्यता और समलैंगिक विवाह की भी अनुमति प्रदान कर दी है परन्तु आज भी इनको तिरस्कार भरी नजरों और इनका आज भी शोषण किया जाता है। इतनी सुविधा होने के बाद भी इनका संघर्ष कम ही नहीं हो रहा है। आज वर्तमान समय में इस किन्नर समाज के लिए हर शहर, हर गाँव में बस्तियां व मोहल्ले सरकार ने बना दिए है। और अब धीरे–धीरे सरकार थर्ड जेंडर के लिए नौकरी, दफ्तरों में भी जगह बना रही है और अब धीरे–धीरे इनका पहचान पत्र, राशनकार्ड तथा मतदान का भी अधिकार इस समाज को मिल रहा है। नारी और पुरुष के साथ–साथ इन दोनों विकल्प के साथ एक ओर तीसरा विकल्प आना शुरू हो गया है 'अन्य'।

कहा जा सकता है कि अब समाज में थर्ड जेंडर को लेकर जो पहले अवधारणा थी वह भी बहुत अधिक बदल गई है परन्तु कुछ समाज के लोग इस समाज को आज भी अछूत नजरो से ही देखते हैं उसे बदलने की आवश्यकता है। समझना यह बहुत जरूरी है कि जैसे हम इस समाज में रहने योग है वह भी इस समाज में रह सकते है जैसे हम इंसान है वह भी 'इन्सान' है उनको भी भगवान ने ही बनाया है तो हमें उनका इस प्रकार के अश्लील नाम लेकर छक्का, हिजड़ा आदि पुकार कर इनका अपमान नहीं करना चाहिए। इनको भी अधिक –से–अधिक वह अधिकार और जगह प्रदान की जाए जो एक इंसान को इस समाज में दी जाती है। हमारा समाज इनकी मेहनत, संघर्ष, दर्द, पीड़ा को समझे और अपना योगदान दे। प्रत्येक नागरिक भी इनको अपनी तरह ही इस समाज का नागरिक समझे और इनको सम्मान दे। आज भी किन्नर विचार अपरिपक्क है कोई मनुष्य यह समझने को तैयार नहीं है कि जैसे हमारे सीने में दिल है उसके अन्दर धड़कन है वैसे ही किन्नरों के सीने में भी दिल होता है उसमें भी धड़कन होती है। समाज आज भी उनको स्वीकार करने से हिचकिचा रहा है परन्तु हमारा हिन्दी साहित्य सागर है कि वह समय–समय पर किन्नर–समाज के द्वारा किए जा रहे अनेक प्रयासों की सरहाना करता है और यह भी कहता है कि इनका ही प्रयास काफी नहीं है, समाज के लोगों को भी आगे बढ़ना होगा। जब हम अपने घरों में कुत्ता, बिल्ली, पशु, पक्षी, पेड़ पौधों और पत्थरों तक को जगह दें सकते है तो ये तो फिर भी इंसान है तो इनको क्यों अपने समाज में सम्मान या जगह नहीं दे सकते है? ये भी भगवान जी द्वारा बनाई गई कृति है। तो हम इनको क्यों स्वीकार नहीं कर सकते है? "विपिन दिलवरिया" में कविता 'किन्नर का दर्द' से ली है ये पक्तियाँ :–

किन्नर बोल कर ठुकरा दिया मुझे, क्या समाज में मेरा कोई वजूद नहीं,
आखिर मैं भी तो इंसान हूँ, क्या हम इज्जत के हकदार नहीं?
हमसे क्यों मुंह फेरते हो, जिस मिट्टी से तू बना है,

क्या उस मिट्टी से मैं बना नहीं?

भगवान ने तुझे बनायाँ और भगवान ने मुझे बनाय,

इंसान है तू इंसान हूँ मैं ,फिर समाज में मेरा क्यूं सम्मान नहीं?

संदर्भ सूची :-

1. "श्री सुरेश चन्द्र" 'सर्वहारा' के द्वारा लिखित कविता "किन्नर भी हैं इस धरती पर मानव का ही सुन्दर रूप"
2. "विपिन दिलवरिया" द्वारा रचित 'किन्नर का दर्द'।
3. ''अनिता रोहलन'' द्वारा लिखित कविता 'हां मैं एक किन्नर हूं'।

मोबाइल नंबर –7055590999

ई–मेल – pooja0889chauhan@gmail.com

पता – W/o Atul Kumar, Kedarpur Urf Moudi,

Dhampur. Bijnor, Dhampur, Uttar Pradesh-246761

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 194-200

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

वैदिक साहित्य और स्त्री अधिकारी

डॉ. पूजा शर्मा
सुरक्षा विहार, जी.टी. रोड़, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश।

प्राचीन भारतीय संस्कृति के स्वर्णिम काल अर्थात् वैदिक काल में नारी, पुरुष वर्ग के साथ समान रूप से समाज के अभ्युत्थान, उत्कर्ष एवं परिष्कार में सहायक थी। अतएव वैदिक संहिता काल को नारी की स्थिति का स्वर्णिम काल कहा जाता है। नारी की शक्तियों को पूर्णरूपेण विकसित करने हेतु जितनी सुविधाएँ, सुअवसर एवं साधन वैदिक युग में प्रदत्त थे उतना आज के युग में कहीं भी नहीं दिखते हैं। शरीर में नाड़ी की भाँति समाज में नारी महत्वपूर्ण स्थान की अधिकारिणी थी।[1] तत्कालीन नारी अपने ज्ञानदायिनी, ऐश्वर्यप्रदायिनी एवं शक्तिस्वरूपिणी सभी रूपों में चित्रित हुई है। विधाता की सर्वोत्तम परिकल्पना नारी का सृश्टि के विकास क्रम में प्रभूत योगदान है। वृहदारण्यकोपनिषद् में स्त्री को सृष्टि की रिक्तता को पूर्ण करने वाली कहा गया है– "अयमाकाशः स्त्रिया पूर्यते।"[2] ऋग्वेद में स्त्री को ब्रह्मा की संज्ञा से विभूषित किया गया है– "स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ।"[3]

पुरुष के साथ नारी की समता अर्धांगिनी शब्द से भली–भाँति व्यक्त होती है। 'दंपत्ति' शब्द भी नारी एवं पुरुष के समान रूप से स्वामी होने का संकेतक है। वैदिक साहित्य में वर्णित नारी एवं पुरुष की उत्पत्ति की कथा उनके मध्य समत्व भाव की द्योतिका है।[4] डॉ0 राधाकुमुद मुकर्जी ने भी स्व अध्ययन के आधार पर इस तथ्य से सहमति प्रकट की है कि ऋग्वैदिक काल में नारी पुरुष के समक्ष बराबर का स्थान रखती थी।[5] ऋग्वैदिक काल में कन्या समाज में पुत्र की ही भाँति पर्याप्त रूप से समादृत थी, जिसका प्रमाण हमें एक ऋग्वैदिक मन्त्र से प्राप्त होता है, जिसमें दंपत्ति अपने पुत्र–पुत्रियों के दीर्घायु होने की कामना करता है।[6] अन्यत्र भी माता–पिता के वक्षः स्थल पर लेटी हुई अबोध कन्याओं का वर्णन प्राप्त होता है, जो कन्याओं की प्रियता का साक्षी है।[7] यद्यपि कहीं–कहीं पर अवश्य कन्या के प्रति उदासीन दृष्टिकोण प्राप्त होता है–यथा अथर्वसंहिता[8] तथा ऐतरेय ब्राह्मण[9] तथापि इन अल्प संकेतों से कन्या के प्रति हेय दृष्टिकोण की पुष्टि नहीं होती। अपितु वृहदारण्यकोपनिषद् में विदुषी पुत्री की प्राप्ति हेतु कामना की गई है[10] तथा उसके निमित्त पूजा–पद्धति का भी संकेत है।

वैदिक काल में कन्या पुत्र की भाँति समान शिक्षा–दीक्षा प्राप्त करने का अधिकार रखती थी। शिक्षा के प्रारम्भ से पूर्व पुत्री को भी उपनयन संस्कार से संस्कारित कर अध्ययन करने का अधिकारी बनाया जाता था। वे गुरुकुल में रहकर, ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए यज्ञोपवीत, मौञ्जी, मेखला तथा वल्कल वस्त्र धारण करती हुई शिक्षा प्राप्त करती थीं। यमस्मृति में इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है –

पुराकल्पे कुमारीणां मौञ्जीबन्धमिश्यते।
अध्यापनं च वेदानां सावित्रीवचनं तथा।।[11]

इस निमित्त यजुर्वेद में कन्याओं को सुशिक्षित करने हेतु उपदेश भी प्राप्त होता है।[12] अथर्ववेद में एक स्थान पर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए शिक्षा ग्रहण करने वाली कन्याओं द्वारा शिक्षा की परिसमाप्ति पर योग्य वर को प्राप्त करने का उल्लेख प्राप्त होता है।[13] संहिताओं में यत्र–तत्र अनेक प्रमाण मिलते हैं, यथा बहवृची (संहिताओं के अधिकाधिक मन्त्रों की पण्डिता), कठी (कठ शाखा का अध्ययन करने वाली), आपिशला (आपिशलि के व्याकरण की अध्ययनकर्त्री) इत्यादि जिससे नारी द्वारा उच्च वैदिक शिक्षा प्राप्त करने के अधिकार की पुष्टि होती है। वेद ने स्त्री को 'चतुष्कपर्दा'[14] अर्थात् धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष – इन चार तत्वों की ज्ञाता अथवा चतुष्कोण वेदी की निर्माण प्रक्रिया अर्थात् यज्ञ के गूढ़ ज्ञान को समझाने वाली कहा है। वैदिक शिक्षा के अतिरिक्त कन्या युद्धविद्या, परा एवम् अपरा विद्याओं, गणित, शिल्प, नृत्य, गीत, संगीत इत्यादि विद्याओं में शिक्षा प्राप्त करने की अधिकारिणी थीं। वैदिक सूक्तों में 'विष्पला, वध्रिमती, मुद्गलानी[15] आदि महिला योद्धाओं का वर्णन प्राप्त होता है। ऋग्वेद में नृत्य–गीत में कुशल नारियों का वर्णन भी मिलता है।[16]' वैदिक काल में नारी एवं पुरुष दोनों का संस्कारों से संस्कृत होना आवश्यक था। कतिपय संस्कार जो आज मात्र पुरुष वर्ग के लिए ही आरक्षित हो गये हैं, उस काल में नारियों के लिए भी विधेय थे। कन्या की शिक्षा के प्रति उदार दृष्टिकोण के कारण उनका उपनयन संस्कार से संस्कारित होना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी था। कन्याएँ यज्ञोपवीत धारण कर ज्ञानार्जन हेतु गुरुकुलों में निवास करती थीं। यज्ञोपवीता नारी का उल्लेख ऋग्वेद संहिता[17] में प्राप्त होता है। अथर्ववेद संहिता भी नारी के उपनयन एवं वेदाध्ययन के अधिकार का समर्थन करती है। वैदिक काल में बौद्धिक क्षेत्र में नारी की उत्कृष्ट स्थिति अनेक साक्ष्यों द्वारा प्रमाणित होती है। तत्कालीन अनेक मन्त्रद्रष्टा ऋषिकाओं का उल्लेख वैदिक वाङ्मय में प्राप्त होता है। ऋषियों की भाँति ऋषि कन्याएँ भी ऋचाओं का निर्माण करती हुई दृष्टिगत होती हैं जो इस तथ्य का पोषक है कि नारियों को वेदमन्त्रों के अध्ययन एवं सृजन से विरत नहीं रखा जाता था। वैदिक काल में स्त्री जीवनपर्यन्त नैष्ठिक जीवन व्यतीत करते हुए ब्रह्मवादिनी रहने के लिए पूर्ण स्वतंत्र थी। उस काल में स्त्रियों के दो भेद प्राप्त होते हैं – ब्रह्मवादिनी एवं सद्योवाह[18]।

सद्योवाह वह नारियाँ थीं जो अपने ब्रह्मचर्याश्रम पर्यन्त विद्या ग्रहण करने तथा वेदाध्ययन करने के लिए अधिकृत थीं ताकि विवाहोपरान्त वे विभिन्न प्रकार के धार्मिक संस्कार एवं पूजा–पाठ सम्पन्न करके अपना दायित्व पूर्ण कर ब्रह्मवादिनी नारियाँ शिक्षा के सर्वोच्च शिखर पर जाने हेतु स्वतंत्र थीं। वे वैदिक ऋचाओं के अध्ययन के साथ–साथ मन्त्र–दर्शन, ऋचा–सृजन, मीमांसा जैसे गूढ़ विषयों के अध्ययन हेतु अपना जीवन समर्पित करती थीं। ऋषिकाओं की पदवी नारी समाज के लिए सुलभ थी क्योंकि वैदिक संहिताकाल में मन्त्रद्रष्ट्री नारियाँ यथा अदिति, इन्द्राणी, लोपामुद्रा, सिकता–निवावरी, जुहू, सूर्या–सावित्री, रोमशा–कक्षीवान्, वाक्–आम्भृणी, शची–पौलोमी, शाश्वती–आंगिरसी, घोषा–काक्षीवती, श्रद्धा–कामायनी, मैत्रेयी इत्यादि का उल्लेख प्राप्त होता है जिनके द्वारा विभिन्न ऋचाएँ साक्षात्कृत हैं। सम्यकरूपेण शिक्षित नारियाँ पुरुषों की भाँति अध्यापन कार्य भी करते हुए अध्यापिका, आचार्य, उपाध्याया, उपाध्यायी आदि पदों को सुशोभित करती थीं। अतः शिक्षा के क्षेत्र में उन्हें पूर्ण स्वतंत्रता एवं समान अधिकार प्राप्त थे। श्री पी0एच0 प्रभु[19] एंव श्री पी0सी0 धर्मा[20] ने भी स्व अध्ययन के आधार पर इस तथ्य के प्रति सहमति प्रकट की है। वैदिक संहिताकाल में चूँकि नारियाँ वेदाध्ययन के लिए स्वतंत्र थीं अतः उन्हें पुरुष के समान याज्ञिक अधिकार प्राप्त थे। अथर्ववेद में एक स्थान पर नारी को यज्ञ में भाग लेने, यज्ञ करने तथा दूसरों को यज्ञ कराने के लिए अधिकृत किया गया है।[21] इसके अतिरिक्त अनेक स्थलों पर पति–पत्नी

द्वारा संयुक्त रूप से सम्पादित अनुष्ठानों के विवरण प्राप्त होते हैं।[22]

ऋग्वेद के दशम मण्डल का 114 वाँ सूक्त भी नारी के यज्ञ करने के जन्मसिद्ध अधिकार की पुष्टि करता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में कहा गया है कि गृहस्थ, पत्नी के बिना अकेले यज्ञ करने का अधिकार नहीं है – अयज्ञियों वा एशः यो पत्नीकः।[23] पत्नी के अभाव में यज्ञानुष्ठान पूर्ण नहीं माना जाता था पति द्वारा दी गयी आहुति देवताओं द्वारा स्वीकार नहीं की जाती थी। अतः धार्मिक कर्मकाण्डों एवम् अनुष्ठानों को सम्पादित करने का भी नारी को पूर्ण अधिकार प्राप्त था। विवाह के क्षेत्र में भी नारी सशक्त थी। बाल विवाह की प्रथा नहीं थी। कन्याओं का विवाह परिपक्वावस्था में होता था तथा वे विवाह के सम्बन्ध में स्वयं निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र थी। ऋग्वेद में कहा गया है कि उस समय विवाह योग्य किसी भी युवती को अपने मनोनुकूल वर चुनने की स्वतंत्रता थी।[24] वेद में लिखा है – ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।[25] अर्थात् पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत लेकर कन्या शिक्षा ग्रहण करती हुयी विवाह कर।

श्री मधु शास्त्री ने भी अपने अध्ययन के आधार पर इस तथ्य की पुष्टि की है।[26] क्षत्रिय समाज में स्वयंवर[27] की प्रथा प्रचलित थी, जिससे यह ज्ञात होता है कि कन्या का विवाह प्रौढ़ावस्था प्राप्त करने के पश्चात् होता था जब वे इस निर्णायक क्षेत्र में निर्णय लेने में सक्षम होती थी। ऋक् संहिता[28] के एक मन्त्र के सूक्ष्मानुशीलन से यह ज्ञात होता है कि विवाह के समय वधू पूर्ण परिपक्व एवं विकसित होती थी। वैदिक समाज में दो पूर्णतया विकसित व्यक्तियों के सम्बन्ध को विवाह की संज्ञा दी जाती थी[29]। इसके अतिरिक्त वैदिक काल में अन्तर्जातीय विवाह[30] के संकेत भी प्राप्त होते हैं। यह सभी दृष्टान्त संहिता काल में विवाह सम्बन्धी स्वतंत्र विचारधारा के द्योतक हैं। वैदिक काल में पुनर्विवाह[31] अथवा विधवा–विवाह के संकेत प्राप्त होते हैं। ऋक् संहिता में विधवा स्त्री के विषय में कहा गया है कि वह अपने मृत पति को छोड़कर भावी पति को प्राप्त करे।[32] अथर्वसंहिता में (9.5. 27–28) में भी किन्हीं स्थानों पर पुनर्विवाह अथवा विधवा विवाह का उल्लेख मिलता है।[33] ऋग्वेद के अनेक स्थलों पर (ऋ0 1.124.7, 4.3.2, 10.71.4) एक पत्नीव्रत की प्रथा के प्राप्त दृष्टान्तों से भी नारी की सशक्त स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है।

तत्कालीन समाज में नियोग प्रथा प्रचलित थी। नियोग का तात्पर्य है कि निःसन्तान पत्नी अथवा विधवा स्त्री का पुत्र प्राप्ति हेतु अपने देवर अथवा पूर्व निर्धारित पुरुष के साथ नियुक्त होना। नियोग के संकेत ऋग्वेद संहिता[34] में अनेक स्थलों पर प्राप्त होते हैं जो स्त्रियों के प्रति अत्यन्त उदार दृष्टिकोण के परिचायक हैं। संहिता काल में नारी सम्मान को आहत करने वाली सती कुप्रथा का अभाव था। पर्दा अथवा अवगुण्ठन का प्रचलन नहीं था। स्त्रियाँ पर्दे से रहित होकर स्वतन्त्रतापूर्वक सबसे मेल जोल बढ़ा सकती थीं। वैदिक काल में सह शिक्षा तथा कन्याओं के लिए उच्च शिक्षा प्राप्ति की स्वतंत्रता इस तथ्य को प्रमाणित करती है क्योंकि यदि पर्दा प्रथा होती तो कन्याएँ उच्च स्तर पर शिक्षित नहीं हो पाती। एक स्थान पर सौभाग्यशाली नववधू को आशीर्वाद प्राप्ति हेतु सभी आगतों को दिखाये जाने का उल्लेख मिलता है।[35] तद्युगीन स्त्रियाँ विदथ (सभा तथा समिति) एवं समन (उत्सव और मेला) में सम्मिलित होती थी तथा अपने विचारों का आदान–प्रदान करती थीं।[36] एक स्थान[37] पर स्त्री के लिए 'सभावती' शब्द प्रयुक्त हुआ है, जिससे उसके सार्वजनिक सभाओं में भाग लेने का संकेत प्राप्त होता है। अनेक ऋषिकाओं के विवरण जो ऋषियों की भाँति वेद की शिक्षा देती थी संहिता काल में इस प्रथा के अभाव को सूचित करता है।

अथर्ववेद[38] में किन्हीं स्थलों पर नारी द्वारा अपने सम्पत्ति विषयक अधिकार हेतु न्यायालय जाने का वर्णन है। अतः वैदिक युग में पर्दा प्रथा के अभाव के कारण नारी अपनी अबाधित प्रगति का मार्ग प्रशस्त करती हुई दिखाई पड़ती है। आर्थिक क्षेत्र में भी नारी सम्पन्न एवं सामर्थ्यवान थी। उसे सम्पत्ति सम्बन्धी अनेक अधिकार प्राप्त थे। स्त्री का अपने पति की सम्पत्ति में सह–स्वामित्व था। पति द्वारा विवाह के समय यह शपथ ली जाती थी कि आर्थिक मामलों में किसी भी प्रकार उसकी पत्नी के अधिकार एवं हित का अतिक्रमण नहीं किया जाएगा।[39] नारी की सुदृढ़ आर्थिक स्थिति के लिए स्त्रीधन की व्यवस्था थी। विवाह के समय स्त्री को उपहार स्वरूप प्राप्त होने वाली वस्तुएँ जिस पर स्त्री का एकमात्र अधिकार होता था स्त्रीधन कहलाता है। इस सम्पत्ति को 'पारिणाह्य' कहा जाता था जिसका संकेत तैत्तिरीय संहिता (6.2.1.1) में प्राप्त होता है।

इसमें कहा गया है – "पत्नी वै पारिणाह्यस्य ईशः।" अर्थात् भेंट के रूप में नारी को प्राप्त होने वाली वस्तुओं पर नारी का अधिकार था। अथर्ववेद में विधवा स्त्री हेतु धन की व्यवस्था करने के लिए कहा गया है।[40] पुत्रियाँ पुत्र की भाँति पिता की सम्पत्ति में अधिकार रखती थीं।[41] अभ्रातृ कन्या तो अपने पिता की सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी मानी जाती थी।[42] वह कन्याएँ जो अविवाहित रहकर अपने पिता के घर में जीवन यापन करती थीं उनके लिए भी पिता की सम्पत्ति में अधिकार हेतु प्रार्थनाएँ ऋक् संहिता[43] एवम् अथर्वसंहिता[44] में प्राप्त होती है। यह सभी संकेत नारी की आर्थिक सबलता को इंगित करते हैं। उस युग की नारी न्यायकत्री के रूप में दृष्टिगत होती है जिसकी पुष्टि ऋग्वेद संहिता[45] के एक मन्त्र से होती है जिसमें नारी के कुशल न्याय द्वारा राजप्रबन्ध में सुस्थिरता का प्रतिपादन हुआ है। ऋक् संहिता के दशम मण्डल के 102 वे सूक्त[46] में महर्षि मुद्गल की पत्नी मुद्गलानी द्वारा समरांगण में उनके साथ जाने का वर्णन प्राप्त होता है जिससे यह स्पष्ट होता है कि नारी ने युद्धभूमि में भी अपने शौर्य एवं पराक्रम से पुरुष समुदाय को अभिभूत कर दिया है। इसके अतिरिक्त वैदिक कालीन नारी संन्यासिनी के रूप में, विधान–निर्मात्री के रूप में, दौत्य कर्म कर्त्री के रूप में, ज्योतिर्विद् प्रशिक्षिका, भूगर्भविद् आदि अनेक रूपों में हमारे समक्ष उपस्थित होती है, जिससे यह ज्ञात होता है कि तद्युगीन नारी अत्यन्त सशक्त एवं प्रत्येक क्षेत्र में सक्षम थी। अतः संहिता कालीन नारी की स्थिति का गहन आलोचन करने के पश्चात् यह दृष्टिगत होता है कि तत्कालीन नारी अत्यन्त उत्कृष्ट एवं सम्माननीय स्थान पर आसीन थी। वह पुरुष के साथ समत्त्व भाव से जीवनयापन करते हुए उसके लिए सदैव से प्रेरणा एवं शक्ति का स्रोत थी। तत्कालीन समाज में नारी के सहनशीलता, सौम्यता, सौष्ठवता आदि गुणों की भूरि–भूरि प्रशंसा हुई है। नारी को अनेक महिमापूर्ण विशेषणों से मण्डित किया गया है।[47] उसे अमृतरसदायिनी कहा गया है तथा मधुर एवं सत्य वचनों की प्रेरक तथा सद्सम्मति से सम्पन्न बताया गया है।[48] उसकी महत्ता ऋग्वेद के दाम मण्डल के 85वें सूक्त से प्रतिपादित होती है जिसमें उसे सम्राज्ञी जैसे सम्मान–सूचक पद से अलंकृत किया गया है।[49] स्त्री के बिना गृह को गृह नहीं कहा जा सकता – गृहिणी गृहमित्याहु न गृहं गृहिणी बिना।[50] अतः संहिता कालीन नारी उच्चतम प्रतिष्ठा की अधिष्ठात्री तथा विभिन्न अधिकारों की अधिकारिणी थी। वैदिक युग में नारी एवं पुरुष दोनों समत्त्व भाव के कारण अर्द्धनारी वरत्व की संकल्पना को साकार करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं।

संदर्भ :–

1. डॉ. मालती शर्मा– "वैदिक संहिताओं में नारी", पृष्ठ 1

2. वृहदारण्यकोपनिषद् – 1.4.3
3. सोती वीरेन्द्र चन्द्र, – "भारतीय संस्कृति के मूल तत्व", पृष्ठ 83
4. शतपथ ब्राह्मण–14, 4, 2, 1, 5 "आत्मैवेदमग्र आसीत् पुरुषः विधः। सोऽहमस्मि इत्यग्रे व्याहरत् ततः अहं नामाभवत् स वै न रेमे। तस्मादेकाकी न रमते स द्वितीयमैच्छत्। स हैतावानस यथा स्त्रीपुंसासौ संपरिव्यक्तौ। स इममात्मानं दैधापतयत्। ततः पति च पत्नी चाभवताम्।"
5. The Rigveda shows abundant evidence pointing to the fact that women were fully the equals of men as regards access to and capacity for the highest knowledge even the knowledge of the absolute or Brahma" – Radha Kumud Mukherjee. - Quoted in, H.C. Upadhayay-The status of women in India" P. 39
6. ऋग्वेद – 8.31.8
7. ऋग्वेद – 3.31.1–2
8. अथर्वद 6.11.3 – "प्रजापतिरनुमतिः सिनीवाल्यचीकलृपत्। स्त्रेशूयमन्यत्र दधत्पुमांसमु दधदिह।।"
9. ऐतरेय ब्राह्मण – 33.1 – "कृपणं हि दुहिता ज्योतिर्हि पुत्रः"।
10. वृहदारण्यकोपनिषद् 4.4.18 अथ यः इच्छेद दुहिता में पंडिता जायेत, तिलौदनो पाचयित्वा अश्नीयातामिति।"
11. यम–वीरमित्रोदय, संस्कारप्रकाश, भाग 1–2, पृ0 402
12. यजुर्वेद – 12.53 'चिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद।' परिचिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद।।"
13. अथर्ववेद 11.5.18– 'ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।।'
14. ऋग्वेद 10.114.3– "चतुष्कपर्दा युवतिः सुपेशा घृतपतीका वयुनानि वस्ते। तस्यां सुपर्णा वृषणा निशेदतुर्यत्र देवा दधिरे भागधेयम्।।"
15. ऋक् संहिता 10.102
16. ऋग्वेद 1.92.4 'विमल चन्द्र पाण्डेय – 'प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास', पृ0 111 से उद्धृत।
17. ऋग्वेद 10.109.4 'देवा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्त ऋषयस्तपसे ये निषेदुः। भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धां दधाति परमें व्योमन्।।"
18. हारीत – वीरमित्रोदय, संस्कारप्रकाश, भाग 1–2, पृ0 402 "दिविधाः स्त्रियों ब्रह्मवादिन्यः सद्योवध्यश्च।" तत्र ब्रह्मवादिनी नामग्नीन्धनं वेदाध्ययनं स्वगृहे च भिक्षाचर्येति।। सूद्योवधूनां तूपस्थिते विवाहे कथंचिदुपनयनमात्रं कृत्वा विवाहः कार्यः।
19. P.H. Prabhu – "Hindu Social Organization? P.28" So far as education was concerned the position of women was generally not unequal to that of men. Women had similar education as that of men. She took part in philosophic debates like men.??
20. Dr. P.C. Dharma – "Status of Women in Vedic Age? Quoted in Journal of Indian History, 1948 "They were educated in spiritual and the secular subjects. The secular side of their education consisted of fine arts and military science. There were lady Risis in Rigvedic times who composed verses, performed sacrifices, offered hymns to the Gods and won glory and fame, eg. surya, saci, sarparanj; mamta etc."

21. अथर्ववेद 6.122.5 "शुद्धा पूता योशितो यज्ञियों इमा ब्राह्माणां हस्तेशु प्रपृथक् सादयामि। यत्काम इदमभिशिञ्चामि वोऽहमिन्द्रो मरूत्वान्त्स ददातुं तन्में।।"
22. ऋग्वेद 1.72.5/17/संजनाना उप सीदन्नभिज्ञु पत्नीवन्तो नमस्यं नमस्यन्। रिरिक्वांसस्तन्वः कृण्वत स्वाः सखा सख्युर्निमिशि रक्षमाणः।।"
23. तैत्तिरीय ब्राह्मण – 3/3/3/11 (भट्ट भास्कर मिश्र टीका)
24. ऋग्वेद 10.27.12 "कियती योशामर्यतो वघ्योंः परिप्रीता पन्यसा वार्येण। भद्रा वधूर्भवति यत् सुपेशाः स्वयं सा मित्रं वनुते जने चित्।।"
25. अथर्ववेद 11.5.18
26. Madhu Shastri – "Status of Hindu Women" P. 27 "There are references in the Rigveda Samhita (X-27.12) which show that when brides were of 16 or 17 they had more or less effective voice in the selection of their life Partners.
27. ऋग्वेद 10.27.12
28. ऋग्वेद 10.22.4–6
29. वैदिक इण्डेक्स, भाग पृ0 536–537
30. (क) ऋग्वेद 1.112.19 विमल चन्द्र पाण्डेय – "प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, पृ0 110" (ख) ऋग्वेद 5.61.17–19 (ग) ऋग्वेद 10.63.1
31. ऋग्वेद 10.85.41
32. ऋग्वेद 10.18.8 – "उदीर्श्वं नार्यभि जीवलोंकं गतासुमेतमुप शेष एहि। हस्तग्रामस्य द्विधिशोस्तवेदं पत्युंजभित्वमभि संबभूव।।"
33. अथर्ववेद 9.5.27–28 "या पूर्व पतिं वित्वाथान्यं विन्दतेऽपरम्। पञ्चौदनं च तावजं ददातो न वि योषतः।। समानलोको भवति पुनभुर्वा परः पतिः। योउजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिशं ददाति।।"
34. ऋग्वेद 1.167.5–6 (क) जोशद्यदोमसुर्या सचध्यै विशितस्तुका रोदसी नृमणाः। आसूर्ये व विधतो रथं गात्वेशप्रतीकां नभसो नेत्या।।" (ख) आस्थापयन्तयुवतिं युवानं : शुभे निमिऽचलां विदथेशु पञ्चाम्।
35. ऋग्वेद 10.85.33, "सुमंगलरियं वधूरिमां समेत पश्यत। सौभाग्यमस्यै दस्वायाथास्वितं परतेन।।"
36. अथर्ववेद 14.1.20 – "गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमावदासि।"
37. ऋग्वेद 1.167.3. "मिम्यक्ष येशु सुधिता घृताची हिरण्यनिर्णिगुपरा न ऋष्टिः।" गुहा चरन्ती मनुषो न योषा सभावती विदथ्येव संश्वाक्।।
38. अथर्ववेद 2.36.1, 'जुष्टा वरेयु समनेशु वल्गुः'।
39. अथर्ववेद 10.30.5, 12.3.14 Madhu Shastri – " Status of Hindu Women", P. 35)
40. अथर्ववेद 18.3.1 इयं नारी पतिलोकं वृणाना निपद्यत उपत्व मर्त्य प्रेतम्। धर्मं पुराणमनुपालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहिं।।"
41. ऋग्वेद 2.17.7 "अमाजूरिव पित्रों सचा सती समानादा सदसत्वामिये भगम्। कृधि प्रकेतमुप मास्या भर दद्धि भागं तन्वोऽयेन मामहः।।"

42. ऋग्वेद 1.124.7 "अभ्रातेव पुंस एति प्रतीचो गर्तारूगिव सनये धनानाम्।"
43. ऋग्वेद 10.85.13 तथा 38
44. अथर्ववेद 14.1.13
45. ऋग्वेद 4.22.7 "अत्राह ते हरिवस्ताउ देवीरवोभिरिन्द्र स्तवन्त स्वसारः।
यत्सीमनु प्रमुचो बद्वधाना दीर्घामनु प्रसितिं स्यन्दयध्यै।।"
46. ऋग्वेद 10.102.2 – "रथीरभून्मुद्गलानी गविष्टौ भरे।"
47. यजुर्वेद 8.43, "इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरस्वति महि विश्रुति। एता तेश्ध्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात्।।
48. ऋग्वेद 1.3.11. "चोदयित्री सुनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्। यज्ञं दधे सरस्वती।
49. ऋग्वेद 10.85.46 "सम्राज्ञी भवसुरे भव सम्राज्ञी भवश्रवां भव। ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधिदेवृशु।।"
50. सोती वीरेन्द्र चन्द्र – "भारतीय संस्कृति के मूल तत्व, पृष्ठ 88"

मो0 6395602063

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 201-209

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Review and Development of a Novel Framework for Ethical Considerations in AI-Driven Education

Vikas Dangi, Research Scholar
Dr. Chandresh Kumar Chhatlani, Asst. Professor
JRN Rajasthan Vidyapeeth, Udaipur

Abstract :-

As the integration of artificial intelligence (AI) in education continues to gain momentum, there is an urgent need to critically examine the ethical dimensions that accompany this technological transformation. This research paper offers a comprehensive review of ethical considerations in AI-driven education and introduces a novel framework designed to guide responsible AI implementation in educational settings. Drawing on an extensive analysis of existing literature and real-world case studies, this study explores the multifaceted ethical challenges posed by AI in education, including privacy concerns, bias mitigation, transparency, and the promotion of pedagogical effectiveness.

The review underscores the pivotal role of privacy protection, emphasizing the imperative to safeguard student and educator data in an era of increased data collection and analysis. Additionally, the study addresses the pressing issue of bias in AI algorithms, emphasizing the importance of fair treatment and equitable access for all students. Furthermore, the research examines the ethical necessity of transparency and accountability, advocating for clear communication of AI system operations and mechanisms to address potential grievances.

Building upon these insights, the paper introduces a novel ethical framework tailored to the unique context of AI-driven education. This framework provides actionable guidelines for educational institutions, policymakers, and developers to navigate the ethical challenges effectively. It fosters a culture of responsible innovation, promoting equitable access, transparency, and the continuous improvement of AI-driven educational tools. Ultimately, this research contributes to the growing discourse on ethics in AI-driven education, offering practical guidance to ensure that technological advancements align with the fundamental values of education while maximizing their benefits.

Keywords :- Artificial Intelligence, Education, Ethics.

I. Introduction :

In recent years, the integration of artificial intelligence (AI) into education has promised to revolutionize the way we teach and learn. AI-driven educational technologies offer personalized learning experiences, enhance student engagement, and provide educators with invaluable insights into student performance. This transformation, often hailed as the "AI revolution" in education, holds great potential for improving the quality and accessibility of education across the globe.

However, as we embark on this transformative journey into AI-driven education, it is imperative that we pause to reflect upon a set of ethical considerations that this digital evolution inherently brings forth. The promises of AI in education are indeed compelling, but they are not without their ethical complexities and potential pitfalls. This review paper seeks to navigate this intricate landscape, shedding light on the ethical considerations that underpin the intersection of AI and education.

AI, in its various forms such as intelligent tutoring systems, learning analytics, and automated grading, collects vast amounts of data, makes decisions, and influences learning outcomes. While this presents unprecedented opportunities for educational advancement, it simultaneously raises critical questions about privacy, fairness, accountability, and the balance between automation and human agency. The fundamental challenge lies in harmonizing the relentless march of technology with the enduring principles of ethics and equity. As AI-driven education systems become more deeply embedded in our classrooms and institutions, we must grapple with questions that touch the core of educational values. How can we ensure that these systems respect the privacy of learners? How do we mitigate algorithmic biases that can perpetuate inequalities? Who should be held accountable when AI-driven decisions go awry? And how can we strike the right balance between automation and the human touch that is so integral to education?

This review embarks on a comprehensive exploration of these ethical considerations, recognizing their far-reaching implications for students, educators, policymakers, and technologists. It examines these concerns within the context of real-world applications, offering insights drawn from case studies and ethical frameworks. Furthermore, it delves into potential solutions and future directions that can guide the responsible development and deployment of AI in education.

As we embark on this journey through the intricate intersection of AI and education ethics, we invite readers to join us in exploring the multifaceted dimensions of this critical discourse and to consider the profound implications it holds for the future of education.

II An overview of the integration of AI in education

The integration of artificial intelligence (AI) in education represents a transformative paradigm shift that is reshaping the way we approach teaching and learning. AI technologies are rapidly infiltrating

educational institutions at all levels, from early childhood education to higher learning, with the goal of enhancing educational outcomes, personalizing learning experiences, and optimizing administrative processes. This integration encompasses a wide array of applications, including intelligent tutoring systems, adaptive learning platforms, automated grading systems, and data-driven decision support tools. It is driven by the promise of improving educational equity, efficiency, and effectiveness while also presenting educators and institutions with new challenges and ethical considerations.

One of the primary drivers behind the integration of AI in education is the aspiration to provide personalized learning experiences. AI systems can analyze individual student's strengths and weaknesses, learning preferences, and progress to tailor educational content and pacing accordingly. This level of personalization allows students to learn at their own pace, receive targeted feedback, and engage with course materials in ways that suit their unique needs. Moreover, AI-powered educational tools have the potential to identify and address learning gaps in real-time, thereby reducing the risk of students falling behind and promoting a deeper understanding of subjects.

Another pivotal aspect of AI integration in education is its potential to revolutionize administrative tasks and improve institutional efficiency. AI can streamline administrative workflows by automating routine tasks such as registration, scheduling, and data management. Additionally, AI-driven analytics can provide educators and administrators with valuable insights into student performance and engagement, enabling data-informed decision-making. This data-driven approach can help institutions optimize resource allocation, identify at-risk students, and refine curriculum design to better meet the needs of their learners.

In essence, the integration of AI in education is an endeavor to leverage cutting-edge technology to create more accessible, engaging, and effective learning experiences. While it offers numerous opportunities for educational advancement, it also raises complex questions about ethics, privacy, and the role of technology in shaping the future of education. As educators, institutions, and policymakers navigate this evolving landscape, it is essential to strike a balance between harnessing the potential of AI for educational benefit and ensuring that ethical and pedagogical considerations remain at the forefront of decision-making.

III. Why ethical considerations in AI-driven education are crucial

Ethical considerations in AI-driven education are crucial for several compelling reasons. First and foremost, they safeguard the rights and privacy of students. As AI technologies collect vast amounts of data on learners, including their behaviors, preferences, and performance, the potential for unauthorized access or misuse of this data becomes a significant concern. Robust ethical frameworks ensure that student data is handled responsibly, with strict adherence to privacy laws and regulations.

Protecting students from data breaches and unauthorized surveillance is paramount to maintaining trust and integrity in educational institutions.

Ethical considerations in AI-driven education are crucial for several reasons :

Student Privacy Protection : Ethical guidelines ensure that student data, which is often collected and analyzed by AI systems, is safeguarded against unauthorized access, misuse, and breaches, thereby protecting the privacy rights of learners.

Bias Mitigation : Ethical considerations address the potential for bias in AI algorithms, helping to identify and mitigate discriminatory outcomes. This promotes fair treatment and equal opportunities for all students, regardless of their background.

Transparency and Accountability : Ethical frameworks advocate for transparency in AI systems, making it clear how decisions are made. This transparency facilitates accountability, allowing educators and administrators to understand and address any issues that may arise.

Equitable Access : Ethical AI ensures that the benefits of technology are accessible to all students, irrespective of their socioeconomic status, abilities, or demographic characteristics, helping to reduce educational disparities.

Pedagogical Effectiveness : Ethical AI promotes the development of educational tools that align with sound pedagogical principles, enhancing the learning experience and facilitating better educational outcomes for students.

Long-term Trust : Upholding ethical standards builds trust between educational institutions, educators, students, and AI technology providers, which is essential for the successful integration of AI into education.

Accountability in Decision-making : Ethical considerations ensure that decisions made by AI systems, such as grading or personalized learning recommendations, are consistent with educational objectives and values.

Ethical Education : Integrating ethical discussions into AI-driven education teaches students about the importance of responsible technology use, digital citizenship, and ethical decision-making in the digital age.

Regulatory Compliance : Many regions have enacted data privacy and protection laws (e.g., GDPR in Europe) that require educational institutions to adhere to ethical standards in AI use to comply with legal requirements.

Preventing Harm : Ethical guidelines help prevent potential harm to students, such as emotional distress or reinforcing negative stereotypes, that could result from the misuse of AI in educational contexts.

Therefore, it can be said that ethical considerations are essential to ensure that AI-driven education benefits students while upholding their rights, promoting fairness, and aligning with the values and goals of education.

IV. Case Studies

here are a few case studies highlighting ethical considerations in AI-driven education :

Proctoring Software and Privacy Concerns :

Case : During the COVID-19 pandemic, many educational institutions turned to remote proctoring software to prevent cheating during online exams. However, some of these AI-powered proctoring systems raised significant privacy concerns. One widely reported case involved an AI proctoring system that required students to consent to video monitoring of their homes during exams, which led to outrage and protests. Many students argued that this invasion of their privacy was unethical. Ethical Considerations: This case underscores the importance of ethical considerations in the use of AI for surveillance and assessment. Educational institutions must balance the need for exam integrity with the protection of students' privacy rights.

Bias in Admissions Algorithms :

Case : Several universities have implemented AI algorithms to assist in the admissions process. However, a case arose where an AI-driven admissions system was found to be biased against certain racial and socioeconomic groups. The algorithm favored candidates from more affluent backgrounds, leading to allegations of discrimination.

Ethical Considerations : This case highlights the need for thorough auditing and transparency in AI algorithms used for critical decisions like college admissions. Ethical guidelines should ensure that such systems are fair and do not perpetuate existing biases.

Algorithmic Discrimination in Grading :

Case : In a high school, an AI-powered grading system was introduced to automate the grading of essays and assignments. However, it consistently awarded lower scores to essays from students with non-native English backgrounds. This raised concerns about algorithmic discrimination based on language proficiency.

Ethical Considerations : The case emphasizes the importance of addressing bias and ensuring fairness in AI algorithms used for educational assessment. Ethical guidelines should stress the need for ongoing monitoring and adjustments to prevent such discrimination.

Data Privacy in EdTech Apps :

Case : An educational technology company developed a popular learning app used by millions of students. However, investigations revealed that the app was collecting extensive data on students,

including their location, browsing habits, and interactions within the app, without clear consent or transparency.

Ethical Considerations : This case underscores the ethical imperative of transparency and informed consent in AI-driven educational technology. Students and their parents should be fully aware of data collection practices and have the ability to opt out if they choose.

AI- Powered Chatbots for Mental Health Support :

Case : A university introduced an AI-powered chatbot to provide mental health support to students. However, it became evident that the chatbot was not equipped to handle all types of mental health crises and was sometimes providing inappropriate responses.

Ethical Considerations : This case highlights the ethical responsibility of educational institutions to ensure that AI-driven support systems, especially those dealing with sensitive issues like mental health, are properly trained and supervised to provide safe and effective assistance.

These case studies illustrate the multifaceted ethical considerations surrounding AI in education, ranging from privacy and bias to transparency and accountability. They emphasize the importance of developing and adhering to ethical guidelines to ensure that AI-driven educational technologies benefit students while respecting their rights and well-being.

V. Suggested Ethical Framework for AI-Driven Education

A comprehensive ethical framework for AI in education involves establishing principles and guidelines that prioritize the well-being and rights of students, educators, and all stakeholders involved. *Here is a suggested ethical framework for the same :*

1. Privacy and Data Protection :

Principle : Ensure the privacy and security of student and educator data.

Guidelines :

- Obtain informed consent for data collection and use.
- Anonymize and protect data to prevent unauthorized access.
- Comply with relevant data protection laws and regulations.

2. Fairness and Non-Discrimination :

Principle : AI systems should not perpetuate bias or discriminate against any student group.

Guidelines :

- Regularly audit AI algorithms for bias and discrimination.
- Adjust algorithms to minimize bias and ensure fair treatment.
- Monitor and address disparities in outcomes among different student populations.

3. Transparency and Accountability :

Principle : Ensure transparency in AI-driven decision-making processes and establish accountability mechanisms.

Guidelines :

- Clearly communicate how AI systems operate to students and educators.
- Provide avenues for appealing or questioning AI-generated decisions.
- Assign clear responsibility for the development and maintenance of AI systems.

4. Pedagogical Effectiveness :

Principle : AI should enhance pedagogical practices and improve learning outcomes.

Guidelines :

- Align AI interventions with educational objectives and best practices.
- Continuously assess the effectiveness of AI-driven tools and make adjustments as needed.
- Promote the professional development of educators in AI integration.

5. Equitable Access :

Principle : Ensure that AI-driven educational benefits are accessible to all students.

Guidelines :

- Consider the digital divide and provide resources to bridge the gap.
- Design AI systems that accommodate diverse learning needs and abilities.
- Implement measures to address accessibility issues for students with disabilities.

6. Informed Decision-Making :

Principle : Empower educators and institutions to make informed decisions about AI integration.

Guidelines :

- Provide educators and decision-makers with training on AI concepts and ethics.
- Share research and evidence on the impact of AI in education.
- Encourage collaboration and open dialogue among stakeholders.

7. Continuous Improvement and Research Ethics :

Principle : Foster a culture of responsible innovation and research ethics.

Guidelines :

- Encourage research on the ethical implications of AI in education.
- Promote interdisciplinary collaboration to address ethical challenges.
- Review research involving AI in education to ensure ethical standards are met.

8. Student Well-being and Ethical Education :

Principle : Prioritize the well-being of students and include ethical education about AI use.

Guidelines :

- Implement measures to support student mental health and well-being.
- Include ethics modules in the curriculum to teach responsible AI use.
- Encourage students to become responsible digital citizens.

This ethical framework provides a foundation for the responsible development, deployment, and use of AI in education, with the aim of maximizing benefits while minimizing potential harms and ethical dilemmas. It emphasizes the importance of upholding ethical principles and continuously adapting guidelines to the evolving landscape of AI in education.

VI. Conclusion

In the rapidly evolving landscape of AI-driven education, the ethical considerations explored in this research paper stand as essential guideposts for the responsible integration of technology in our learning environments. As we harness the immense potential of artificial intelligence to enhance education, it is imperative that we remain steadfast in our commitment to protecting the rights, dignity, and well-being of students and educators. The ethical framework outlined herein serves as a reminder that technology's transformative power should always be wielded with a profound sense of responsibility and care.

Our journey through the ethical dimensions of AI in education has shed light on the critical importance of privacy, fairness, transparency, and accountability. It has underscored the need to continuously evaluate and adjust AI systems to ensure that they serve the best interests of all learners, regardless of their background or abilities. Moreover, it has highlighted the value of ethical education, both in fostering responsible digital citizenship and in cultivating a generation of students who are not only skilled in technology but also deeply attuned to its ethical implications. As we conclude this exploration, we are left with a resounding call to action for educators, policymakers, technologists, and researchers: let us embrace AI in education as a powerful ally in our pursuit of knowledge and progress, but let us do so with unwavering ethical commitment, ensuring that the future we create is one of equity, opportunity, and ethical enlightenment for all.

References :-

1. Floridi, L., & Cowls, J. (Eds.). (2020). AIEthics: The Ethical and Societal Implications of Artificial Intelligence. Springer.
2. Selwyn, N. (2020). AI in Education: The Social and Ethical Implications. Polity Press.

3. Anderson, J. R., & Dan Bothell, D. (2019). AI in Education: Promises and Implications for Teaching and Learning. Routledge.
4. Benkler, Y. (2006). The Wealth of Networks: How Social Production Transforms Markets and Freedom. Yale University Press.
5. Dillenbourg, P., & Tchounikine, P. (2007). Flexibility in Computer-Based Learning: Conceptual Frameworks. Routledge.
6. Johnson, L. M., & Boyer, D. M. (2019). The Ethics of Using AI in Education: Exploring Current and Future Practices. EDUCAUSE Review.
7. Barnes, T., & Collier, K. (2017). An Ethical Algorithm for Educational Data Mining. Technology, Knowledge and Learning, 22(3), 311-333.
8. O'Neill, O. (2016). Algorithmic Bigotry. Aeon.
9. Thaler, A., Sunstein, C. R., & Balz, J. P. (2013). Choice Architecture. Social Science Research Network.
10. Bostrom, N., & Yudkowsky, E. (2014). The Ethics of Artificial Intelligence. Cambridge Handbook of Artificial Intelligence.
11. Slavin, R. E. (1987). Developmental and Motivational Perspectives on Cooperative Learning: A Reconciliation. Child Development, 58(5), 1161-1167.
12. Etzioni, O., Etzioni, A., & Zinck, D. (2017). A Moral Framework for the Assessment of Unmanned Systems. AI & Society, 32(1), 109-121.
13. Anderson, J. R. (2016). The Cognitive Tutor: A Review and a Response. Educational Psychologist, 51(2), 119-133.
14. Dillenbourg, P., & Self, J. A. (1992). People Power: A Human–Computer Collaborative Learning System. Journal of Computer Assisted Learning, 8(3), 156-163.
15. Foucault, M. (1977). Discipline and Punish: The Birth of the Prison. Vintage.
16. Boyd, D., & Crawford, K. (2012). Critical Questions for Big Data: Provocations for a Cultural, Technological, and Scholarly Phenomenon. Information, Communication & Society, 15(5), 662-679.
17. Nissenbaum, H. (2001). How Computer Systems Embody Values. Computer, 34(3), 118-120.
18. Jones, R. H., & Hafner, C. A. (2012). Understanding Digital Literacies: A Practical Introduction. Routledge.
19. Lynch, T. (2017). Re-Engineering Education: Cocreating Tomorrow's Schools Today. International Journal of Artificial Intelligence in Education, 27(2), 384-389.
20. Moor, J. H. (2005). Why We Need Better Ethics for Emerging Technologies. Ethics and Information Technology, 7(3), 111-119.
21. Siemens, G., & Baker, R. S. (2012). Learning Analytics and Educational Data Mining: Towards Communication and Collaboration. Proceedings of the 2nd International Conference on Learning Analytics and Knowledge.
22. Anderson, J. R., Reder, L. M., & Simon, H. A. (2000). Applications and Misapplications of Cognitive Psychology to Mathematics Education. Texas Educational Review, 1(1), 29-49.

PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गुगनराम सोसायटी रजि. के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज, भिवानी से छपवाकर गीना प्रकाशन, 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड भिवानी-127021 (हरि.) से वितरित की।

ISSN 2395:7115